एम.ए. पूर्वार्द्ध
प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति और पुरातत्व
द्वितीय प्रश्नपत्र

# भारत का राजनीतिक इतिहास

## ( 600 ई. से 1200 ई. तक )

## POLITICAL HISTORY OF INDIA

**(600 A.D.-1200 A.D.)**

मध्यप्रदेश भोज (मुक्त) विश्वविद्यालय – भोपाल
**MADHYA PRADESH BHOJ (OPEN) UNIVERSITY - BHOPAL**

1. Dr. Mamta Chansoria
   Associate Professor
   Govt. MLB College, Bhopal (M.P.)

2. Dr. Amita Singh
   Professor
   Govt. MLB College, Bhopal (M.P.)

3. Dr. Manisha Sharma
   Associate Professor
   Govt. PG College, Beena (M.P.)

1. Dr. Jayant Sonwalkar
   Hon'ble Vice Chancellor
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University,
   Bhopal (M.P.)

2. Dr. L.S.Solanki
   Registrar
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University,
   Bhopal (M.P.)

3. Dr. L.P. Jharia
   Director
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University,
   Bhopal (M.P.)

4. Dr. Mamta Chansoria
   Associate Professor
   Govt. MLB College, Bhopal (M.P.)

5. Dr. Amita Singh
   Professor
   Govt. MLB College, Bhopal (M.P.)

6. Dr. Manisha Sharma
   Associate Professor
   Govt. PG College, Beena (M.P.)

**COURSE WRITERS**

**Dr Aruna Sharma,** Reader & Head, Deptt. of History, Ginni Devi Modi Girls (PG) College, Modinagar
**Dr Druti,** Research Associate of Gandhian Studies Centre in Ginni Devi Modi Girls P.G. College, Modinagar
Units: (1.0-1.1, 1.2-1.5, 1.6-1.10, 2.2, 2.5, 3.0-3.2, 3.3, 3.4, 3.5, 3.6-3.10, 4)

**Dr Nirja Sharma,** Assistant Professor, Department of Buddhist Studies, University of Delhi
Units: (2.0-2.1, 2.3, 2.4, 2.6-2.10)

Copyright © Reserved, Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal

All rights reserved. No part of this publication which is material protected by this copyright notice may be reproduced or transmitted or utilized or stored in any form or by any means now known or hereinafter invented, electronic, digital or mechanical, including photocopying, scanning, recording or by any information storage or retrieval system, without prior written permission from the Registrar, Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal.

Information contained in this book has been published by VIKAS® Publishing House Pvt. Ltd. and has been obtained by its Authors from sources believed to be reliable and are correct to the best of their knowledge. However, the Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal, Publisher and its Authors shall in no event be liable for any errors, omissions or damages arising out of use of this information and specifically disclaim any implied warranties or merchantability or fitness for any particular use.

Published by Registrar, MP Bhoj (Open) University, Bhopal in 2020

Vikas® is the registered trademark of Vikas® Publishing House Pvt. Ltd.

VIKAS® PUBLISHING HOUSE PVT. LTD.
E-28, Sector-8, Noida - 201301 (UP)
Phone: 0120-4078900 • Fax: 0120-4078999
Regd. Office: A-27, 2nd Floor, Mohan Co-operative Industrial Estate, New Delhi 1100 44
• Website: www.vikaspublishing.com • Email: helpline@vikaspublishing.com

# SYLLABI-BOOK MAPPING TABLE

## भारत का राजनीतिक इतिहास

## (600 AD to 1200 AD)

| Syllabi | Mapping in Book |
|---|---|
| **इकाई–1**<br>हर्ष का प्रारंभिक इतिहास और स्रोत; हर्ष की सैन्य उपलब्धियां; हर्ष की सांस्कृतिक उपलब्धियां और प्रशासन; हर्ष के समकालीन (पुलकेशिन, शशांक तथा यशोवर्मन) – पुलकेशिन द्वितीय, शशांक, यशोवर्मन | **इकाई 1** : हर्ष और उसका समय<br>**(पृष्ठ 3–35)** |
| **इकाई–2**<br>दक्षिण भारत के राजवंश : पल्लव और उनका प्रशासन; राष्ट्रकूट; कल्याणी के चालुक्य; चोल और उनका प्रशासन | **इकाई 2** : दक्षिण भारत के राजवंश<br>**(पृष्ठ 37–88)** |
| **इकाई–3**<br>राजपूतों, गुर्जर प्रतिहारों की उत्पत्ति; चंदेल; कलचुरी; परमार | **इकाई 3** : मध्य भारत के राजवंश<br>**(पृष्ठ 89–136)** |
| **इकाई–4**<br>पाल; सेन; गहड़वाल; चहमानस | **इकाई 4** : उत्तर और पूर्व भारत के राजवंश<br>**(पृष्ठ 137–164)** |

# विषय–सूची


**परिचय** **1**

**इकाई 1 हर्ष और उसका समय** **3–35**

1.0 परिचय
1.1 उद्देश्य
1.2 हर्ष का प्रारंभिक इतिहास और स्रोत
1.3 हर्ष की सैन्य उपलब्धियां
1.4 हर्ष की सांस्कृतिक उपलब्धियां और प्रशासन
1.5 हर्ष के समकालीन (पुलकेशिन, शशांक तथा यशोवर्मन)
  1.5.1 पुलकेशिन द्वितीय
  1.5.2 शशांक
  1.5.3 यशोवर्मन
1.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
1.7 सारांश
1.8 मुख्य शब्दावली
1.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
1.10 सहायक पाठ्य सामग्री

**इकाई 2 दक्षिण भारत के राजवंश** **37–88**

2.0 परिचय
2.1 उद्देश्य
2.2 दक्षिण भारत के राजवंश : पल्लव और उनका प्रशासन
2.3 राष्ट्रकूट
2.4 कल्याणी के चालुक्य
2.5 चोल और उनका प्रशासन
2.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
2.7 सारांश
2.8 मुख्य शब्दावली
2.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
2.10 सहायक पाठ्य सामग्री

**इकाई 3 मध्य भारत के राजवंश** **89–136**

3.0 परिचय
3.1 उद्देश्य
3.2 राजपूतों, गुर्जर प्रतिहारों की उत्पत्ति
3.3 चंदेल
3.4 कलचुरी
3.5 परमार
3.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

3.7 सारांश
3.8 मुख्य शब्दावली
3.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
3.10 सहायक पाठ्य सामग्री

**इकाई 4 उत्तर और पूर्व भारत के राजवंश** **137–164**

4.0 परिचय
4.1 उद्देश्य
4.2 पाल
4.3 सेन
4.4 गहड़वाल
4.5 चहमानस
4.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
4.7 सारांश
4.8 मुख्य शब्दावली
4.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
4.10 सहायक पाठ्य सामग्री

# परिचय

टिप्पणी

प्रस्तुत पुस्तक 'भारत का राजनीतिक इतिहास' (600 AD–1200 AD) का लेखन विश्वविद्यालय के एम.ए. इतिहास (पूर्वार्द्ध) के पाठ्यक्रमानुसार किया गया है।

प्राचीन भारत का इतिहास बहुत विस्तृत है जो उत्तर, पूर्व, दक्षिण एवं मध्य भारत के कई राजवंशों के उत्थान और पतन का साक्षी रहा है। प्राचीन काल में भारत पर कई राजवंशों ने शासन किया था।

गुप्त वंश के पश्चात छठी शताब्दी ई. के प्रारंभ में पुष्यभूति द्वारा वर्धन वंश की स्थापना की गई थी, जिसमें प्रभाकरवर्धन, राज्यवर्धन एवं हर्षवर्धन नामक प्रमुख शासक हुए। दक्षिण भारत के इतिहास में सातवाहन, चोल, चेरा, चालुक्य, पल्लव, राष्ट्रकूट आदि राजवंशों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। मध्य भारत के राजवंशों में राजपूतों, गुर्जर प्रतिहारों, चंदेलों, कलचुरी एवं परमारों का महत्वपूर्ण स्थान रहा। उत्तर और पूर्व भारत के राजवंशों में पाल, सेन गहड़वाल, चहमानस आदि प्रमुख राजवंश माने जाते हैं।

प्रस्तुत पुस्तक में प्राचीन भारत के इन सभी राजवंशों की उत्पत्ति, इतिहास एवं प्रमुख शासकों की उपलब्धियों आदि का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया गया है। प्रत्येक इकाई के प्रारंभ में विषय का विश्लेषण करने से पहले उसके निहित उद्देश्यों को स्पष्ट कर दिया गया है। इकाई के बीच–बीच में 'अपनी प्रगति जांचिए' स्तंभ के माध्यम से विद्यार्थियों की योग्यता को परखने के लिए प्रश्न भी दिए गए हैं। अध्ययन की सुविधा के लिए संपूर्ण पाठ्यक्रम को चार इकाइयों में समायोजित किया गया है। जिनका विवरण इस प्रकार है–

पहली इकाई में हर्ष के प्रारंभिक इतिहास, उसकी सैन्य एवं सांस्कृतिक उपलब्धियों, प्रशासन तथा हर्ष के समकालीन राजाओं–पुलकेशिन, शशांक तथा यशोवर्मन के विषय में विस्तृत जानकारी दी गई है।

दूसरी इकाई दक्षिण भारत के राजवंशों पर आधारित है, जिसमें दक्षिण भारत के इतिहास, पल्लव, राष्ट्रकूट, चालुक्य एवं चोल आदि राजवंशों के प्रशासन के संबंध में बताया गया है।

तीसरी इकाई में मध्य भारत के प्रमुख राजवंशों, राजपूत, गुर्जर प्रतिहार, चंदेल, कलचुरी, परमार आदि की उत्पत्ति, विकास, ऐतिहासिक उपलब्धियों एवं शासकों का विवेचन किया गया है।

चौथी इकाई उत्तर और पूर्व भारत के राजवंशों पर आधारित है। इसमें पाल, सेन गहड़वाल एवं चहमानस आदि राजवंशों की उत्पत्ति, इतिहास एवं उनके उत्थान व पतन आदि तथ्यों का अध्ययन किया गया है।

प्रस्तुत पुस्तक में 'भारत के राजनीतिक इतिहास' (600 AD–1200 AD) को सरल भाषा में रुचिकर बनाकर लिखा गया है, जिससे विद्यार्थी सभी पहलुओं को समझने में सक्षम हो पाएं। हमें पूर्ण विश्वास है कि यह पुस्तक विद्यार्थियों के लिए उपयोगी सिद्ध होगी।

# इकाई 1 हर्ष और उसका समय

टिप्पणी

## संरचना

1.0 परिचय
1.1 उद्देश्य
1.2 हर्ष का प्रारंभिक इतिहास और स्रोत
1.3 हर्ष की सैन्य उपलब्धियां
1.4 हर्ष की सांस्कृतिक उपलब्धियां और प्रशासन
1.5 हर्ष के समकालीन (पुलकेशिन, शशांक तथा यशोवर्मन)
1.5.1 पुलकेशिन द्वितीय
1.5.2 शशांक
1.5.3 यशोवर्मन
1.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
1.7 सारांश
1.8 मुख्य शब्दावली
1.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
1.10 सहायक पाठ्य सामग्री

## 1.0 परिचय

गुप्त वंश के पतन के पश्चात अनेक स्थानीय राजाओं तथा सामंतों ने अपनी स्वतंत्र सत्ता की स्थापना कर ली थी। एक बार पुनः भारत की राजनीति में विकेंद्रीकरण और विभाजन की प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन मिला। हर्ष के उदय से पूर्व उत्तर तथा पश्चिम भारत में मालवा के यशोवर्मन, वल्लभी के मैत्रक, पंजाब के हूण, कन्नौज के मौखरी इत्यादि वंशों ने अपनी स्वतंत्र सत्ता की स्थापना कर ली थी। प्राचीन काल में दिल्ली और पंजाब के क्षेत्र पर श्रीकण्ट नामक जनपद के अंतर्गत स्थित थानेश्वर प्रदेश में छठी शताब्दी ई. के प्रारंभ में पुष्यभूति अथवा पुष्पभूति द्वारा वर्धन वंश की स्थापना की गई थी।

हर्ष का जन्म 591 ई. में हुआ था। बाण ने हर्ष के जन्म की घटना को महत्व देते हुए वर्णन किया है कि '' ज्येष्ठ मास में कृष्ण पक्ष द्वादशी को हर्ष का जन्म हुआ। उसके जन्म के अवसर पर राज्य में उत्सव मनाया गया।" राज ज्योतिषी तारक के अनुसार, ''यह योग अति शुभ है। ऐसा योग चक्रवर्ती सम्राट के जन्म के लिए ही उपयुक्त था।" हर्ष को बचपन से ही सैनिक शिक्षा, युद्ध विद्या, ललित कलाओं, न्याय, राजनीति, रामायण, काव्य, महाभारत, पुराण आदि की शिक्षा दी गई थी। उसका बचपन ममेरे भाई दण्डि तथा महासेन के पुत्र कुमारगुप्त तथा माधवगुप्त के साथ व्यतीत हुआ था।

भाई की मृत्यु के पश्चात अब हर्ष को ही राजा बनना था किंतु वह इसके लिए तैयार नहीं था। तब उसके सेनापति सिंहनाद ने उससे कहा '' कायरों जैसे शोक का परित्याग कर राजकीय गौरव को, जो अपना पैतृक अधिकार है, उसी प्रकार से ग्रहण कीजिए जैसे सिंह मृगशावक को ग्रहण करता है। अब चूंकि राजा की मृत्यु हो गई है और राज्यवर्धन ने दुष्ट गौड़राज रूपी सर्प के विष (द्वेष) से अपने प्राण त्याग दिए हैं,

टिप्पणी

अतः इस घोर विपत्ति में पृथ्वी का भार ग्रहण करने के लिए आप ही अकेले शेषनाग हैं।'' इस अनिच्छा का वर्णन ह्वेनसांग भी करता है। एक साथ इतना दुख मिलने के कारण वह वैरागी का जीवन जीने की इच्छा रखता था, किंतु सिंहनाद के द्वारा समझाने के पश्चात वह सिंहासनारूढ़ हुआ। जब वह गद्दी पर बैठा तब वह मात्र 16 वर्ष का था। अब शासक बनने के पश्चात उसने दो महत्वपूर्ण कार्यों को करने का निश्चय किया – अतिशीघ्र राजश्री को मुक्त कराना तथा शशांक की हत्या कर अपने भाई की हत्या का बदला लेना। ये दोनों काम करने के बाद उसने अपने साम्राज्य का विस्तार किया। बौद्ध धर्म की उन्नति में सहायता की तथा विदेशों से भी अपने संबंध स्थापित किए।

प्रस्तुत इकाई में हर्ष के प्रारंभिक इतिहास, उसकी सैन्य एवं सांस्कृतिक उपलब्धियों, हर्ष के प्रशासन, हर्ष के समकालीन राजाओं, पुलकेशिन, शशांक और यशोवर्मन के बारे में विस्तार से वर्णन किया गया है।

## 1.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- हर्ष के प्रारंभिक इतिहास एवं स्रोतों के बारे में जान पाएंगे;
- हर्ष की सैन्य व सांस्कृतिक उपलब्धियों से परिचित हो पाएंगे;
- हर्ष के समकालीन पुलकेशिन, शशांक व यशोवर्मन आदि राजाओं के बारे में जान पाएंगे;
- हर्ष के प्रशासन की गतिविधियों को समझ पाएंगे।

## 1.2 हर्ष का प्रारंभिक इतिहास और स्रोत

550 ई. के पश्चात उत्तर भारत में थानेश्वर में पुष्यभूति नामक राजा हुआ, जिससे पुष्यभूति वंश की स्थापना हुई थी। यह तत्कालीन समय का सर्वाधिक शक्तिशाली राजवंश था। यह वर्तमान समय में हरियाणा प्रांत के करनाल जिले में स्थित थानेसर नामक स्थान है। यही वंश इतिहास में वर्धन वंश के नाम से प्रसिद्ध है। इस वंश का सबसे महान शासक हर्षवर्धन था। लेकिन इस वंश की स्थापना के संबंध में कोई महत्वपूर्ण साक्ष्य प्राप्त नहीं है। बाण के अनुसार, इस वंश का संस्थापक पुष्यभूति है, किंतु जो वंशावली प्राप्त होती है वह पुष्यभूति के भावी उत्तराधिकारियों की सूचना नहीं देती है। प्राप्त वंशावली प्रभाकरवर्धन से प्रारंभ होती है। साक्ष्यों में बंसखेड़ा तथा मधुबन के लेख, सोनपत तथा मधुबन से हर्ष की जो मुहरें प्राप्त हुई हैं उसमें नरवर्धन को ही इस वंश का प्रथम शासक बताया गया है। इसके अतिरिक्त हमें मुहरों में अन्य नाम भी मिलते हैं जैसे –*महाराज नरवर्धन, महाराज राज्यवर्धन, महाराज आदित्यवर्धन, परमभट्टारक महाराजाधिराज प्रभाकरवर्धन*। यहां पर उल्लेखनीय तथ्य यह है कि मुहरों में प्रभाकरवर्धन को ही *महाराजाधिराज* कहा गया है। प्रभाकरवर्धन से पूर्व के राजाओं के विषय में कोई ऐतिहासिक साक्ष्य नहीं मिलता है। संभव है कि ये शासक हूणों, गुप्तों

टिप्पणी

अथवा मौखरियों के अधीन सामंत रहे होंगे। साक्ष्य के अभावों के कारण यह ज्ञात नहीं होता है कि नरवर्धन और पुष्यभूति में क्या संबंध था? बाण के अतिरिक्त कहीं भी पुष्यभूति का उल्लेख नहीं मिलता है। इसी कारणवश थानेश्वर का संस्थापक नरवर्धन को माना जाता है और इसके नाम के अंत में *'वर्धन'* शब्द जुड़ा होने के कारण यह वंश वर्धन वंश के नाम से जाना गया।

उत्पत्ति के संबंध में विद्वानों में अनेक मतभेद हैं, वे वर्धन वंश को वैश्य, क्षत्रिय, वैश्य राजपूत मानते हैं।

**वैश्य**– आर. एस. त्रिपाठी, यू. एन. घोष, आदि विद्वान आर्यमन्जूश्रीमूलकल्प, तथा ह्वेनसांग के विवरण के आधार पर उन्हें वैश्य मानते हैं। आर्यमन्जूश्रीमूलकल्प में उसे वैश्य कहा गया है। इसी प्रकार चीनी यात्री ह्वेनसांग ने इसे फो–शे कहा है अर्थात वैश्य।

**क्षत्रिय**– हर्षचरित में पुष्यभूति वंश की तुलना 'चंद्र' से की गई है। इसी आधार पर विद्वान उसे चंद्रवंशीय क्षत्रिय मानते हैं।

**वैश्य राजपूत**– ह्वेनसांग द्वारा हर्ष को 'फो–शे' कहा गया है, विद्वानों के अनुसार फो–शे का अर्थ वैश्य राजपूत से है।

इस प्रकार उपर्युक्त मतों में भेद के कारण इस संबंध में कोई निश्चित तथ्य सामने नहीं आया है।

## वर्धन वंश

पुष्यभूति वंश का प्रथम शासक राज्यवर्धन था किंतु इसके विषय में अधिक जानकारी प्राप्त नहीं है। उसका पुत्र राज्यवर्धन प्रथम था। उसका पुत्र आत्यवर्धन था, जिसका विवाह महासेन की बहन महासेनगुप्तादेवी से हुआ था। उपर्युक्त वर्णन से ज्ञात हो चुका है कि प्रारंभिक राजाओं द्वारा महाराजा की उपाधि धारण की गई थी, जिससे यही निष्कर्ष निकाला गया है कि वे सभी किसी शक्ति के अधीन शासक रहे होंगे, अतः प्रथम स्वतंत्र व शक्तिशाली शासक प्रभाकरवर्धन था।

## प्रभाकरवर्धन का शासनकाल

प्रभाकरवर्धन के शासनकाल से ही हमें वर्धन वंश की समस्त जानकारी प्राप्त होती है। बाण के वर्णन से ही हमें प्रभाकर वर्धन के विषय में महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है। बाण ने लिखा है कि *'' हूण रूपी हिरण के लिए शेर था, सिंधु के राजा के लिए निरंतर चढ़ता हुआ बुखार था, गुर्जर राजा की बकरी के लिए कष्टदायक था, सुरभित हाथी रूप गांधार के स्वामी के लिए विपत्ति था, लाट वंश की कीर्ति के लिए नाशक था और स्वयं मालव की भाग्यदेवी के लिए परशु था।''* किंतु इस विवरण के विषय में हमें कोई ठोस साक्ष्य नहीं प्राप्त होते हैं, जो पूर्ण रूप से यह सिद्ध कर सकें कि इन सभी पर प्रभाकरवर्धन ने विजय प्राप्त की थी। किंतु यह अवश्य है कि वह इस वंश का प्रथम स्वतंत्र शासक था और उसी के शासनकाल से हमें इस वंश की समस्त घटनाओं की जानकारी प्राप्त होती है।

टिप्पणी

प्रभाकरवर्धन का विवाह यशोमती नामक राजकुमारी से हुआ था, जिसके वंश इत्यादि के विषय में जानकारी प्राप्त नहीं है। प्रभाकरवर्धन की कई अन्य रानियां भी थीं। प्रभाकरवर्धन और यशोमती से ही राज्यवर्धन, हर्षवर्धन तथा राजश्री की उत्पत्ति हुई थी। प्रभाकरवर्धन के एक अन्य पुत्र का उल्लेख भी हर्षचरित में मिलता है, जिसका नाम कृष्ण था, यह प्रभाकरवर्धन की दूसरी पत्नी का पुत्र था। यह हर्ष का सौतेला भाई था, जो आजीवन राज्यवर्धन तथा हर्षवर्धन के प्रति निष्ठावान रहा किंतु इसका उल्लेख कहीं अन्यत्र नहीं मिलता है।

## प्रभाकरवर्धन की विजय

1. **हूणों पर विजय**– प्रभाकरवर्धन की शक्ति का विवरण बाण द्वारा प्रस्तुत किया जा चुका है। इसे स्कंदगुप्तों द्वारा ही प्रथम बार पराजित किया गया था। इस समय यह वर्तमान पंजाब में बसे हुए थे। प्रभाकरवर्धन ने अपने ज्येष्ठ पुत्र राज्यवर्धन को हूणों के उन्मूलन के लिए भेजा था। राज्यवर्धन ने अपनी वीरता का परिचय देते हुए हूणों को पराजित भी किया था।
2. **सिंध पर विजय** – इस समय सिंध पर कुषाणों का अधिकार था। प्रभाकरवर्धन ने सिंधु पर भी अधिकार कर लिया था।
3. **गुर्जरों पर विजय** – गुर्जर इस समय राजस्थान पर राज्य कर रहे थे। हर्ष के समय में गुर्जरों की एक शाखा भृगुकच्छ में निवास करती थी। संभवतः प्रभाकरवर्धन के साथ इनके पूर्वजों का संघर्ष हुआ होगा। इसमें प्रभाकरवर्धन विजयी रहा था।
4. **मालव तथा लाट पर विजय**– लाट पर उस समय कल्चुरियों का शासन था। लाट प्रदेश गुजरात, कोंकण, उत्तरी महाराष्ट्र तक फैला हुआ था। पश्चिम मालव स्थित उज्जैन पर कल्चुरि शासक शंकरगढ़ का अधिकार था। पूर्वी मालव पर प्रभाकरवर्धन का अधिकार था।

इस प्रकार प्रभाकरवर्धन ने अपने शत्रुओं का नाश कर विशाल राज्य की स्थापना की। उसने अपने प्रतिद्वंद्वियों पर अधिकार कर उन्हें नतमस्तक किया। बंसखेड़ा और मधुबन लेख में लिखा है कि *'' उसका यश चारों समुद्रों को पार कर गया था तथा अन्य राजा उसके प्रताप अथवा प्रेम के कारण उसके सामने नतमस्तक होते थे।''* उसका विशाल साम्राज्य गांधार, सिंध तथा गुर्जर प्रदेश, मालव एवं पश्चिम में सिंध से लेकर दक्षिण में नर्मदा तक फैला था।

उसने अपने जीवनकाल में उत्तराधिकारी की घोषणा नहीं की थी। जब वह मृत्यु के निकट था तब उसके पुत्र हूणों का उन्मूलन करने गए हुए थे। दूत द्वारा हर्ष को तथा फिर राज्यवर्धन को बुलाया गया। किंतु प्रभाकरवर्धन की हालत इतनी गंभीर हो चुकी थी कि वैद्य, रसायन तथा सुषेन उसे नहीं बचा सके। यशोमती उसकी चिता में कूद कर सती हो गई थी। इसका उल्लेख बाण के हर्षचरित में किया गया है।

## राज्यवर्धन का शासनकाल

राज्यवर्धन, प्रभाकरवर्धन का ज्येष्ठ पुत्र तथा हर्ष का ज्येष्ठ भाई था। जब राज्यवर्धन हूणों के आक्रमण के लिए गया था तभी उसे अचानक युद्ध में अपने पिता के अस्वस्थ

होने की सूचना मिली, किंतु जब वह अपने पिता के पास पहुंचा तब तक बहुत देर हो चुकी थी, संपूर्ण नगर तथा राजपरिवार शोकयुक्त थे, उसके पिता मृत्यु को प्राप्त हो चुके थे, तत्पश्चात उसकी मां सती हो गई थी। ऐसी धारणा भी मिलती है कि जब तक राज्यवर्धन नहीं पहुंचा था तब दरबार में एक पक्ष हर्ष को राजा बनाना चाहते थे, किंतु जैसे ही राज्यवर्धन आ गया सभी योजनाएं विफल हो गईं। इस घटना की कोई प्रामाणिकता प्राप्त नहीं होती है, अतः यह कल्पना मात्र है।

टिप्पणी

राज्यवर्धन पिता की मृत्यु से इतना आहत हो चुका था कि वह अपने अनुज से आग्रह कर रहा था कि वह राज्य का भार संभाल ले, क्योंकि वह संन्यास ग्रहण करना चाहता है। उसने अपने अनुज से आग्रह किया कि *'' मैं पर्वत शिखर पर जाकर अपने स्नेहरूपी मल को बहते हुए झरनों से निर्मल करने हेतु संन्यास ग्रहण करने का इच्छुक हूं। अतः तुम मेरी आज्ञा प्राप्त कर राज सिंहासन पर आसीन हो।''* हर्ष दुखी मन से अपने भाई की बातों को सुनता रहा किंतु वह इसके लिए तैयार नहीं था, तभी दूत द्वारा यह सूचना प्राप्त हुई कि *''राजा प्रभाकरवर्धन की मृत्यु के कारण मालवा के शासक देवगुप्त ने उसके साम्राज्य को नेतृत्व विहीन जान कर राज्यवर्धन की बहन को कैद कर कारागार में डाल दिया तथा उसके पति गृहवर्मा की हत्या कर कन्नौज पर कुछ समय के लिए अधिकार कर लिया है और अब राज्यवर्धन पर आक्रमण करने की योजना बना रहा है।''*

अतः जब राज्यवर्धन ने इन परिस्थितियों को जाना तब वह सिंहासनारूढ़ हुआ और शासन की बागडोर अपने हाथों में ले ली। हर्षचरित में वर्णन किया गया है कि *''राज्यवर्धन ने हर्ष से कहा था कि आज मैं मालवा राजवंश का विनाश करने जाता हूं। उस उद्दंड शत्रु का दमन करना ही मेरे शोक को दूर करने का उपाय तथा मेरी तपस्या है। क्या मालवराज के हाथों मौखरियों का निरादर होगा? यह तो वैसा ही है जैसे अंधकार सूर्य का निरादर करें अथवा हरिण सिंह का बाल खींचें।''* अतः राज्यवर्धन व हर्ष के सम्मुख अब शीघ्र अतिशीघ्र अपनी बहन को आजाद करवाना तथा गृहवर्मा के राज्य की रक्षा करना ही एकमात्र उद्देश्य था। राज्यवर्धन अपने ममेरे भाई दंडी के साथ तुरंत ही अपनी सेना के साथ मालवराज पर आक्रमण करने के उद्देश्य से निकल पड़ा। हर्ष ने राज्य में रहकर ही अपने शासन की रक्षा की।

यहां पर मालव शासक देवगुप्त का संक्षिप्त वर्णन किया जाना अति आवश्यक है। मालव के शासक महासेन की दूसरी पत्नी से उत्पन्न पुत्र देवगुप्त था, जिसका अपने सौतले भाइयों से द्वेष था। वह मालव पर अधिकार करने का इच्छुक था अतः वह उचित अवसर की तलाश में था। कुछ समय पश्चात महासमन की स्थिति क्षीण होने लगी तभी देवगुप्त ने गौड़ नरेश शशांक से मैत्री संबंध स्थापित कर लिए और उसी की सहायता से वह मालव अथवा मालवा का शासक बन गया।

राज्यवर्धन ने देवगुप्त पर आक्रमण किया। दोनों के मध्य युद्ध हुआ। बंसखेड़ा और मधुबन अभिलेख के अनुसार राज्यवर्धन ने बड़ी आसानी से देवगुप्त को परास्त कर उसे मार डाला। हर्षचरित में वर्णन मिलता है कि ''हर्ष को सूचना दी गई कि राज्यवर्धन

टिप्पणी

ने मालव सेना को खेल–खेल में जीत लिया, किंतु शशांक के छल से वह नहीं बच सका और उसकी मृत्यु हो गई।" हर्षचरित के अनुसार, *''शशांक ने राज्यवर्धन से अपनी पुत्री के विवाह का प्रस्ताव रखा और वार्ता के लिए बुलाया, राज्यवर्धन बिना अपनी सुरक्षा व्यवस्था किए उससे मिलने उसके राजमहल में चला गया। अवसर पाकर शशांक ने निहत्थे राज्यवर्धन की हत्या कर दी।''* शशांक द्वारा विश्वासघात की घटना हर्षचरित पर आधारित है, किंतु इस घटना का उल्लेख हमें अन्य किसी साहित्य से प्राप्त नहीं होता है अतः डॉ. मजूमदार का मत है कि बिना पूर्ण साक्ष्यों के शशांक को विश्वासघाती कहना उचित नहीं है। परिणामस्वरूप राज्यवर्धन की हत्या कर दी गई और अब समस्त शासन की जिम्मेदारी तथा बहन की रक्षा इत्यादि हर्ष को अकेले ही करनी थी।

## हर्षवर्धन का शासन काल

हर्षवर्धन प्राचीन भारत में एक राजा था जिसने उत्तरी भारत में अपना एक सुदृढ़ साम्राज्य स्थापित किया था। वह अंतिम हिंदू सम्राट् था जिसने पंजाब छोड़कर शेष समस्त उत्तरी भारत पर राज्य किया। शशांक की मृत्यु के उपरांत वह बंगाल को भी जीतने में समर्थ हुआ। हर्षवर्धन के शासनकाल का इतिहास मगध से प्राप्त दो ताम्रपत्रों, राजतरंगिणी, चीनी यात्री युवान् च्वांग के विवरण और हर्ष एवं बाणभट्ट रचित संस्कृत काव्य ग्रंथों में प्राप्त है।

उसके पिता का नाम 'प्रभाकरवर्धन' था। राजवर्धन उसका बड़ा भाई और राज्यश्री उसकी बड़ी बहन थी। 605 ई. में प्रभाकरवर्धन की मृत्यु के पश्चात् राजवर्धन राजा हुआ पर मालव नरेश देवगुप्त और गौड़ नरेश शशांक की दुरभिसंधिवश मारा गया। हर्षवर्धन 606 में गद्दी पर बैठा। हर्षवर्धन ने बहन राज्यश्री का विंध्याटवी से उद्धार किया, थानेश्वर और कन्नौज राज्यों का एकीकरण किया। देवगुप्त से मालवा छीन लिया। शशांक को गौड़ भगा दिया। दक्षिण पर अभियान किया और उसने आंध्र के राजा पुलकेशिन द्वितीय को हराया और उसे उसका जीवन और राज्य दोनों ही भीख में दे दिए।

उसने साम्राज्य को सुंदर शासन दिया। धर्मों के विषय में उदार नीति बरती। विदेशी यात्रियों का सम्मान किया। चीनी यात्री युवेन सांग ने उसकी बड़ी प्रशंसा की है। प्रति पांचवें वर्ष वह सर्वस्व दान करता था। इसके लिए बहुत बड़ा धार्मिक समारोह करता था। कन्नौज और प्रयाग के समारोहों में युवेन सांग उपस्थित था। हर्ष साहित्य और कला का पोषक था। कादंबरीकार बाणभट्ट उसका अनन्य मित्र था। हर्ष स्वयं पंडित था। वह वीणा बजाता था। उसकी लिखी तीन नाटिकाएं नागानन्द, रत्नावली और प्रियदर्शिका संस्कृत साहित्य की अमूल्य निधियां हैं। हर्षवर्धन का हस्ताक्षर मिला है जिससे उसका कला के प्रति प्रेम प्रगट होता है।

गुप्त साम्राज्य के पतन के बाद भारत में (मुख्यतः उत्तरी भाग में) अराजकता की स्थिति बनी हुई थी। ऐसी स्थिति में हर्ष के शासन ने राजनैतिक स्थिरता प्रदान की। कवि बाणभट्ट ने उसकी जीवनी हर्षचरित में उसे चतुःसमुद्राधिपति एवं सर्वचक्रवर्तिनाम धीरयेः आदि उपाधियों से अलंकृत किया। हर्ष कवि और नाटककार भी था। उसके लिखे गए दो नाटक प्रियदर्शिका और रत्नावली प्राप्त होते हैं।

टिप्पणी

हर्ष का जन्म थानेसर (वर्तमान में हरियाणा) में हुआ था। थानेसर, प्राचीन हिन्दुओं के तीर्थ केन्द्रों में से एक है तथा 51 शक्तिपीठों में एक है। यह अब एक छोटा नगर है जो दिल्ली के उत्तर में हरियाणा राज्य में बने नये कुरुक्षेत्र के आस–पास स्थित है। हर्ष के मूल और उत्पत्ति के संदर्भ में एक शिलालेख प्राप्त हुआ है जो कि गुजरात राज्य के गुन्डा जिले में खोजा गया है। चीनी यात्री ह्वेनसांग ने अपनी पुस्तक में इनके शासन काल के बारे में लिखा है।

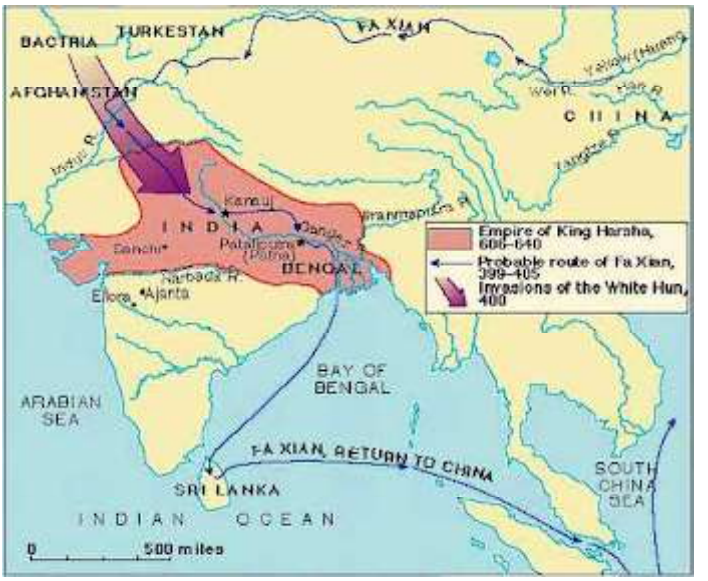


## शासन प्रबन्ध

हर्ष स्वयं प्रशासनिक व्यवस्था में व्यक्तिगत रूप से रुचि लेता था। सम्राट की सहायता के लिए एक मंत्रिपरिषद् गठित की गई थी। बाणभट्ट के अनुसार, 'अवन्ति' युद्ध और शान्ति का सर्वोच्च मंत्री था। 'सिंहनाद' हर्ष का महासेनापति था। बाणभट्ट ने हर्षचरित में इन पदों की व्याख्या इस प्रकार की है–

अवन्ति – युद्ध और शान्ति का मंत्री

सिंहनाद – हर्ष की सेना का महासेनापति

कुन्तल – अश्वसेना का मुख्य अधिकारी

स्कन्दगुप्त – हस्तिसेना का मुख्य अधिकारी

भंडी– प्रधान सचिव

लोकपाल– प्रान्तीय शासक

## हर्षवर्धन के संदर्भ में प्रमुख तथ्य इस प्रकार हैं–

1. हर्षवर्धन भारत के आखिरी महान राजाओं में एक थे। चौथी शताब्दी से लेकर छठी शताब्दी तक मगध पर से भारत पर राज करने वाले गुप्त वंश का जब अन्त हुआ, तब देश के क्षितिज पर सम्राट हर्ष का उदय हुआ। उन्होंने कन्नौज को अपनी राजधानी बनाकर पूरे उत्तर भारत को एक सूत्र में बांधने में सफलता हासिल की।

टिप्पणी

2. 16 वर्ष की छोटी उम्र में राजा बने। बड़े भाई राज्यवर्धन की हत्या के बाद हर्षवर्धन को राजपाट सौंप दिया गया। खेलने–कूदने की उम्र में हर्षवर्धन को राजा शशांक के खिलाफ युद्ध के मैदान में उतरना पड़ा। शशांक ने ही राज्यवर्धन की हत्या की थी।
3. हर्षवर्धन ने एक विशाल सेना तैयार की और करीब 6 साल में वल्लभी, मगध, कश्मीर, गुजरात और सिंध को जीत कर पूरे उत्तर भारत पर अपना दबदबा कायम कर लिया। जल्दी ही हर्षवर्धन का साम्राज्य गुजरात (पश्चिम) से लेकर आसाम (पूर्व) तक और कश्मीर (उत्तर) से लेकर नर्मदा नदी (दक्षिण) तक फैल गया।
4. माना जाता है कि सम्राट हर्षवर्धन की सेना में 1 लाख से अधिक सैनिक थे। यही नहीं, सेना में 60 हजार से अधिक हाथियों को रखा गया था।
5. हर्ष परोपकारी सम्राट थे। सम्राट हर्षवर्धन ने भले ही अलग–अलग राज्यों को जीत लिया, लेकिन उन राज्यों के राजाओं को अपना शासन चलाने की इजाजत दी। शर्त एक थी कि वे हर्ष को अपना सम्राट मानेंगे। हालांकि इस तरह की संधि कन्नौज और थानेश्वर के राजाओं के साथ नहीं की गई थी।
6. 21वीं सदी में, जहां भारत और चीन जैसे उभरते हुए देशों के बीच राजनीतिक सम्बन्ध बिगड़ते नजर आ रहे थे, वहीं 7वीं सदी में हर्ष ने कला और संस्कृति के बलबूते पर, दोनों देशों के बीच बेहतर संबंध बनाकर रखे थे। इतिहास के मुताबिक, चीन के मशहूर चीनी यात्री ह्वेनसांग हर्ष के राज–दरबार में 8 साल तक उनके दोस्त की तरह रहे थे।
7. हर्षवर्धन ने सामाजिक कुरीतियों को जड़ से खत्म करने का बीड़ा उठाया था। उनके राज में सती प्रथा पर पूरी तरह प्रतिबंध लगा दिया गया। कहा जाता है कि सम्राट हर्षवर्धन ने अपनी बहन को भी सती होने से बचाया था।
8. पारम्परिक हिन्दू परिवार में जन्म लेने वाले सम्राट हर्ष, सभी धर्मों को समान आदर और महत्व देते थे। बौद्ध धर्म हो या जैन धर्म, हर्ष किसी भी धर्म में भेद–भाव नहीं करते थे। चीनी दूत ह्वेनसांग ने अपनी किताबों में भी हर्ष को महायान यानी कि बौद्ध धर्म के प्रचारक की तरह दिखाया है।
9. सम्राट हर्षवर्धन ने शिक्षा को देश भर में फैलाया। हर्षवर्धन के शासनकाल में नालंदा विश्वविद्यालय एक शिक्षा के सर्वश्रेष्ठ केन्द्र के रूप में प्रसिद्ध हुआ।
10. हर्ष एक बहुत अच्छे लेखक ही नहीं, बल्कि एक कुशल कवि और नाटककार भी थे। हर्ष की ही देख–रेख में 'बाना' और 'मयूरा' जैसे मशहूर कवियों का जन्म हुआ था। यही नहीं, हर्ष खुद भी एक बहुत ही मंजे हुए नाटककार के रूप में सामने आए। 'नगनन्दा', 'रत्नावली' और 'प्रियदर्शिका' उनके द्वारा लिखे गए कुछ नामचीन नाटक हैं।
11. प्रयाग का मशहूर 'कुम्भ मेला' भी हर्ष ने ही शुरू करवाया था। प्रयाग (इलाहाबाद) में हर साल होने वाला 'कुम्भ मेला', जो सदियों से चला आ रहा है और हिन्दू धर्म के प्रचारकों के बीच काफी प्रसिद्ध है; माना जाता है कि वो भी राजा हर्ष ने ही शुरू करवाया था।

टिप्पणी

12. भारत की अर्थव्यवस्था ने हर्ष के शासनकाल में बहुत तरक्की की थी। भारत, जो मुख्य तौर पर एक कृषि–प्रधान देश माना जाता है; हर्ष के कुशल शासन में तरक्की की ऊंचाइयों को छू रहा था। हर्ष के शासनकाल में भारत ने आर्थिक रूप से बहुत प्रगति की थी।
13. हर्ष के बाद उनके राज्य को संभालने के लिए उनका कोई भी वारिस नहीं था। हर्षवर्धन के अपनी पत्नी दुर्गावती से 2 पुत्र थे– वाग्यवर्धन और कल्याणवर्धन। पर उनके दोनों बेटों की अरुणाश्वा नामक मंत्री ने हत्या कर दी। इस वजह से हर्ष का कोई वारिस नहीं बचा।
14. हर्ष के मरने के बाद उनका साम्राज्य भी पूरी तरह से समाप्त हो गया था। 647 ई. में हर्ष के मरने के बाद, उनका साम्राज्य भी धीरे–धीरे बिखरता चला गया और फिर समाप्त हो गया। उनके बाद जिस राजा ने कन्नौज की बागडोर संभाली थी, वह बंगाल के राजा के विरुद्ध जंग में हार गया। वारिस न होने की वजह से, सम्राट हर्षवर्धन का साम्राज्य छिन्न–भिन्न हो गया।
15. सम्राट हर्षवर्धन एक बड़ा गंभीर, कूटनीतिज्ञ, बुद्धिमान एवं अखण्ड भारत की एकता को साकार करने के स्वप्न को संजोने वाला राजनीतिज्ञ था। इसका विश्लेषण बड़े पुष्ट प्रमाणों के साथ इतिहासकार विजय नाहर के ग्रन्थ शीलादित्य सम्राट हर्षवर्धन एवं उनका युग में उपलब्ध होता है। जैसे शशांक से संधि, पुलकेशिन द्वितीय से संधि एवं वल्लभी नरेश ध्रुव भट्ट के साथ संधि करना उसकी दूरदर्शिता पूर्ण राजनीतिज्ञता तथा सफल कूटनीतिज्ञता की प्रतिभा को उजागर करता है। हर्ष ने किसी भी प्रश्न को अपनी व्यक्तिगत प्रतिष्ठा एवं महत्वाकांक्षा का प्रश्न नही बनाया बल्कि राष्ट्रीय सुरक्षा एवं संपूर्ण उत्तर भारत की सुदृढ़ संगठित शक्ति का दृष्टिकोण अपनी आंखों के समक्ष हमेशा रखा।

## हर्ष की मृत्यु

647 ई. में हर्ष की मृत्यु हो गई। अतः 647 ई. तक ही हर्ष ने शासन किया। हर्ष के पश्चात कौन शासक बना इसके विषय में कोई जानकारी प्राप्त नहीं है। इसके साथ ही उसकी बहन राजश्री के राज्य अथवा शासन के विषय में भी कोई जानकारी प्राप्त नहीं है।

## वर्धन वंश के स्रोत

550 ई. के पश्चात उत्तर भारत में जिस राजवंश की नींव रखी गई उसे इतिहास में वर्धन एवं पुष्यभूति वंश के नाम से जाना जाता है। वर्धन वंश के शासन के विषय में जानकारी के लिए हमारे पास निम्नलिखित साधन हैं– पुरातात्विक स्रोत (अभिलेख, मुहर), साहित्यिक स्रोत (हर्षचरित, आर्यमंजूश्रीमूलकल्प, कादंबरी, अन्य), विदेशी विवरण (ह्वेनसांग का वृत्तांत)।

## पुरातात्विक स्रोत

वर्धन वंश के पुरातात्विक स्रोत इस प्रकार हैं–

**अभिलेख**– अभिलेखों में 'मधुबन का लेख' है जो उत्तर प्रदेश के आजमगढ़ जिले के घोषी तहसील से प्राप्त हुआ है। जिससे ज्ञात होता है कि हर्ष ने सोमकुंडा नामक ग्राम

टिप्पणी

को दान में दिया था। यह लेख 631 ई. का है। एक अन्य लेख 'बंसखेड़ा का लेख' है, जो उत्तर प्रदेश के शाहजहांपुर जिले से प्राप्त हुआ है, जिसके अनुसार हर्ष द्वारा बालचंद्र तथा भटट्स्वामी नामक दो ब्राह्मणों को मर्कटसागर नामक दो ग्राम दान में दिए थे। इसी लेख में राज्यवर्धन द्वारा मालवा के शासक देवगुप्त पर विजय तथा गौड़ शासक शशांक की हत्या का उल्लेख किया गया है तथा हर्ष के शासन के पदाधिकारियों के नाम भी मिलते हैं। इसी प्रकार पुलकेशिन द्वितीय का 'ऐहोल अभिलेख' है जिसमें हर्ष तथा पुलकेशिन के मध्य हुए संघर्ष का विवरण किया गया है। यह अभिलेख रविकीर्ति द्वारा लिखा गया था, जो पुलकेशिन द्वितीय का दरबारी कवि था। इसकी तिथि 633–34 ई. है।

**मुहरें**– उत्तर प्रदेश के फैजाबाद के भितौरा से हर्ष के कुछ सिक्के प्राप्त हुए हैं, ये चांदी की मुहर है और इस पर 'श्री भालदत्त' अंकित है। हर्ष की एक मुहर नालंदा से प्राप्त हुई है जो मिट्टी की बनी है, तथा दूसरी मुहर जो सोनपत (सोनीपत) से प्राप्त हुई है, तांबे की है। हर्ष का पूरा नाम 'हर्षवर्धन' सर्वप्रथम हमें सोनपत से प्राप्त मुहर से ही ज्ञात होता है। फर्रूखाबाद से हर्ष का एक स्वर्ण सिक्का प्राप्त हुआ है जिसके मुख भाग पर 'परमभटट्ारक महाराजाधिराज श्रीहर्षदेव' अंकित है और पृष्ठ भाग पर 'उमामहेश्वर' की आकृति अंकित है।

## साहित्यिक स्रोत

वर्धन वंश के साहित्यिक स्रोत इस प्रकार हैं–

1. **हर्षचरित** – हर्षचरित की रचना हर्ष के दरबारी कवि बाणभटट् द्वारा की गई थी। बाणभटट् एक ब्राह्मण था, उसने इस रचना के प्रारंभिक अध्याय में स्वयं के जीवन तथा परिवार का उल्लेख किया है। दूसरे, तीसरे व चौथे अध्याय में थानेश्वर के संपूर्ण इतिहास का वर्णन मिलता है। शेष रचना हर्ष से संबंधित है। विद्वानों के अनुसार बाण ने अपने शासक का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन किया है किंतु फिर भी यह ग्रंथ हर्षकालीन जानकारी के लिए अधिक उल्लेखनीय है। अंतिम अध्याय में राजश्री की खोज तथा सैन्य शिविर में वापसी का उल्लेख किया गया है और अचानक ही विवरण समाप्त हो गया है। विद्वानों के अनुसार

इसका कारण या तो लेखक का उद्देश्य राजश्री की प्राप्ति तक ही था या वह स्वयं कालकवलित हो गया था।

टिप्पणी

2. **आर्यमन्जूश्रीमूलकल्प**– यह एक बौद्ध ग्रंथ है जिसमें एक हजार श्लोक हैं। इस ग्रंथ से हमें 7वीं शताब्दी ईसा पूर्व से 8वीं शताब्दी ई. तक के इतिहास की जानकारी प्राप्त होती है। विद्वानों के अनुसार यह ग्रंथ अधिक प्रामाणिक नहीं है क्योंकि इसमें अनैतिहासिक सामग्री नहीं है।
3. **कादंबरी**– यह संस्कृत साहित्य का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास माना जाता है, जो हर्षकालीन सामाजिक तथा धार्मिक स्थिति का बोध कराता है। यह बाणभट्ट की रचना है।
4. इसके अतिरिक्त हर्ष द्वारा लिखी गई रचनाएं उल्लेखनीय हैं, ये रचनाएं प्रियदर्शिका, रत्नावली, नागानंद हैं। जो तत्कालीन इतिहास जानने में अधिक सहायक हैं।

## विदेशी विवरण

1. **ह्वेनसांग का विवरण** – ह्वेनसांग हर्ष के शासनकाल में ही भारत की यात्रा पर आया था और लगभग 16 वर्षों तक उसने संपूर्ण भारत का भ्रमण किया। उसकी यात्रा का उद्देश्य मात्र बौद्ध धर्म की वास्तविक तथा मूल जानकारी प्राप्त करना तथा उन स्थलों के दर्शन करना जहां बुद्धदेव के चरण पड़े थे किंतु इसके

टिप्पणी

साथ ही उसने भारत में प्रवेश करते ही यहां के नगरों तथा जन–जीवन और हर्षकालीन समस्त महत्वपूर्ण तथ्यों को उजागर किया। यात्रा का विवरण उसने अपनी पुस्तक 'सी–यू–की' में प्रस्तुत किया है। इस पुस्तक का हर्ष के इतिहास में वही स्थान है जो हर्षचरित या प्रियदर्शिका का है।

2. **ह्वी–ली द्वारा विवरण** –ह्वी–ली, ह्वेनसांग का मित्र था। उसने 'ह्वेनसांग की जीवनी' नामक पुस्तक की रचना चीनी भाषा में की थी। इसमें हर्षकालीन ऐतिहासिक महत्वपूर्ण तथ्यों का उल्लेख किया गया है। इसका अंग्रेजी अनुवाद बील द्वारा किया गया है।
3. **इत्सिंग का विवरण**– इत्सिंग भी एक चीनी यात्री था। उसने भी हर्षकालीन घटनाओं का उल्लेख किया है। वह हर्ष का समकालीन नहीं था। उसने हर्ष की मृत्यु के लगभग 24 वर्षों पश्चात भारत की यात्रा की थी। इसलिए उसके द्वारा किए गए वर्णनों में हर्षकालीन घटनाओं का उल्लेख मिलता है। उसके द्वारा लिखी गई पुस्तक का अंग्रेजी अनुवाद जापानी बौद्ध विद्वान *तक्कुसु* ने *'ए रिकॉर्ड ऑफ द बुद्धिस्ट रिलीजन'* नाम से किया है।

## वर्धन वंश की समाप्ति

हर्ष की कोई संतान नहीं थी किंतु उसके द्वारा अपने शासन काल में किसी भी उत्तराधिकारी की घोषणा नहीं की गई थी। अतः हर्ष ही वर्धन वंश का अंतिम शासक था। उसके किसी भी अभिलेख से इस संबंध में कोई जानकारी नहीं प्राप्त होती है। न ही बाण के द्वारा इस संबंध में कोई उल्लेख किया गया है। हर्ष की मृत्यु के पश्चात उत्तर भारत में पुनः अराजकता फैल गई थी। उसके बाद कन्नौज पर किसी अर्जुन नामक व्यक्ति के शासक होने के संकेत मिलते हैं। चीनी लेखक मा–त्वान–लिन् के अनुसार 646 ई. में चीनी नरेश ने वंग हुएनत्से के नेतृत्व में तीसरा दूतमण्डल भारत भेजा तब तक हर्ष की मृत्यु हो चुकी थी और अर्जुन कन्नौज पर शासन कर रहा था। अर्जुन कौन था? इस विषय में कोई जानकारी नहीं है। हर्ष की प्राप्त वंशावली में भी हर्ष ही अंतिम सम्राट था।

### अपनी प्रगति जांचिए

1. हर्षवर्धन के पिता का क्या नाम था?
   (क) राज्यवर्धन (ख) प्रभाकरवर्धन
   (ग) नरवर्धन (घ) आदित्यवर्धन
2. वर्धन वंश की नींव उत्तर भारत में कब रखी गई थी?
   (क) 550 ई. के पश्चात (ख) 647 ई. के पश्चात
   (ग) 667 ई. के पश्चात (घ) इनमें से कोई नहीं

## 1.3 हर्ष की सैन्य उपलब्धियां

टिप्पणी

हर्ष को पैतृक साम्राज्य के रूप में अत्यंत छोटा–सा राज्य ही प्राप्त हुआ था, परंतु हर्ष ने अपनी प्रतिभा व योग्यता के बल पर लगभग संपूर्ण भारत पर आधिपत्य स्थापित किया। अदीश चंद्र बनर्जी के अनुसार, "हर्ष का आधिपत्य उत्तर में शतद्रू के तट से लेकर दक्षिण में नर्मदा तक और पश्चिमी मालवा के सीमा प्रांत से लेकर पूर्व हिमालय के समीप स्थित प्रदेशों तक की भूमि पर स्थापित था।"

### हर्ष की सैनिक उपलब्धियां

हर्ष की प्रमुख सैन्य उपलब्धियां इस प्रकार हैं–

1. **शशांक की पराजय तथा राजश्री को मुक्त कराना**– राज्यवर्धन द्वारा अपने साथ ले जाई गई सेना में से एक टुकड़ी भण्डि के नेतृत्व में अभी भी मालव में ही थी। अब मालव की सेना भी भण्डि के साथ थी। हर्ष ने एक विशाल सेना के साथ सर्वप्रथम अपनी बहन को मुक्त कराने के उद्देश्य से कन्नौज की ओर प्रस्थान किया। एक दिन की यात्रा पूर्ण करने के उपरांत शिविर में कामरूप के शासक भास्करवर्मा ने शशांक के विरुद्ध संधि हेतु भारी भेटों के साथ अपना एक दूत हर्ष के पास भेजा, अपने मंत्रियों, सलाहकारों से वार्ता के उपरांत उसने यह मैत्री स्वीकार की। दूसरे दिन की यात्रा के पश्चात भण्डि ने स्वयं आकर राज्यवर्धन की हत्या का विवरण दिया तथा हर्ष को सूचना दी कि राजश्री कैद से मुक्त होकर सती होने के उद्देश्य से विंध्याचल के जंगलों में भाग गई है। अब हर्ष को अपनी योजनाओं में परिवर्तन करना आवश्यक हो गया था क्योंकि अब उसे यह ज्ञात नहीं था कि राजश्री विंध्याचल में किस तरफ गई है। वर्तमान परिस्थितियों के अनुसार उसे सर्वप्रथम अपनी बहन को बचाना था, जो किसी भी समय अपना जीवन समाप्त कर सकती थी। अतः हर्ष ने निर्णय लिया कि भण्डि के नेतृत्व में एक सेना शशांक पर आक्रमण करने के उद्देश्य से भेजी जाए तथा वह स्वयं माधवगुप्त के साथ राजश्री को ढूंढ़ने हेतु प्रस्थान करे, अब इसी योजनानुसार कदम उठाया गया। राजश्री को ढूंढ़ने में विंध्याचल निवासी बौद्ध भिक्षु दिवाकरमित्र की असीम सहायता से वह राजश्री को ढूंढ़ने में सफल रहा और ठीक उसी समय वह राजश्री के पास पहुंचा जब वह अग्नि को समर्पित होने जा रही थी। हर्ष ने उससे अनेक विनती की कि वह सती होने की हठ छोड़ दे, उसने यह विश्वास दिलाया कि भाई की मृत्यु का प्रतिशोध लेने के पश्चात दोनों ही संन्यास धारण कर लेंगे। इस प्रकार वह राजश्री को बचाकर तुरंत भण्डि के पास पहुंचा। ये समस्त विवरण हमें हर्षचरित से ज्ञात होता है किंतु यहां से हर्षचरित आश्चर्यजनक ढंग से समाप्त हो जाता है। इसके पश्चात का विवरण हमें यह प्राप्त होता है कि *'' 'ह' (हर्ष) नामक राजा पूर्व की ओर पुण्ड्रनगर गया और शशांक को पराजित किया तथा अपने ही राज्य में बंद रहने के लिए बाध्य किया। हर्ष का गौड़ लोगों द्वारा स्वागत न किए जाने पर वह वापस लौट गया।''* विद्वानों द्वारा इस घटना पर संशय है। शशांक तथा हर्ष के युद्ध की कोई घटना हमें नहीं मिलती है। शशांक अब अपनी स्थिति को समझ गया

टिप्पणी

था कि उसकी सहायता करने वाला देवगुप्त मारा जा चुका है अतः उसने स्वतः ही कन्नौज छोड़ दिया। हर्ष ने अपनी बहन तथा उसके राज्य की रक्षा हेतु अपनी राजधानी थानेश्वर से कन्नौज स्थानांतरित कर ली और राज्यश्री अपने राज्य की संरक्षिका बनी। दोनों एक साथ सिंहासन पर बैठते थे। इसके पश्चात उसने अपने साम्राज्य के विस्तार के लिए कार्य किया तथा प्रशासन को मजबूत बनाया।

2. **कामरूप**—जैसा कि ज्ञात है कि कामरूप के शासक भास्करवर्मा ने हर्ष से मैत्री हेतु दूत भेजा था। ह्वेनसांग के विवरण से ज्ञात होता है कि *''जब ह्वेनसांग हर्ष के दरबार में आया हुआ था तब हर्ष द्वारा भास्करवर्मा को बुलाए जाने पर उसने कहा था कि चीनी यात्री के समक्ष आने से पूर्व वह अपना सिर कटवाना पसंद करेगा, इस पर हर्ष क्रोधित हुआ और तुरंत सिर कटवाने का आदेश दिया। यह भास्करवर्मा के लिए अत्यंत आश्चर्यजनक बात थी अतः भयभीत होकर वह चीनी यात्री के समक्ष हर्ष के दरबार में प्रस्तुत हुआ।''* विद्वानों के अनुसार इसलिए संभवतः कुछ समय के लिए हर्ष बंगाल का स्वामी रहा होगा।
3. **वल्लभी** – वल्लभी के शासक के साथ हर्ष के संघर्ष अथवा युद्ध की कोई घटना नहीं मिलती है। डॉ. मजूमदार के अनुसार प्रारंभ में हर्ष को वल्लभी के शासक के विरुद्ध कुछ सफलताएं मिलीं किंतु बाद में कुछ मित्र राजाओं और दद्द द्वितीय की सहायता से वल्लभी के नरेश को सफलता मिली। किंतु अन्य विद्वान इससे सहमत नहीं हैं।
4. **सिंध**– हर्षचरित में प्रभाकरवर्धन के लिए 'सिंधराज ज्वर' शब्द प्रयुक्त किया गया है, जिससे स्पष्ट है कि उसने सिंध पर अधिकार किया था किंतु शायद प्रभाकरवर्धन की मृत्यु तथा राज्यवर्धन की हत्या के कारण थानेश्वर के साम्राज्य को कमजोर समझ कर सिंध के शासक ने स्वयं को स्वतंत्र कर लिया था। हर्षचरित के अनुसार हर्ष ने सिंध के राजा को परास्त तो अवश्य किया था किंतु उसका राज्य नहीं छीना था। हर्ष की यह नीति गुप्त सम्राट समुद्रगुप्त की दक्षिणी नीति से मेल करती है। सिंध के शासक के नाम की जानकारी हमें न ही बाण के हर्षचरित से मिलती है और न ही ह्वेनसांग के विवरण से प्राप्त होती है। इस प्रकार सिंध पर भी हर्ष ने विजयश्री प्राप्त की थी।
5. **कश्मीर**– कश्मीर पर हर्ष के अधिकार के संबंध में विद्वानों के विभिन्न मत हैं। 'जीवनी' में वर्णित है कि ''जब हर्ष को ज्ञात हुआ कि कश्मीर में भगवान बुद्ध का दांत रखा हुआ है तो वह दर्शन की इच्छा से कश्मीर गया किंतु वहां के बौद्ध संघ ने उसकी प्रार्थना नहीं सुनी, तब कश्मीर नरेश के कहने पर दांत हर्ष के सम्मुख कर दिया गया। हर्ष उसे देख कर श्रद्धा से विभोर हो उठा। हर्ष बलपूर्वक दांत को अपने साथ ले आया।'' विद्वानों का मानना है कि इस घटना के आधार पर यह संभव नहीं है कि कश्मीर पर हर्ष का अधिकार था।

टिप्पणी

6. **उड़ीसा तथा दक्षिण भारत**– साक्ष्यों के आधार पर हमें ज्ञात होता है कि उड़ीसा पर हर्ष का अधिकार था, पंजाब पर अधिकार करने के समय उसने उड़ीसा में ही अपना शिविर लगाया था।

   हर्ष ने नर्मदा नदी के दक्षिण में सैनिक अभियान किया तथा कांची, कुंतल और चोल पर विजय प्राप्त की। हालांकि इस संबंध में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। ह्वेनसांग के विवरण से केवल यही ज्ञात होता है कि हर्ष ने उड़ीसा पर विजय प्राप्त की थी। हर्ष ने सुदूर दक्षिण के राज्यों पल्लव, चोल तथा कांची पर विजय प्राप्त की थी किंतु हर्ष ने समुद्रगुप्त की भांति इन राज्यों पर अधिकार नहीं किया था। मात्र उन्हें अपनी अधीनता स्वीकार करवाई थी।

7. **पुलकेशिन द्वितीय से युद्ध**– ह्वेनसांग ने हर्ष और पुलकेशिन के युद्ध का विस्तृत वर्णन किया है। उसी के विवरण से ज्ञात होता है कि पुलकेशिन के उत्तराधिकारी हर्ष पर विजय से अत्यंत गर्व का अनुभव करते हैं। अभिलखों से भी हमें पुलकेशिन द्वितीय द्वारा हर्ष पर विजय का उल्लेख मिलता है।

8. **नेपाल**– हर्ष का नेपाल पर अधिकार था अथवा नहीं इस संबंध में विद्वानों में मतैक्य है। राजाकुमुद मुखर्जी कहते हैं कि नेपाल में हर्ष संवत् का प्रचलन उसके आधिपत्य का सूचक है किंतु अन्य विद्वान इस मत को नहीं मानते हैं, क्योंकि संवत् का प्रयोग उसके आधिपत्य को स्पष्ट नहीं करता है। संभवतः हर्ष ने हिमालय की तराई का कोई क्षेत्र विजित किया होगा। नेपाल पर अधिकार के संबंध में कुछ भी निश्चित नहीं है।

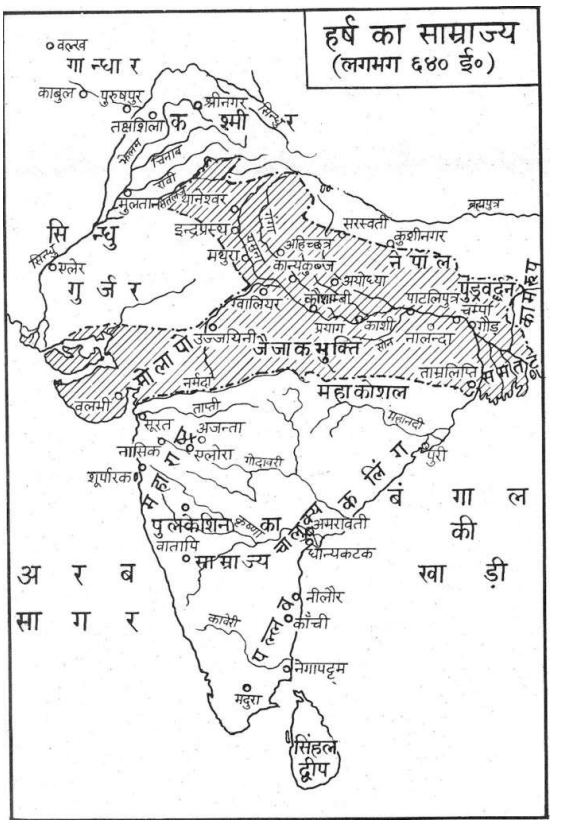

टिप्पणी

## हर्ष का साम्राज्य विस्तार

जैसा कि उपरोक्त वर्णन से ज्ञात होता है कि हर्ष के साम्राज्य की सीमा के विषय में स्पष्टता प्रकट नहीं हो सकी है। इस संबंध में विद्वानों में मतभेद है। कुछ राज्य उसे विरासत में भी प्राप्त हुए थे। उसके पैतृक राज्य में पूर्वी राजपूताना तथा दक्षिण थानेश्वर शामिल थे। हर्ष को कन्नौज का राज्य अपने बहनोई की हत्या के उपरांत प्राप्त हुआ था। ह्वेनसांग कुछ राज्यों के नाम बताता है जो उसके अधीन थे, जैसे – अहिच्छत्र, कुलतो, कपिथ, सुवर्णगोत्र, शतद्रु, थानेश्वर, श्रुध्न, ब्रहापुर, अगोविषाण, अयोध्या, प्रयाग, कौशांबी, श्रावस्ती, कपिलवस्तु, कुशीनारा, वैशाली, वज्जि, रामगाम, वाराणसी, चंपा, पुण्ड्रवर्धन, समतट, ताम्रलिप्ति, कंगोद। इन क्षेत्रों के विषय में ह्वेनसांग अन्य कोई जानकारी नहीं देता है। यहां पर ह्वेनसांग का वर्णन संदिग्ध प्रतीत होता है। वह अपने वर्णन में मथुरा, सुवर्णगात्र, कपिशा, मतिपुर, कपिलवस्तु, कामरूप, वल्लभी, भड़ौच, उज्जैन को स्वतंत्र राज्य बताता है। मधुबन लेख के आधार पर श्रावस्ती तथा अहिच्छत्र पर असके अधिकार की पुष्टि होती है। चीनी स्रोतों में उसने स्वयं को 'मगधराज' कहा है। जिससे मगध के उसके राज्य में होने की पुष्टि होती है। संभवतः शशांक की मृत्यु के पश्चात उसने बंगाल पर अधिकार कर लिया था। ह्वेनसांग के विवरण के आधार पर ही हम उसके साम्राज्य की सीमा का निर्धारण कर सकते हैं। उसका साम्राज्य पश्चिम में पश्चिमी मालवा, जेजाभुक्ति, उज्जैन, माहेश्वरपुर, वैराट तक था। उत्तर में हर्ष का साम्राज्य नेपाल की सीमा तक था। नर्मदा तथा विंध्य की पहाड़ियां ही हर्ष के राज्य की सीमा थी। उसके साम्राज्य में कुछ राज्य प्रत्यक्ष रूप से शासित राज्य थे, कुछ मित्र राज्य और कुछ अर्धस्वतंत्र राज्य थे। विदेशी संबंधों के विषय में हमारे पास चीनी साक्ष्य मौजूद हैं। उसने एक ब्राह्मण दूत अपने समकालीन चीनी शासक ताईसुंग के दरबार में भेजा था तथा चीनी नरेश लियांग–होई–किंग नामक दूत उसके दरबार में भेजा था।

इस प्रकार प्रारंभ में हर्ष का जीवन अत्यंत संघर्षपूर्ण तथा अव्यवस्थित था। उसे बाल अवस्था में ही कठिन परिस्थितियों का सामना करना पड़ा। कम उम्र में उसने अपने शासन तथा अपनी बहन के जीवन की रक्षा की। हर्ष का कोई उत्तराधिकारी नहीं था। इस विषय में हमें कोई साक्ष्य भी प्राप्त नहीं होता है कि हर्ष ने अपने जीवन काल में किसी उत्तराधिकारी की घोषणा की थी। 647 ई. में हर्ष की मृत्यु हो गई। इसके पश्चात एक बार पुनः उत्तर भारत की राजनीति में अराजकता व्याप्त हो गई।

### अपनी प्रगति जांचिए

3. निम्न में से हर्ष की सैनिक उपलब्धि कौन–सी है?

(क) शशांक की पराजय (ख) राजश्री को मुक्त कराना

(ग) पुलकेशिन द्वितीय से युद्ध (घ) उपरोक्त सभी

4. हर्षवर्धन की मृत्यु कब हुई थी?

(क) 615 ई. (ख) 627 ई.

(ग) 647 ई. (घ) 657 ई.

## 1.4 हर्ष की सांस्कृतिक उपलब्धियां और प्रशासन

टिप्पणी

जहां तक हर्ष के व्यक्तिगत धर्म की बात है, उसके पूर्वज शिव तथा सूर्य के उपासक थे। उसके धर्म के विषय में हमें ह्वेनसांग के वृत्तांत तथा हर्षचरित से सूचनाएं मिलती हैं। लेकिन कुछ स्रोतों तथा हर्षचरित से ज्ञात होता है कि जब हर्ष ने शशांक पर आक्रमण किया था उससे पूर्व उसने शिव की पूजा की थी। उसने अनेक भव्य मंदिरों का भी निर्माण करवाया था। वह प्रतिदिन प्रातः सूर्य को कमल पुष्प अर्पित करता था। अतः हर्ष प्रारंभ में अपने पूर्वजों की भांति शिव भक्त था और बाद में बौद्ध हो गया था। उसके बौद्ध होने की पहली सूचना हमें ह्वेनसांग के विवरण से प्राप्त होती है, जब वह अपनी बहन को सती होने से बचाने के लिए गया था, तब वह विंध्यवन में दिवाकरमित्र नामक बौद्ध भिक्षु से मिला था और संभवतः वहां हुई बातचीत का उस पर अधिक प्रभाव पड़ा होगा। उसने अपने जीवन में बौद्ध धर्म से जुड़े दो महत्वपूर्ण कार्य किए, प्रथम कन्नौज सभा का आयोजन तथा द्वितीय प्रयाग सभा का आयोजन।

**कन्नौज सभा का आयोजन** – हर्ष द्वारा कन्नौज सभा के आयोजन का मुख्य उद्देश्य बौद्ध धर्म का प्रसार करना था। इसका आयोजन 643 ई. में कन्नौज में किया गया था। यह आयोजन कन्नौज में गंगा के तट पर एक विहार में किया गया था। यह विहार विशेष रूप से इसी उद्देश्य से बनाया गया था किंतु बाद में यह विहार जल गया था और हर्ष ने स्वयं इस आग को बुझाया था। हर्ष ने इस सभा में ह्वेनसांग को सभापति बनाया। इस सभा में 3,000 महायान तथा हीनयान बौद्ध भिक्षु, नालंदा विश्वविद्यालय से 1,000 बौद्ध भिक्षु शामिल हुए थे। चीनी साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि इस सभा में 20 देशों के राजा अपने विद्वानों, राजपुरुषों, ब्राह्मणों तथा सैनिकों के साथ उपस्थित हुए थे। नालंदा के 1,000 आचार्य तथा हीनयान मत के तीस हजार बौद्ध भिक्षु व ग्रंथ शामिल हुए थे।

अंतिम दिन गंगा के तट पर इसी विहार में बुद्ध की सुसज्जित सोने की मूर्ति एक सौ फुट ऊंचे स्तंभ पर रखी गई थी। यह राजा की मूर्ति जो इतनी विशाल थी व एक अन्य मूर्ति जो 30 फुट ऊंची थी, उसे जुलूस में उठाया जाता था। इस जुलूस में 20 राजा तथा 300 हाथी शामिल होते थे। हर्ष खुले हाथों से मोती, मणि इत्यादि बहुमूल्य वस्तुओं को चारों ओर बिखेरता था। हर्ष ने स्वयं बुद्ध की मूर्ति को स्नान कराकर स्तंभ पर स्थापित किया था। इस अवसर पर हर्ष ने अनेक बौद्ध विहारों व स्तूपों का निर्माण करवाया था। उसके शासनकाल में बौद्ध धर्म का अधिक प्रचार– प्रसार हुआ था। यहां पर आर. के. मुखर्जी कहते हैं कि *''इस सभा में हर्ष ने धार्मिक असहिष्णुता का परिचय दिया, जो उसकी मान्य शासन नीति के अनुकूल नहीं थी।''*

हर्ष को विभिन्न धर्मों के विद्वानों की चर्चा सुनना पसंद था। इस सभा में भी अनेक विषयों पर वाद–विवाद किया गया था। अनेक राजा व उपस्थित विद्वतजन हर्ष के पक्षपात से खिन्न थे। हर्ष ने ह्वेनसांग को सभा का अधिकारी बनाया तथा उसने यह घोषणा की थी कि वाद–विवाद में यदि ह्वेनसांग को कोई पराजित करेगा तो उसकी

टिप्पणी

जिह्वा काट दी जाएगी। इसी पक्षपात के कारण वाद–विवाद में किसी भी विद्वान तथा भिक्षु ने हस्तक्षेप नहीं किया था। हर्ष के इसी पक्षपात अथवा बौद्ध धर्म को अधिक प्रोत्साहन देने के कारण किसी व्यक्ति ने सभा के पश्चात उस पर हमला किया था किंतु वह पकड़ लिया गया था। यह सभा 23 दिनों तक चली थी।

इस प्रकार हर्ष ने बाद में बौद्ध धर्म स्वीकार किया था। इस सभा में उसके किए गए व्यवहार से स्पष्ट होता है कि वह धर्म के प्रति सहिष्णु था, किंतु उसके द्वारा ब्राह्मणों को दान देने का वक्तव्य मिलता है। अतः वह धर्म सहिष्णु शासक था। उसने ह्वेनसांग के समय में धर्म असहिष्णुता का परिचय दिया जो संभव है कि विदेशी यात्री को प्राथमिकता देने के उद्देश्य से किया होगा। किंतु इस विषय में कोई साक्ष्य उपलब्ध नहीं है।

**प्रयाग सभा**– यह सभा हर्ष द्वारा प्रत्येक 5वें वर्ष में आयोजित की जाती थी। ह्वेनसांग जिस समारोह में शामिल हुआ था वह 6वां सम्मेलन था। इस सभा को 'महामोक्षपरिषद्' कहा जाता था। यह सभा 643 ई. में आयोजित की गई थी। इस अवसर पर 500,000 व्यक्तियों और हर्ष के 18 राजा मित्रों ने भाग लिया था। यह सभा लगभग 75 वर्षों तक चली। इस सभा में हर्ष द्वारा दीन, दुखियों व अनाथों को बहुमूल्य वस्त्रों तथा आभूषणों का दान दिया गया। इस सभा में स्तंभ पर बुद्ध की मूर्ति स्थापित की गई थी, साथ ही शिव तथा सूर्य की मूर्ति भी स्थापित की गई थी। ह्वेनसांग के अतिरिक्त जो राज–संपत्ति की रक्षा तथा सुव्यवस्था के लिए आवश्यक थे, शेष कुछ भी नहीं बचा। इसके अतिरिक्त राजा ने अपने हीरे और सामान, कपड़े और मालाएं, कांटे, कंगन, हार, चमकीले शिरो के भूषण सब बिना भेदभाव के दान में दिए। सब कुछ देने के पश्चात उसने अपनी बहन से एक पुराना वस्त्र मांगा और उसे पहन कर वापस गया था।

हर्ष के समय में भारत में विभिन्न धर्म फैल चुके थे। हर्षचरित के अनुसार 'थानेश्वर के प्रत्येक घर में भगवान शिव की पूजा होती थी।' साथ ही लिंग की स्थापना भी की जाती थी। ह्वेनसांग ने मुलस्थानपुर में सूर्य मंदिर का उल्लेख किया है। मालवा तथा वराणसी में भी शिव के विशाल मंदिरों का उल्लेख मिलता है। हर्ष ने बौद्ध धर्म के प्रचार–प्रसार के लिए ही इन सभाओं का आयोजन किया था। बौद्ध धर्म में हीनयान की अपेक्षा महायान अधिक ख्याति प्राप्त था। नालंदा में महायान बौद्ध धर्म की शिक्षा दी जाती थी। ह्वेनसांग ने 5000 विहार देखे थे। उसने बताया था कि हीनयान तथा महायान के अनुयायी दोनों एक ही विहार में रहते थे।

## हर्ष की प्रशासनिक व्यवस्था

प्राचीन भारत के अन्य राजाओं के समान ही हर्ष भी प्रजा हितकारी राजा था। वह भी अन्य राजाओं की भांति अपनी दैवी उत्पत्ति में विश्वास रखता था। हर्ष के कुशल प्रशासन की जानकारी हमें बाण के हर्षचरित तथा ह्वेनसांग के विवरणों से मिलती है। ऐसा वर्णन मिलता है कि वह प्रशासन के कार्यों में इतना अधिक व्यस्त रहता था कि इतना बड़ा दिन भी उसे छोटा लगता था।

टिप्पणी

**सम्राट**–हर्षचरित में उसे 'सभी देवताओं का सम्मिलित अवतार' (सर्वदेवतारमिवैकत्र) कहा गया है। वह अपने साम्राज्य का सर्वोच्च न्यायाधीश, कुशल प्रशासक, नीतिवान, प्रसन्नचित्त, प्रजावत्सल, दानी, धर्मनिरपेक्ष शासक था। सम्राट प्रशासन का सर्वोच्च अधिकारी था, उसका निर्णय अंतिम निर्णय था क्योंकि वह न्याय का प्रधान न्यायाधीश था, सेना का सेनापति था। उसने महाराजाधिराज, चक्रवर्ती, परमभट्टारक, परमेश्वर जैसी उपाधियां धारण की थीं।

उसने मधुबन तथा बंसखेड़ा के दानपत्रों में लिखा है कि– *''लक्ष्मी का फल दान देने तथा दूसरों के यश की रक्षा करने में है। मनुष्य को मन, वाणी और कर्म से प्राणियों का हित करना चाहिए। पुण्यार्जन का यह उत्तम उपाय है।''* ह्वेनसांग के विवरण से ज्ञात होता है कि उसका संपूर्ण दिन तीन भागों में विभक्त होता था, प्रथम भाग प्रशासनिक कार्यों में तथा अन्य दोनों भाग धार्मिक कार्यों में व्यतीत होते थे। वह प्रजा तथा नगरों की स्थितियों को जानने के लिए लोगों के बीच में जाकर अपना एक अस्थाई आवास बनवाकर रहता था, जिसे *'जयस्कन्धावार'* कहा जाता था, और उस वक्त में प्रजा उससे सीधा संपर्क कर सकती थी। वह केवल नगरों तक ही नहीं बल्कि गांव में भी दौरे किया करता था। हर्ष का शासन निरंकुश तथा गणतंत्रीय व्यवस्था पर आधारित था।

**मंत्री परिषद्** – राजा की सहायता के लिए मंत्री परिषद् होती थी जो राजा को सलाह दिया करती थी तथा राजा का पद रिक्त होने की स्थिति में परिषद् ने अपने मत और शक्तियों का प्रयोग किया था। राज्यवर्धन की मृत्यु के पश्चात मुख्यमंत्री दण्डि ने मंत्री परिषद् का आयोजन किया और कहा–''राष्ट्र का भाग्य आज निश्चित करना है। वृद्ध राजा के पुत्र की मृत्यु हो गई, राजकुमार का भाई दयालु और स्नेहपूर्ण, कर्तव्यनिष्ठ, आज्ञाकारी है। वह अपने परिवार का हित–चिंतक है, अतः प्रजागण उस पर विश्वास करेंगे। मैं प्रस्ताव करता हूं कि उसे राजपद संभालना चाहिए। आपके जैसे भी विचार हों प्रकट कीजिए।'' इसके पश्चात उपस्थित लोगों ने हर्ष से राज्याधिकार ग्रहण करने के लिए अनुरोध किया। शासन में उसे सहायता देने हेतु निम्नलिखित अधिकारी थे–

1. **सामंत**– प्रशासन में सामंतों का विशिष्ट स्थान था। जो शासक हर्ष के अधीन राज्य करते थे, वे महासामंत कहलाते थे। विभिन्न प्रकार के सामंतों का उल्लेख हमें हर्षचरित से मिलता है। सामंत, महासामंत, आप्तसामंत, प्रधानसामंत, शत्रु सामंत, प्रति सामंत आदि उल्लेखनीय हैं। हर्ष के शासन में महासामंत 'स्कंदगुप्त' तथा आप्तसामंत वे सामंत थे, जिन्होंने स्वेच्छा से हर्ष की अधीनता स्वीकार की थी। हर्ष के समय तक सामंत शब्द का प्रयोग भूस्वामियों तथा अधीन राजाओं, उच्च पदाधिकारियों के लिए होने लगा था।
2. **अमात्य**– राजा को प्रशासन में सहायता करने के लिए एक परिषद् होती थी, मंत्री को ही सचिव या अमात्य कहा जाता था। उसका कार्य अत्यंत जिम्मेदारी का था। राज्य में राजा प्रभाकरवर्धन तथा उसकी मृत्यु के पश्चात राज्यवर्धन की हत्या के समय कठिन परिस्थितियों में अमात्यों की सहायता व सम्मिलित निर्णयों

से ही शासन का संचालन किया गया। हर्ष का अमात्य 'दण्डि' था, वह हर्ष के मामा का बेटा था। उसी ने कठिन परिस्थितियों में उचित निर्णय लेकर हर्ष को संभाला था।

टिप्पणी

3. **महासंधि विग्रहिक**– यह विदेश सचिव के समान था। हर्ष का विदेश सचिव 'अवन्ती' था। जिसका कार्य युद्ध तथा शांति की घोषणा करना था। सिंहनाद प्रमुख सेनापति था। वह देश के प्रति ईमानदार था।
4. **अन्य**– अन्य में दौस्साधसाधनिकों, प्रमातारों, राजस्थानीयों उपरिकों, तथा विषयपति का उल्लेख हर्ष के विवरण से मिलता है। इन अधिकारियों को मंत्री, गवर्नर की भांति निजी खर्च चलाने के लिए जमीन मिली थी, इन्हें नगद वेतन नहीं मिलता था। नगद वेतन केवल सैनिक पदाधिकारियों को ही मिलता था।

## साम्राज्य का विभाजन

प्रशासन संचालन में सुविधा हेतु हर्ष ने साम्राज्य को विभाजित किया था। साम्राज्य का विभाजन दो भागों में किया गया था, वे हैं–प्रांत और जिले ग्राम।

प्रांतों को भुक्ति कहा गया है। इसके शासक को उपरिक अथवा राष्ट्रीय कहा जाता था और इसके लिए 'लोकपाल' शब्द का प्रयोग किया जाता था। भुक्ति को कई विषयों में बांटा गया था। बंसखेड़ा के लेखों में श्रावस्ती, अहिच्छत्र, कुण्डधानी, अंगदीय जैसे विषयों के नाम लिए गए हैं। प्रांतों का विभाजन 'जिलों' में किया गया। जिसके प्रधान को विषयपति कहा जाता था। ग्राम शासन की सबसे छोटी इकाई थी। ग्राम शासन का प्रधान मुखिया अथवा 'ग्रामाक्षपटलिक' था और उसकी सहायता हेतु 'करणिक' थे। हमें ग्रामपरिषद् का उल्लेख नहीं मिलता है।

## राजस्व

शासन ने प्रायः तीन प्रकार के कर लगाए गए थे– भाग, हिरण्य, बलि।

भाग कर भूमिकर था, कृषकों से उनकी उपज का छठा भाग लिया जाता था। यह राज्य की आय का प्रमुख साधन था। हिरण्य संभवतः व्यापारी दिया करते थे और यह नगद लिया जाता था। बलि, यह कर संभवतः धार्मिक कर था किंतु इस विषय में कुछ ज्ञात नहीं है।

हर्ष के साम्राज्य में बहुत कम कर लगाए गए थे। उपरोक्त करों के अतिरिक्त व्यापारिक मार्गों, घाटों, बिक्री आदि कर लिए जाते थे। ह्वेनसांग के विवरण से पता चलता है कि राज भूमि को चार भागों में बांटा गया था, प्रथम भाग से राज कार्य चलाने, द्वितीय से मत्रियों व अधिकारियों को वेतन देने के लिए, तृतीय सुयोग्य व्यक्तियों को पुरस्कृत करने और चौथा भाग धार्मिक दान देने के लिए था।

## दंड विधान

ह्वेनसांग के वर्णन से ज्ञात होता है कि अपराध बहुत कम होते थे। राजद्रोह करने वाले तथा कानून तोड़ने वाले को दंडित किया जाता था। शारीरिक दंड नहीं दिया जाता था।

केवल कुछ अपराधों के लिए नाक, कान काट दिए जाते थे। कुछ अपराधों के लिए जुर्माना भी लिया जाता था। अपराध स्वीकार करने वाले को यंत्रणा नहीं दी जाती थी।

टिप्पणी

## सेना

हर्ष की विस्तृत सेना का वर्णन ह्वेनसांग तथा बाण के हर्षचरित में भी मिलता है। हर्ष के पास एक विशाल सेना थी। ह्वेनसांग के अनुसार हर्ष के पास 5,000 हाथी, 2,000 घुड़सवार तथा 5,000 पैदल सैनिक थे। उसकी विशाल सेना का वर्णन हमें हर्षचरित में भी मिलता है। सेना में प्रयोग होने वाले घोड़े सिंधु, कंबोज तथा ईरान से लाए जाते थे। बसाढ़ से मुद्रा प्राप्त हुई है जिसमें यह उल्लेख मिलता है कि ''प्रशासन द्वारा सेना की सामग्रियों को सुरक्षित रखने के उद्देश्य से एक अलग विभाग की स्थापना की गई थी जिसे 'रणभण्डागाराधिकरण' कहा जाता था। सेना के प्रमुख अधिकारी को 'महासेनापति' कहा जाता था। पैदल सेना के अधिकारी को महाबलाधिकृत तथा बलाधिकृत कहा जाता था, और साधारण सैनिकों को 'चाट' कहते थे, घुड़सेना के अधिकारी को वृहदेश्वर कहा जाता था।

इस प्रकार हर्ष का साम्राज्य सुविधा की दृष्टि से विभाजित किया गया था। कहीं न कहीं हर्ष ने गुप्त शासन प्रणाली का अनुकरण किया किंतु वह गुप्तों जैसी व्यवस्था को स्थापित नहीं कर सका। ह्वेनसांग के विवरण से ज्ञात होता है कि गुप्त सेना के मुकाबले हर्ष के सैनिक प्रजा का ध्यान नहीं रखते थे, वे खड़ी फसल को नष्ट कर देते थे तथा राजा भी इस ओर विशेष ध्यान नहीं देता था। कुछ विद्वानों ने हर्ष के साम्राज्य की व्यवस्था पर भी प्रश्न चिह्न लगाया है कि हर्ष के सैनिकों से जनता तो परेशान थी ही किंतु पुलिस व्यवस्था भी असुरक्षित थी। *आर. के. मुखर्जी ने लिखा है कि '' हर्ष का शासन प्रबंध, गुप्त राजाओं के शासन प्रबंध की तुलना नहीं कर सकता, यद्यपि उसके पास महान सैनिक शक्ति थी, उसकी स्थायी सेना में 60,000 हाथी तथा 1,00000 घोड़े थे, राष्ट्रीय रक्षक दल में बड़े–बड़े योद्धा सम्मिलित थे जो शांति के समय सम्राट के निवास की सुरक्षा करते थे और युद्ध के समय सेना के निर्भीक, अग्रगामी दल में शामिल थे।''*

### अपनी प्रगति जांचिए

5. हर्ष द्वारा कन्नौज सभा का आयोजन कब किया गया था?

(क) 643 ई. में (ख) 657 ई. में

(ग) 667 ई. में (घ) इनमें से कोई नहीं

6. मंत्रिपरिषद में हर्ष के अमात्य का क्या नाम था?

(क) सिंहनाद (ख) दण्डि

(ग) अवन्ति (घ) कुंतल

टिप्पणी

## 1.5 हर्ष के समकालीन (पुलकेशिन, शशांक तथा यशोवर्मन)

हर्ष के समकालीन राजाओं पुलकेशिन, शशांक एवं यशोवर्मन का क्रमशः अध्ययन इस प्रकार किया जा रहा है–

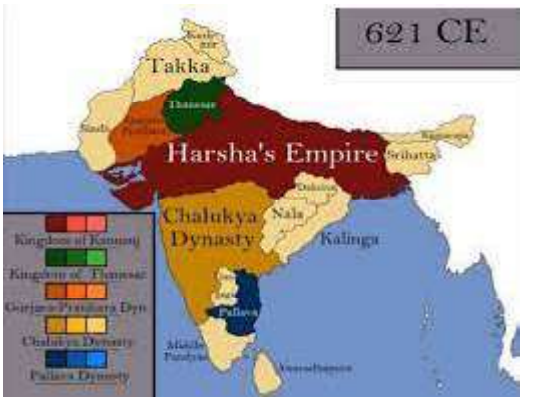


### 1.5.1 पुलकेशिन द्वितीय

कीर्तिवर्मन का पुत्र पुलकेशिन द्वितीय था जिसने अपने चाचा से विद्रोह करके सिंहासन प्राप्त किया। पुलकेशिन ने जिस समय विद्रोह किया था, उस समय इस गृहयुद्ध का संपूर्ण लाभ अधीनस्थ सामंतों तथा आंतरिक शत्रुओं ने उठाया इसलिए सत्ता में आते ही पुलकेशिन को धैर्य, साहस, दृढ़ता तथा सफलता के साथ परिस्थितियों का सामना करना पड़ा। एहोल अभिलेख में उस काल की परिस्थितियों का वर्णन किया गया है। यह अभिलेख कवि रविकीर्ति द्वारा पद्यबद्ध किया गया है। उसका सबसे महत्वपूर्ण उद्देश्य अब यह था कि अपने प्रतिद्वंद्वियों को समाप्त कर राज्य में शांति की स्थापना करे।

**पुलकेशिन द्वितीय द्वारा साम्राज्य विस्तार–**

- उसने सर्वप्रथम गोविंद तथा आप्यायिक को असफल करने के लिए कूटनीति का सहारा लिया। ये दोनों उसके साम्राज्य पर आक्रमण करते हुए भीमा नदी तक आ पहुंचे थे। पुलकेशिन ने गोविंद से मैत्री की और आप्यायिक को हराने में सफलता प्राप्त की।
- उसकी शक्ति, व साम्राज्य विस्तार के पश्चात गंग शासक ने अपनी पुत्री का विवाह पुलकेशिन से संपन्न किया। अब गंग शासक भी पुलकेशिन के मित्र बन गए थे।
- अब पुलकेशिन ने कदंब वंश की राजधानी वनवासी पर आक्रमण किया और उसे आत्मसमर्पण के लिए मजबूर होकर पुलकेशिन की अधीनता स्वीकार करनी पड़ी।
- इस समय उत्तरी कोंकण पर मौर्य शासक शासन कर रहे थे। इन पर आक्रमण करके पुलकेशिन द्वितीय ने राजधानी पुरी को अपने अधिकार में ले लिया। मौर्यों ने पराजित होकर उनकी अधीनता स्वीकार कर ली।

टिप्पणी

- इस समय उत्तरी भारत पर सबसे शक्तिशाली शासक हर्षवर्धन शासन कर रहा था। गुर्जर, मालव, तथा लाट हर्ष की बढ़ती हुई शक्ति से भयभीत थे, अतः इन्होंने पुलकेशिन द्वितीय की अधीनता स्वीकार कर ली थी।
- हर्षवर्धन से पुलकेशिन द्वितीय के युद्ध की भी घटना मिलती है। इस युद्ध का कारण हर्ष के शत्रु 'गुरनरपति दद्' की पुलकेशिन से मित्रता थी। हर्ष और पुलकेशिन दोनों वल्लभी राज्य पर अधिकार करना चाहते थे, अतः युद्ध अवश्यंभावी था। यह एकमात्र युद्ध है जिसमें हर्ष को पराजय का सामना करना पड़ा। 'एहोल अभिलेख' में इस विजय का विस्तृत वर्णन किया गया है। यह युद्ध संभवतः 630 से 634 ई. के मध्य में हुए थे। ह्वेनसांग के अनुसार पुलकेशिन के नेतृत्व में महाराष्ट्र के लोगों ने हर्ष के आक्रमण का निराकरण किया। इस विजय के पश्चात उसने परमेश्वर और दक्षिण की उपाधियां धारण कीं।
- 'एहोल अभिलेख' के अनुसार कलिंग और कौशल के शासकों ने पुलकेशिन द्वितीय की अधीनता स्वीकार कर ली थी। अपने अनुज विष्णुवर्धन को राजधानी सौंपकर स्वयं पूर्वी दक्कन की ओर विजय के लिए चल पड़ा।
- इस समय पल्लव वंशीय शासक महेंद्रवर्मन प्रथम, पुलकेशिन का समकालीन था। वह महेंद्रवर्मन को अपना शत्रु समझता था, अतः पुलकेशिन ने उस पर आक्रमण कर दिया, किंतु वह पल्लवों को परास्त नहीं कर सका और पुल्ललूर तक चला गया। पल्लवों को परास्त करने के लिए उसने चोलों तथा पाण्डयों से मैत्री संबंध स्थापित किए। 630ई. के 'लोहनेर अभिलेख' में पुलकेशिन को पूर्व और पश्चिम का स्वामी बताया गया है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि उसने 630ई. से पूर्व ही यह विजय प्राप्त की होगी।
- इन उपरोक्त विजयों के अतिरिक्त पुलकेशिन ने वैदेशिक संबंध भी स्थापित किए। हाबरी के अनुसार उसने फारस/ईरान के राजा खुसरू द्वितीय से भी संबंध स्थापित किए थे और 625ई. में कुछ पत्र और भेंट देकर अपने दूत भेजे थे। ह्वेनसांग भी उसके दरबार में आया था।
- पल्लव शासक महेंद्रवर्मन के बाद उसका पुत्र नरसिंहवर्मन शासक बना। पुलकेशिन ने एक बार पुनः उस पर आक्रमण किया। इस बार लंका के राजकुमार मानवर्मा ने नरसिंह वर्मा को सहयोग दिया और इस युद्ध में पुलकेशिन द्वितीय को हार का सामना करना पड़ा। इस विजय के पश्चात पुलकेशिन द्वितीय की राजधानी वातापी पर अधिकार करके वातापी कोड की उपाधि धारण की। इस युद्ध में पुलिकेशिन द्वितीय वीरगति को प्राप्त हुआ। पुलकेशिन द्वितीय की मृत्यु के समय से ही चालुक्य वंश का पतन होने लगा।

टिप्पणी

इस प्रकार पुलकेशिन द्वितीय ने सारे दक्षिणापथ पर अधिकार कर लिया था। साथ ही विदेशों से भी मैत्री संबंध स्थापित किए गए। उसके पूर्वज तो वैदिक धर्म को मानने वाले थे, किंतु पुलकेशिन द्वितीय जैन अनुयायी था। वह विद्या व कला का संरक्षक था। उसके समय के गुहा–स्थापत्य और चित्रकला के नमूने अजंता में पाए जाते हैं।

## 1.5.2 शशांक

शशांक को बंगाल के यशस्वी शासकों में गिना जाता है। उसने बंगाल प्रदेश की सीमाओं के बाहर भी अपने राज्य का बहुत विस्तार किया। उसका वंश अज्ञात है और गुप्त वंश के साथ उसको सम्बन्धित करना केवल अनुमान मात्र है। उसकी उत्पत्ति चाहे जिस वंश में भी हुई हो, लेकिन इतना निश्चित है कि 606 ई. के पूर्व ही वह गौड़ अथवा बंगाल का शासक बन चुका था और उसकी राजधानी 'कर्णसुवर्ण' थी, जिसकी पहचान मुर्शिदाबाद जिले के अंतर्गत 'रांगामाटी' नामक कस्बे से की गई है।

हर्ष का समकालीन गौड़नरेश शशांक हमारे सामने एक उल्का की भांति चमक कर तिरोहित हो जाता है। उसके वंश या परिवार के विषय में हमें निश्चित रूप से पता नहीं है। इतना स्पष्ट है, कि वह गौड़ (बंगाल) का राजा था। बाण तथा ह्वेनसांग दोनों ने उसका उल्लेख किया है।

हर्षचरित की एक पाण्डुलिपि में शशांक का नाम नरेन्द्रगुप्त मिलता है। इसे खोज निकालने का श्रेय इतिहासकार बुलर को है। इस नाम के आधार पर आर.डी.बनर्जी जैसे कुछ विद्वानों ने यह निष्कर्ष निकाला है, कि संभवतः शशांक चक्रवर्ती गुप्तवंश अथवा परवर्ती गुप्तवंश से संबंधित था।

सर्वप्रथम शशांक इतिहास में एक क्रूर हत्यारे के रूप में उपस्थित होता है। हर्षचरित से पता चलता है, कि उसने राज्यवर्द्धन को अपने झूठे शिष्टाचारों में फंसाकर मार डाला। इस कायरतापूर्ण कृत्य ने उसके राजनैतिक जीवन का लगभग अंत कर दिया। रोहतासगढ़ से प्राप्त मुहर पर उत्कीर्ण लेख से शशांक के प्रारंभिक जीवन के विषय में कुछ सूचनाएं मिल जाती हैं। ऐसा पता चलता है, कि पहले वह महासामंत था। ऐसा प्रतीत होता है, कि वह मौखरि नरेश अवंतिवर्मन का महासामंत रहा होगा – जो उसका समकालीन था। अवंतिवर्मन का मगध के बड़े भाग पर अधिकार था

## साम्राज्य विस्तार

टिप्पणी

यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि दक्षिण और पूर्वी बंगाल शशांक के राज्य के अंतर्गत थे अथवा नहीं। लेकिन पश्चिम में उसका राज्य मगध तक और दक्षिण में उड़ीसा की चिल्का झील तक अवश्य विस्तृत था। पश्चिम की ओर साम्राज्य विस्तार करने के प्रयास में शशांक को मौखरि शासकों से संघर्ष करना आवश्यक हो गया और उसने मौखरियों के शत्रु और मालवा के शासक देवगुप्त से सन्धि कर ली।

## कन्नौज की विजय

देवगुप्त ने अपने मौखरि प्रतिद्वन्द्वी गृहवर्मा को पराजित करके मार डाला और अपने मित्र के सहायतार्थ आगे बढ़कर शशांक ने कन्नौज पर अधिकार कर लिया। इस पर राज्यवर्धन ने, (जो उन्हीं दिनों थानेश्वर का शासक हुआ था और जिसकी बहन राज्यश्री गृहवर्मा के मारे जाने से विधवा हो गई थी), शशांक पर आक्रमण कर दिया।

गृहवर्मा की मृत्यु तथा कन्नौज पर देवगुप्त का अधिकार हो जाने के फलस्वरूप मौखरि राज्य में जो अव्यवस्था फैली उसने शशांक को उसकी राजनैतिक महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति हेतु सुनहरा अवसर प्रदान कर दिया। संभवतः वह कन्नौज को देवगुप्त से छीन उस पर अपना आधिपत्य जमाने के उद्देश्य से वहां आया था। परंतु राज्यवर्द्धन द्वारा देवगुप्त के वध से उसकी आशाओं पर पानी फिर गया। राज्यवर्द्धन की सफलता शशांक के लिए एक खुली चेतावनी थी। अतः उसने किसी प्रकार से वर्द्धन राजा को समाप्त करना उचित समझा। इसी उद्देश्य से शशांक ने राज्यवर्द्धन को अपने शिविर में आमंत्रित किया तथा धोखे से उसकी हत्या कर डाली। परंतु इस अपकृत्य से उसकी परेशानी और बढ़ गयी। जब हर्ष ने अपनी विशाल सेना के साथ उसके विरुद्ध प्रस्थान किया तब वह भयभीत हुआ तथा भाग खड़ा हुआ।

ऐसा प्रतीत होता है, कि अपने जीवन के अंत में वह सामंत–स्थिति से सम्राट स्थिति पर पहुंच गया था। संभव है अवंतिवर्मन की मृत्यु के बाद (622 ईस्वी के बाद) उसने अपनी स्वतंत्रता घोषित कर दी हो। उसने बंगाल तथा उड़ीसा पर अपना अधिकार कर लिया तथा दक्षिण में गोदावरी नदी तक उसका राज्य विस्तृत हो गया था। मगध पर उसका सामंत–काल से ही शासन था। उड़ीसा के गंजाम से 619 ईस्वी का उसके सामंत माधवराज द्वितीय का ताम्रलेख मिलता है, जिससे ज्ञात होता है, कि इस समय तक वह एक सार्वभौम शासक था तथा उसकी उपाधि महाराजाधिराज की थी।

उसकी स्वर्ण मुद्राएं भी उसके स्वतंत्र अस्तित्व को प्रमाणित करती हैं, जो अधिकतर बंगाल से मिली हैं। मिदनापुर (बंगाल) से प्राप्त दो ताम्रपत्र भी बंगाल के ऊपर उसके आधिपत्य की सूचना देते हैं। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है, कि शशांक पूर्वी भारत का सर्वाधिक शक्तिशाली राजा बन बैठा।

आर्यमंजूश्री मूलकल्प के एक श्लोक से पता चलता है, कि हर्ष ने सोम (शशांक) की राजधानी पुण्ड्र पर आक्रमण कर उसे परास्त किया तथा उसे उसके राज्य में ही रहने के लिये बाध्य किया। परंतु इस मध्यकालीन बौद्धग्रंथ के विवरण की ऐतिहासिकता संदिग्ध है।

टिप्पणी

ह्वेनसांग के विवरण से पता चलता है, कि शशांक की मृत्यु 637 ईस्वी के कुछ वर्ष पूर्व ही हुई थी। उसका अंत किन परिस्थितियों में हुआ, यह पता नहीं लग पाया है। परंतु इतना तो स्पष्ट है, कि उसके जीवन काल में हर्ष उसके राज्य को जीत नहीं पाया था।

### शशांक का धर्म

शशांक एक कट्टर शैव था। उसके सिक्कों के ऊपर शिव तथा नंदी की आकृतियां मिलती हैं। ह्वेनसांग हमें बताता है, कि उसने बोधगया के बोधिवृक्ष को कटवाकर गंगा में फिंकवा दिया तथा समीप के एक मंदिर से बुद्ध की मूर्ति को हटवा कर उसके स्थान पर शिव की प्रतिमा प्रतिष्ठित करवाई। इसी प्रकार पाटलिपुत्र के मंदिर में रखे हुए एक पाषाण–स्तंभ, जिस पर बुद्ध के चरण–चिन्ह उत्कीर्ण थे, को भी उसने गंगा नदी में फिंकवा दिया।

कुशीनारा के एक विहार के बौद्धों को भी उसने वहां से निष्कासित करवा दिया। आर्यमंजूश्रीमूलकल्प में भी उसका चित्रण बौद्धद्रोही के रूप में किया गया है, जिसने पवित्र बौद्ध अवशेषों को जलाया तथा विहारों एवं समाधियों को नष्ट–भ्रष्ट कर दिया। आर. डी.बनर्जी तथा आर.पी.चंदा जैसे कुछ विद्वान इस मत के हैं, कि शशांक वस्तुतः राजनैतिक कारणों से बौद्धद्रोही हुआ तथा अन्यथा उसमें धर्मांधता नहीं थी। शशांक को बौद्धद्रोही सिद्ध करने वाले सभी साक्ष्य इसी धर्म से संबंधित हैं। अतः उनका विवरण निष्पक्ष नहीं कहा जा सकता।

### निष्कर्ष

इस प्रकार हम कह सकते हैं, कि शशांक पूर्णतया असंबद्ध एवं उपेक्षित शासक रहा है, जिसके विषय में हमारी जानकारी अति अल्प है। उसके साथ ही उसका वंश तथा राज्य दोनों ही जाते रहे और उसके राज्य को हर्ष ने अपने साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया। निश्चय ही वह एक महान कूटनीतिज्ञ तथा साहसी योद्धा था।

## 1.5.3 यशोवर्मन

इतिहास में हर्ष की मृत्यु के पश्चात उत्तर भारत में अराजकता व्याप्त हो गई थी। इस समय के कन्नौज के इतिहास को अंधकार युग कहा जाता है। लगभग 75 वर्षों तक कन्नौज के राजसिंहासन पर किसी भी राजा के होने के साक्ष्य नहीं मिलते हैं। इन वर्षों में कन्नौज की स्थिति क्या रही होगी? यह ज्ञात नहीं है। हर्ष की मृत्यु के बाद समस्त भारत की राजनीति सक्रिय रही। कामरूप में भास्कर वर्मा मगध में हर्ष के सामंत माधवगुप्त के पुत्र आदित्यसेन, कश्मीर में कार्कोटवंश की स्थापना हो गई थी। ये स्वतंत्र शासक थे। अब उत्तर भारत का केंद्र मगध न होकर कन्नौज था, परंतु एकाएक 75 वर्षों के बाद हमें कन्नौज में यशोवर्मन के होने के साक्ष्य मिलते हैं। साथ ही साथ कन्नौज का त्रिकोणात्मक संघर्ष भी हुआ किंतु उसमें पाल, प्रतिहार, गुर्जरों का उल्लेख मिलता है, यशोवर्मन का नहीं।

## यशोवर्मन के इतिहास के स्रोत

यशोवर्मन के शासन इत्यादि पर विद्वानों में मतभेद है, फिर भी यशोवर्मन के इतिहास के दो प्रकार के साधन उपलब्ध हैं–

टिप्पणी

1. **प्राकृत काव्य**–यशोवर्मन के दरबार का राजकवि 'वाक्पति' द्वारा लिखित ग्रंथ 'गौडवहो' में यशोवर्मन के शासन की घटनाओं का उल्लेख किया गया है।
2. **नालंदा अभिलेख**–नालंदा अभिलेख से भी यशोवर्मन के शासन तथा उसकी दिग्विजय की पुष्टि होती है। किंतु विद्वानों में मतभेद है कि अभिलेख में वर्णित राजा का नाम यशोवर्मन देव के समीकरण यशोवर्मन से करते हैं, जो अन्य उदाहरणों से स्पष्ट हो चुका है। इसके मंत्री मार्गपति के पुत्र मालद ने नालंदा के एक बौद्ध विहार को दान में दिया था।

## यशोवर्मन का परिचय

कन्नौज में 75 वर्षों के पश्चात हर्ष के पुत्र यशोवर्मन का शासन रहा। वह एक शक्तिशाली तथा महत्वाकांक्षी शासक था। उसके प्रारंभिक जीवन वृत्त के विषय में हमें कोई स्पष्ट जानकारी नहीं मिलती है। उसके नाम को लेकर विद्वानों में मतभेद है; उसके नाम के साथ 'वर्मन' शब्द जुड़ा है, जिससे विद्वान आशंका व्यक्त करते हैं कि वह 'मौखरी' होगा। इस विषय को सत्य सिद्ध करने के लिए हमारे पास अन्य साक्ष्य उपलब्ध नहीं हैं। वाक्पति के 'गौडवहो' से ही हमें उसके शासन की घटनाओं का विवरण मिलता है।

## यशोवर्मन की सैनिक उपलब्धियां

यशोवर्मन की सैनिक उपलब्धियों का विवरण हमें गौडवहो से ही मिलता है, जिसके आधार पर सैनिक उपलब्धियां निम्नलिखित हैं–

- **मगध पर विजय** – गौडवहो में इस विजय का उल्लेख कुछ इस प्रकार से किया गया है– '' वर्षा ऋतु के अंत में अपनी सेना के साथ सोन घाटी होता हुआ, विंध्यवासिनी देवी को प्रसन्न करके उसने मगध पर आक्रमण किया तथा वहां के राजा की हत्या कर दी।'' इस प्रकार उसने मगध पर अधिकार किया।
- **बंगाल विजय**– मगध पर विजय करने के पश्चात वह बंगाल विजय के लिए निकल पड़ा। उस समय के बंग के राजा के विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं है।

टिप्पणी

- **दक्षिणी भारत**– यशोवर्मन ने दक्षिण भारत पर भी विजय प्राप्त की थी। उसकी उपरोक्त विजयों की पुष्टि नालंदा अभिलेखों से होती है, किंतु दक्षिणी भारत की विजय की पुष्टि नहीं होती है।
- **पारसीको पर विजय**– यहां पर पारसीको का संबंध मुसलमानों से किया गया है। इस समय पश्चिमी भारत में मुसलमानों के आक्रमण हो रहे थे, जिससे संभव है कि यशोवर्मन ने इन्हें परास्त किया होगा।
- **मध्य भारत**– मध्य भारत पर अधिकार के संबंध में चीनी साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि वहां का राजा 'यि–शा–फु–मों' था।
- **पश्चिमोत्तर प्रदेश**–पश्चिमोत्तर प्रदेशों पर यशोवर्मन के अधिकार के संदर्भ में अनेक साक्ष्य मिलते हैं। मनिक्याल से उसकी मुद्राएं प्राप्त होती हैं। नालंदा अभिलेख से उसके मंत्री 'उदीचीपति' का उल्लेख मिलता है। इनसे ज्ञात होता है कि यशोवर्मन का अधिकार पश्चिमोत्तर प्रदेश पर था।
- **कश्मीर**–राजतरंगिणी से ज्ञात होता है कि पराजित होने पर यशोवर्मन, ललितादित्य का गुणगान करता है। इस समय कश्मीर के कार्कोटवंश का शासक ललितादित्य मुक्तपीड़ राज्य कर रहा था। वह अत्यंत महत्वांकाक्षी शासक था। वह भी समस्त उत्तरी भारत पर अधिकार करना चाहता था। उसके द्वारा यशोवर्मन पराजित हुआ। चीनी साक्ष्यों में वर्णित है कि मंग–टी ने भूमध्य भारत के राजा से संधि की थी। यहां 'मंग–टी' का अर्थ मुक्तपीड़ से है और मध्यभारत का राजा यशोवर्मन था।

इस प्रकार यशोवर्मन ने मगध, बंगाल, पश्चिमी भारत तथा दक्षिणी क्षेत्रों पर भी अपना साम्राज्य स्थापित किया था।

## साहित्य

यशोवर्मन एक महत्वाकांक्षी शासक होने के साथ साहित्य प्रेमी तथा विद्यानुरागी भी था। उसने अनेक विद्वानों को आश्रय प्रदान दिया। उसके दरबार में वाक्पति के साथ संस्कृत के महान नाटककार 'भवभूति' को आश्रय प्रदान किया गया था। भवभूति ने तीन प्रमुख नाटक ग्रंथों की रचना की थी – 'मालतीमाधव', 'उत्तररामचरित', 'महावीरचरित'। भवभूति करूणा रस के आचार्य माने जाते थे।

## धर्म

उसके धर्म के विषय में सिर्फ इतना ही ज्ञात है कि वह शैवमतानुयायी था।

## यशोवर्मन का पतन

यशोवर्मन के विषय में इतिहास कुछ अवसर पर मौन है। जैसा कि उल्लेख किया गया है कि ललितादित्य मुक्तपीड़ ने यशोवर्मन को परास्त किया था। हालांकि यशोवर्मन ने मगध, बंगाल, पश्चिम भारत तथा दक्षिण भारत पर अधिकार किया था। किंतु यशोवर्मन के पतन के विषय में हम साक्ष्यों के अभाव में स्पष्ट रूप से कुछ नहीं कह सकते हैं किंतु उसके पुत्र आमराज के शासन का उल्लेख मिलता है। फिर भी यशोवर्मन और उसके वंश के पतन के विषय में कुछ भी स्पष्ट रूप से ज्ञात नहीं होता है।

टिप्पणी

### अपनी प्रगति जांचिए

7. निम्न में से हर्ष का समकालीन कौन है?

(क) पुलकेशिन (ख) शशांक

(ग) यशोवर्धन (घ) उपरोक्त सभी

8. शशांक का हर्षचरित की पांडुलिपि में क्या नाम मिलता है?

(क) स्कंदगुप्त (ख) नरेंद्र गुप्त

(ग) रामगुप्त (घ) देवगुप्त

## 1.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (ख)
2. (क)
3. (घ)
4. (ग)
5. (क)
6. (ख)
7. (घ)
8. (ख)

## 1.7 सारांश

पुष्यभूति वंश का प्रथम शासक राज्यवर्धन था किंतु इसके विषय में अधिक जानकारी प्राप्त नहीं है। उसका पुत्र राज्यवर्धन प्रथम था। उसका पुत्र आत्यवर्धन था, जिसका विवाह महासेन की बहन महासेनगुप्तादेवी से हुआ था। उपर्युक्त वर्णन से ज्ञात हो चुका है कि प्रारंभिक राजाओं द्वारा महाराजा की उपाधि धारण की गई थी, जिससे यही निष्कर्ष निकाला गया है कि वे सभी किसी शक्ति के अधीन शासक रहे होंगे, अतः प्रथम स्वतंत्र व शक्तिशाली शासक प्रभाकरवर्धन था।

राज्यवर्धन, प्रभाकरवर्धन का ज्येष्ठ पुत्र तथा हर्ष का ज्येष्ठ भाई था। जब राज्यवर्धन हूणों के आक्रमण के लिए गया था तभी उसे अचानक युद्ध में अपने पिता के अस्वस्थ होने की सूचना मिली, किंतु जब वह अपने पिता के पास पहुंचा तब तक बहुत देर हो चुकी थी, संपूर्ण नगर तथा राजपरिवार शोकयुक्त थे, उसके पिता मृत्यु को प्राप्त हो चुके थे, तत्पश्चात उसकी मां सती हो गई थी। ऐसी धारणा भी मिलती है कि जब तक राज्यवर्धन नहीं पहुंचा था तब दरबार में एक पक्ष हर्ष को राजा बनाना चाहते थे, किंतु जैसे ही राज्यवर्धन आ गया सभी योजनाएं विफल हो गईं। इस घटना की कोई प्रामाणिकता प्राप्त नहीं होती है, अतः यह कल्पना मात्र है।

टिप्पणी

हर्षवर्धन प्राचीन भारत में एक राजा था जिसने उत्तरी भारत में अपना एक सुदृढ़ साम्राज्य स्थापित किया था। वह अंतिम हिंदू सम्राट् था जिसने पंजाब छोड़कर शेष समस्त उत्तरी भारत पर राज्य किया। शशांक की मृत्यु के उपरांत वह बंगाल को भी जीतने में समर्थ हुआ। हर्षवर्धन के शासनकाल का इतिहास मगध से प्राप्त दो ताम्रपत्रों, राजतरंगिणी, चीनी यात्री युवान् च्वांग के विवरण और हर्ष एवं बाणभट्ट रचित संस्कृत काव्य ग्रंथों में प्राप्त है।

हर्ष एक बहुत अच्छे लेखक ही नहीं, बल्कि एक कुशल कवि और नाटककार भी थे। हर्ष की ही देख–रेख में 'बाना' और 'मयूरा' जैसे मशहूर कवियों का जन्म हुआ था। यही नहीं, हर्ष खुद भी एक बहुत ही मंजे हुए नाटककार के रूप में सामने आए। 'नगनन्दा', 'रत्नावली' और 'प्रियदर्शिका' उनके द्वारा लिखे गए कुछ नामचीन नाटक हैं।

550 ई. के पश्चात उत्तर भारत में जिस राजवंश की नींव रखी गई उसे इतिहास में वर्धन एवं पुष्यभूति वंश के नाम से जाना जाता है। वर्धन वंश के शासन के विषय में जानकारी के लिए हमारे पास निम्नलिखित साधन हैं– पुरातात्विक स्रोत (अभिलेख, मुहर), साहित्यिक स्रोत (हर्षचरित, आर्यमंजूश्रीमूलकल्प, कादंबरी, अन्य), विदेशी विवरण (ह्वेनसांग का वृत्तांत)।

ह्वेनसांग हर्ष के शासनकाल में ही भारत की यात्रा पर आया था और लगभग 16 वर्षों तक उसने संपूर्ण भारत का भ्रमण किया। उसकी यात्रा का उद्देश्य मात्र बौद्ध धर्म की वास्तविक तथा मूल जानकारी प्राप्त करना तथा उन स्थलों के दर्शन करना जहां बुद्ध देव के चरण पड़े थे किंतु इसके साथ ही उसने भारत में प्रवेश करते ही यहां के नगरों तथा जन–जीवन और हर्षकालीन समस्त महत्वपूर्ण तथ्यों को उजागर किया। यात्रा का विवरण उसने अपनी पुस्तक 'सी–यू–की' में प्रस्तुत किया है। इस पुस्तक का हर्ष के इतिहास में वही स्थान है जो हर्षचरित या प्रियदर्शिका का है।

हर्ष को पैतृक साम्राज्य के रूप में अत्यंत छोटा–सा राज्य ही प्राप्त हुआ था, परंतु हर्ष ने अपनी प्रतिभा व योग्यता के बल पर लगभग संपूर्ण भारत पर आधिपत्य स्थापित किया। अदीश चंद्र बनर्जी के अनुसार, "हर्ष का आधिपत्य उत्तर में शतद्रू के तट से लेकर दक्षिण में नर्मदा तक और पश्चिमी मालवा के सीमा प्रांत से लेकर पूर्व हिमालय के समीप स्थित प्रदेशों तक की भूमि पर स्थापित था।"

जहां तक हर्ष के व्यक्तिगत धर्म की बात है, उसके पूर्वज शिव तथा सूर्य के उपासक थे। उसके धर्म के विषय में हमें ह्वेनसांग के वृत्तांत तथा हर्षचरित से सूचनाएं मिलती हैं। लेकिन कुछ स्रोतों तथा हर्षचरित से ज्ञात होता है कि जब हर्ष ने शशांक पर आक्रमण किया था उससे पूर्व उसने शिव की पूजा की थी। उसने अनेक भव्य मंदिरों का भी निर्माण करवाया था। वह प्रतिदिन प्रातः सूर्य को कमल पुष्प अर्पित करता था। अतः हर्ष प्रारंभ में अपने पूर्वजों की भांति शिव भक्त था और बाद में बौद्ध हो गया था। उसके बौद्ध होने की पहली सूचना हमें ह्वेनसांग के विवरण से प्राप्त होती है, जब वह अपनी बहन को सती होने से बचाने के लिए गया था, तब वह विंध्यवन में दिवाकरमित्र नामक बौद्ध भिक्षु से मिला था और संभवतः वहां हुई बातचीत का उस पर अधिक प्रभाव

पड़ा होगा। उसने अपने जीवन में बौद्ध धर्म से जुड़े दो महत्वपूर्ण कार्य किए, प्रथम कन्नौज सभा का आयोजन तथा द्वितीय प्रयाग सभा का आयोजन।

टिप्पणी

हर्ष के समय में भारत में विभिन्न धर्म फैल चुके थे। हर्षचरित के अनुसार 'थानेश्वर के प्रत्येक घर में भगवान शिव की पूजा होती थी।' साथ ही लिंग की स्थापना भी की जाती थी। ह्वेनसांग ने मुलस्थानपुर में सूर्य मंदिर का उल्लेख किया है। मालवा तथा वराणसी में भी शिव के विशाल मंदिरों का उल्लेख मिलता है। हर्ष ने बौद्ध धर्म के प्रचार–प्रसार के लिए ही इन सभाओं का आयोजन किया था। बौद्ध धर्म में हीनयान की अपेक्षा महायान अधिक ख्याति प्राप्त था। नालंदा में महायान बौद्ध धर्म की शिक्षा दी जाती थी। ह्वेनसांग ने 5000 विहार देखे थे। उसने बताया था कि हीनयान तथा महायान के अनुयायी दोनों एक ही विहार में रहते थे।

कीर्तिवर्मन का पुत्र पुलकेशिन द्वितीय था जिसने अपने चाचा से विद्रोह करके सिंहासन प्राप्त किया। पुलकेशिन ने जिस समय विद्रोह किया था, उस समय इस गृहयुद्ध का संपूर्ण लाभ अधीनस्थ सामंतों तथा आंतरिक शत्रुओं ने उठाया इसलिए सत्ता में आते ही पुलकेशिन को धैर्य, साहस, दृढ़ता तथा सफलता के साथ परिस्थितियों का सामना करना पड़ा। एहोल अभिलेख में उस काल की परिस्थितियों का वर्णन किया गया है। यह अभिलेख कवि रविकीर्ति द्वारा पद्यबद्ध किया गया है। उसका सबसे महत्वपूर्ण उद्देश्य अब यह था कि अपने प्रतिद्वंद्वियों को समाप्त कर राज्य में शांति की स्थापना करे।

शशांक को बंगाल के यशस्वी शासकों में गिना जाता है। उसने बंगाल प्रदेश की सीमाओं के बाहर भी अपने राज्य का बहुत विस्तार किया। उसका वंश अज्ञात है और गुप्त वंश के साथ उसको सम्बन्धित करना केवल अनुमान मात्र है। उसकी उत्पत्ति चाहे जिस वंश में भी हुई हो, लेकिन इतना निश्चित है कि 606 ई. के पूर्व ही वह गौड़ अथवा बंगाल का शासक बन चुका था और उसकी राजधानी 'कर्णसुवर्ण' थी, जिसकी पहचान मुर्शिदाबाद जिले के अंतर्गत 'रांगामाटी' नामक कस्बे से की गई है।

यशोवर्मन के विषय में इतिहास कुछ अवसर पर मौन है। जैसा कि उल्लेख किया गया है कि ललितादित्य मुक्तपीड़ ने यशोवर्मन को परास्त किया था। हालांकि यशोवर्मन ने मगध, बंगाल, पश्चिम भारत तथा दक्षिण भारत पर अधिकार किया था। किंतु यशोवर्मन के पतन के विषय में हम साक्ष्यों के अभाव में स्पष्ट रूप से कुछ नहीं कह सकते हैं किंतु उसके पुत्र आमराज के शासन का उल्लेख मिलता है। फिर भी यशोवर्मन और उसके वंश के पतन के विषय में कुछ भी स्पष्ट रूप से ज्ञात नहीं होता है।

## 1.8 मुख्य शब्दावली

- **मृगशावक** : हिरण का बच्चा
- **थानेसर** : प्राचीन भारत में थानेश्वर को थानेसर कहा गया
- **कालकवलित** : अंत, मृत्यु

टिप्पणी

- **फो–शे** : वैश्य राजपूत
- **प्रतिद्वंद्वी** : विरोधी
- **दुरभिसंधि** : बुरे उद्देश्य से की गई गुप्त मंत्रणा
- **क्षितिज** : आकाश
- **जंग** : युद्ध
- **पैतृक** : पिता से प्राप्त
- **समक्ष** : सामने
- **आधिपत्य** : प्रभुत्व, राज
- **साक्ष्य** : गवाह
- **परास्त** : हराना

## 1.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

### लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. हर्षकालीन इतिहास को जानने में सहायक पुरातात्विक स्रोतों का उल्लेख कीजिए।
2. हर्ष के शासक बनने से पूर्व की घटनाओं का वर्णन कीजिए।
3. चीनी यात्री ह्वेनसांग का इतिहास में स्थान स्पष्ट कीजिए।
4. यशोवर्मन की सैनिक उपलब्धियों का वर्णन कीजिए।
5. हर्ष की प्रशासनिक व्यवस्था पर टिप्पणी कीजिए।

### दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. हर्ष के समकालीन राजाओं का विस्तृत वर्णन कीजिए।
2. हर्ष द्वारा आयोजित प्रयाग सभा एवं कन्नौज सभा का उल्लेख कीजिए।
3. हर्ष के सैनिक अभियान की विस्तृत व्याख्या कीजिए।
4. हर्ष की सांस्कृतिक उपलब्धियों एवं प्रशासन का वर्णन कीजिए।
5. शशांक तथा यशोवर्मन का तुलनात्मक विवेचन कीजिए।

## 1.10 सहायक पाठ्य सामग्री

1. बी. चटोपाध्यायः एज ऑफ कुषान।
2. चौधरी, राधाकृष्णनः प्राचीन भारत का राजनैतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, भारती भवन, पटना, 2003।
3. झा एंड श्रीमालीः प्राचीन भारत का इतिहास, हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 2002।

4. झा, डी. एन.: प्राचीन भारत; एक रूपरेखा, पीपल्स पब्लिशर्स हाउस, नई दिल्ली, 2005।
5. मजूमदार, ए. के.: द हिस्ट्री एंड कल्चर ऑफ द इंडियन पीपल, ''द क्लासिकल एज'' वाल्यूम–III, भारतीय विद्या भवन, मुंबई।
6. पुरी, बी. एन.: इंडिया अंडर द कुषान।
7. मजूमदार, आर. सी.: (''द हिस्ट्री एंड कल्चर ऑफ इंडियन पीपल, वाल्यूम III,: द क्लासिक एज भारतीय विद्या भवन, मुंबई, 1954'')।
8. श्रीवास्तव, के. सी.: प्राचीन भारत का इतिहास द संस्कृति, इलाहाबाद, 2005।
9. शर्मा, रीता: ''प्राचीन भारत का इतिहास'' मोतीलाल बनारसी दास, 1998।
10. पाण्डेय, विमल चंद: ''प्राचीन भारत का राजनैतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास'', (वाल्यूम: II) सैंट्रल बुक डिपो, इलाहाबाद, 1980।

टिप्पणी

# इकाई 2 दक्षिण भारत के राजवंश

टिप्पणी

## संरचना

2.0 परिचय
2.1 उद्देश्य
2.2 दक्षिण भारत के राजवंश : पल्लव और उनका प्रशासन
2.3 राष्ट्रकूट
2.4 कल्याणी के चालुक्य
2.5 चोल और उनका प्रशासन
2.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
2.7 सारांश
2.8 मुख्य शब्दावली
2.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
2.10 सहायक पाठ्य सामग्री

## 2.0 परिचय

गुप्तों के बाद की अराजकता की स्थिति एवं अशांत वातावरण को शांत करने में हर्ष की महत्वपूर्ण भूमिका थी। परंतु गुप्तकाल के पश्चात भारत राजनीतिक रूप से अव्यवस्थित हो गया था। यद्यपि हर्ष ने भारत को राजनीतिक रूप से एकता प्रदान की परंतु उसकी मृत्यु के पश्चात यह छोटे-छोटे भागों में विभक्त हो गया। इसी समय दक्षिण भारत में भी कुछ राजवंशों का उदय हुआ जिन्होंने भारतीय इतिहास में योगदान दिया। सातवाहन, चोल, चेरा, चालुक्य, पल्लव, राष्ट्रकूट और होसाला आदि राजवंशों की दक्षिण भारत के इतिहास में महत्वपूर्ण भूमिका रही। दक्षिण भारत में चार हजार वर्षों से अधिक अवधि में कई राजवंशों और साम्राज्यों का उदय और पतन हुआ था। पल्लव वंश का संस्थापक बप्पदेव था जो संभवत: सातवाहन शासकों के अधीन प्रांतीय शासक था तथा मौका पाकर एक स्वतंत्र राज्य की स्थापना की। पल्लव वंश का वास्तविक संस्थापक सिंहविष्णु को माना जाता है। चोल साम्राज्य का संस्थापक विजयालय था। उसने तंजावुर (तंजौर) को अपनी राजधानी बनाया। राष्ट्रकूट वंश का संस्थापक दंतिदुर्ग को माना जाता है। इनके विषय में कहा जाता है कि इन्होंने उज्जयिनी में हरिण्यगर्भ (महादान) यज्ञ किया था। दक्षिण के इतिहास में चालुक्यों का बड़ा ही महत्वपूर्ण तथा अग्रगण्य स्थान रहा है। इन्होंने वहां पर कई शताब्दियों तक शासन किया और वहां की राजनीति को प्रभावित किया।

प्रस्तुत इकाई में दक्षिण भारतीय राज्यों के इतिहास, राष्ट्रकूट, पल्लव, चोल एवं चालुक्य राजवंशों के प्रशासन के संबंध में विस्तार से अध्ययन किया गया है।

## 2.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- दक्षिण भारत के राजवंशों के इतिहास को समझ पाएंगे;
- पल्लव वंश और उसके प्रशासकों के बारे में जान पाएंगे;

- राष्ट्रकूट की ऐतिहासिकता एवं संस्कृति के विषय में जान पाएंगे;
- चालुक्य एवं चोल वंश की उत्पत्ति एवं उनके प्रशासकों का अध्ययन कर पाएंगे।

टिप्पणी

## 2.2 दक्षिण भारत के राजवंश : पल्लव और उनका प्रशासन

विंध्य के दक्षिण में पड़ने वाले भारत के भाग को लोग दक्षिण भारत या दक्खन कहते हैं। यह विभाजन दरअसल प्राचीन भारत के उस समय से ही चला आ रहा है, जब विंध्य के दक्षिण में पड़ने वाला क्षेत्र दक्षिणपथ या दक्षिणी क्षेत्र कहलाता था। दक्खन मध्य युग में आकर दक्कन हो गया, जिससे दकन शब्द निकला है। लेकिन इतिहासकारों और भूगोलविदों को मुख्य दकन को शेष दक्षिण भारत से अलग करके देखना उपयोगी लगा। दक्खन में महाराष्ट्र और उत्तरी कर्नाटक आ जाते हैं, और गोदावरी और कृष्णा के दुहरे डेल्टा भी।

दक्खन तो मौर्य साम्राज्य में शामिल था, और भारत की प्रमुख रियासतें–अर्थात चोल, पांड्य, चेरा और सतियापुत्रों की रियासतें–मौर्यों की मित्र और पड़ोसी थीं। उत्तर मौर्य काल के प्रारंभिक दौर में राजा की उपाधि वाले छोटे-छोटे सरदार दक्खन में उभरे और स्वयं को 'दक्खन के स्वामी' कहने वाले, सातवाहनों ने दक्खन को अपने में मिला लिया। दक्षिण में भी रियासतों में महत्वपूर्ण बदलाव हो रहे थे, जिसके फलस्वरूप आने वाले काल में राज्य व्यवस्थाओं का उदय हुआ।

### दक्षिण की राजनीतिक स्थिति

सातवाहनों के पतन के बाद दक्षिण या दक्खन पर एक वंश का राजनीतिक कब्जा समाप्त हो गया। कई राज्य अलग-अलग क्षेत्रों में सातवाहनों के उत्तराधिकारियों के रूप में उभर कर आए। उत्तरी महाराष्ट्र में हम अमीरों को देखते हैं, जिन्होंने कुछ समय तक शक राज्यों में सेनापतियों का काम किया, और मध्य तीसरी शताब्दी में ईश्वरसेन ने एक राज्य की स्थापना की, जिसके फलस्वरूप 248-49 ई. में एक युग की शुरुआत हुई। बाद में यह युग बहुत महत्वपूर्ण हो गया और इसे कलचुरी चेदी युग के नाम से जाना गया।

**विदर्भ (महाराष्ट्र)–** महाराष्ट्र पठार पर जल्दी ही वाकाटक हावी हो गए। उन्होंने तीसरी शताब्दी की अंतिम चौथाई से छोटे राजाओं के रूप में शुरुआत की, लेकिन तेजी से अपनी ताकत बढ़ा ली और महाराष्ट्र के अधिकांश भाग और उससे लगने वाले मध्य प्रदेश के भागों पर अपना कब्जा कर लिया। वाकाटकों की दो शाखाएं थीं–मुख्य शाखा तो पूर्वी महाराष्ट्र (विदर्भ क्षेत्र) से राज करती थी, जबकि वाकाटकों की घाटी शाखा के नाम से जानी जाने वाली एक सहयोगी शाखा दक्षिणी महाराष्ट्र में राज करती थी। सबसे मशहूर वाकाटक राजा मुख्य शाखा का प्रवरसेन प्रथम हुआ। उसने कई यज्ञ किए और ब्राह्मणों को भूमि दान में दी। मध्य छठी शताब्दी तक आते-आते दक्खन की बड़ी शक्ति के रूप में बादामी के चालुक्यों ने उनके पांव उखाड़ दिए।

टिप्पणी

**कर्नाटक**–उत्तरी कर्नाटक (उत्तर कन्नड़) की तटीय पट्टी और साथ के क्षेत्रों में चुटुओं ने एक छोटा राज्य बना लिया। उन्होंने चौथी शताब्दी के मध्य तक राज किया, फिर कदंबों ने उन्हें उखाड़ फेंका। इस राज्य की स्थापना मशहूर मयूरसरमन ने की। मयूरसरमन छापामार लड़ाई में माहिर था और उसने कांची के पल्लवों को अपनी प्रभुसत्ता मानने पर मजबूर कर दिया। फिर उसने अश्वमेध यज्ञ किए और मयूरसरमन से मयूरवर्मन ब्राह्मण से क्षत्रिय बन गया। अंत में आपसी फूट से बादमी के चालुक्यों ने उन्हें हरा दिया।

**पूर्वी दक्खन**– यह क्षेत्र राजनीतिक दृष्टि से, सबसे अधिक अशांत तथा साथ ही पूर्व में पड़ने वाला उपजाऊ कृष्णा गोदावरी डेल्टा (आंध्र डेल्टा) क्षेत्र था। यहां सातवाहनों के बाद इक्ष्वाकु आए जिन्होंने 225 ई. से इस क्षेत्र पर राज किया। पश्चिम से अभीरों के आने पर उनके राज में विघ्न आया। लेकिन यह एक अस्थायी दौर था, इक्ष्वाकु फिर लौटे और उन्होंने अगले लगभग पचास सालों तक राज्य किया।

आंध्र डेल्टा में राजनीतिक स्थिरता पांचवीं शताब्दी के मध्य में विष्णुकुंडियों के आने के साथ वापस आई। उनके वाकाटकों के साथ अच्छे संबंध थे, लेकिन दक्षिण कनार्टक के पश्चिमी गंगों के साथ उनका टकराव लगातार काफी समय तक बना रहा। कई अश्वमेध यज्ञ करने वाला, इस शाखा का संस्थापक, मधुवर्मन प्रथम (440-60 ई.) और मधुवर्मन द्वितीय इस शाखा के मशहूर शासकों में हैं। विष्णुकुंडियों ने सातवीं शताब्दी की पहली चौथाई में चालुक्यों के आने तक राज किया।

**दक्षिण कर्नाटक**–दक्षिण कर्नाटक में पांचवीं शताब्दी की शुरुआत में एक वंश का उदय हुआ। इस वंश के राजा गंग या पश्चिमी गंग कहलाते हैं, ये उड़ीसा के पूर्वी गंगों से अलग थे। पश्चिमी गंगों ने अगले छह सौ सालों में शासन किया। इतने लंबे संबंध के कारण यह क्षेत्र गंगवाड़ी कहलाने लगा। गंगवाड़ी एक अलग-थलग क्षेत्र है। पहाड़ियों से घिरा ये क्षेत्र कृषि की दृष्टि से कम संपन्न है। इन्हीं दोनों कारणों से गंग लोग बिना अधिक बाहरी हस्तक्षेप के इतने लंबे समय तक शासन कर सके। बहरहाल, सैनिक महत्व की दृष्टि से उनकी स्थिति लाभकर थी। उन्होंने बाद में पल्लवों और चालुक्यों के टकराव में एक बहुत अहम भूमिका अदा की।

तमिलनाडु और केरल में संगम काल का अंत तीसरी शताब्दी के अंत तक हो गया। इस क्षेत्र का चौथी से छठी शताब्दी तक का इतिहास बहुत अस्पष्ट है। पल्लवों की शुरुआती इतिहास इसी काल का है। हमें उनके कांची से जारी किए गए तांबे के पत्तर वाले अभिलेख मिलते हैं।

दरअसल, संगम काल के अंत से छठी शताब्दी के मध्य तक तमिलनाडु और केरल पर कालभ्रों का कब्जा था। थोड़ी-बहुत उपलब्ध जानकारी के आधार पर यह कहा जा सकता है कि वे ब्राह्मणों की संस्थाओं के खिलाफ थे और बौद्ध और जैन धर्मों के समर्थक थे। उन्होंने संगम युग के चेरों, चोलों और पांड्यों के राज को खत्म कर दिया, और वे ऐसी गैर खेतिहर पहाड़ी जनजातियों के लोग थे जिन्होंने बसी बसाई खेतिहर आबादी में भारी तबाही मचाई।

टिप्पणी

## दक्खन के प्रमुख राजवंश

दक्खन के इतिहास में जिन राजवंशों ने अपना विशिष्ट योगदान दिया वे हैं–

**बादामी के चालुक्य**– चालुक्य वंश का प्रथम सम्राट जयसिंह था जिसने कदंबों और राष्ट्रकूटों से लड़कर अपने एक स्वतंत्र राज्य की स्थापना की। जयसिंह के पुत्र रणराज ने साम्राज्य को मात्र सुरक्षित रखा परंतु इसके पुत्र पुलकेशिन प्रथम को चालुक्य वंश का वास्तविक संस्थापक माना जाता है क्योंकि वह प्रथम स्वतंत्र सम्राट था। इसने अपने साम्राज्य का विस्तार किया तथा अश्वमेध यज्ञ कराकर अपनी प्रतिभा सिद्ध की। इसकी राजधानी बादामी थी।

**कीर्तिवर्मन**– कीर्तिवर्मन अपने पिता के समान ही वीर था। उसने बंग अंग, कलिंग, वंतुर, मगध, मद्रक, केरल, गंग, मूठक, पांडय, द्रमिल, चोलिय, आलुक व वैजयंती के राजाओं को पराजित किया था। इसका शासन

काल 566 से 597–98 ई. तक माना जाता है।

**मंगलेश**– कीर्तिवर्मन के पुत्र के नाबालिग होने के कारण राजसिंहासन पर उसका सौतेला भाई मंगलेश बैठा। रेवती द्वीप व कलचुरी विजय उसकी सबसे बड़ी सफलता थी। विष्णुभक्त मंगलेश ने बादामी में विष्णु का भव्य गुहा मंदिर निर्मित कराया जो कला का उत्कृष्ट नमूना है।

**पुलकेशिन द्वितीय (610 से 642 ईसा तक)**– पुलकेशिन द्वितीय अपने वंश का सबसे महान व प्रतापी सम्राट था। उसने अपने चाचा को हटाकर गद्दी प्राप्त की जिससे इस गृहयुद्ध का लाभ उठाकर अनेक अधीनस्थ राज्य स्वतंत्र हो गए। इसी समय बाह्य आक्रमण भी हुआ। इस संकटमय स्थिति में पुलकेशिन द्वितीय ने धैर्य से काम लिया व बाह्य आक्रांताओं को अपना मित्र बना लिया। अपनी स्थिति सुदृढ़ करने के पश्चात उसने अपना विजय अभियान प्रारंभ किया। पुलकेशिन द्वितीय ने नवासियों, मैसूर के गंगों, मालावार के अलूपों और उत्तर के कोंकण मौर्यों को आत्मसमर्पण के लिए विवश किया। गुजरात के लाटों, मालवा और गुर्जरों का दमन किया।

पुलकेशिन द्वितीय की सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपलब्धि हर्ष की पराजय थी। हर्ष को पराजित करने से उसकी प्रतिभा में अत्यधिक वृद्धि हुई। चोलों, केरलों व पांडयों को

अपना मित्र बनाकर उसने पल्लवों को भी पराजित किया। परंतु पुलकेशिन द्वितीय के अंतिम दिनों में चालुक्य शक्ति का ह्रास होने लगा था तथा नरसिंहवर्मन ने पुलकेशिन द्वितीय को युद्ध में मार दिया।

टिप्पणी

**विक्रमादित्य प्रथम**- 13 वर्षों तक पल्लवों ने चालुक्यों की शक्ति को ग्रसित रखा। परंतु विक्रमादित्य जो पुलकेशी द्वितीय का पुत्र था, ने चालुक्यों की शक्ति को पुनर्स्थापित किया। उसने अपने पिता के समान ही विजय प्राप्त की।

विक्रमादित्य की मृत्युपरांत इसका पुत्र विजयादित्य 680 ई. से 698 ई. तक राजा रहा।

**विक्रमादित्य द्वितीय**- विक्रमादित्य द्वितीय अत्यंत वीर सम्राट था। उसने चोल, पांडयों व केरल शक्तियों को आतंकित किया था। उसी के समय अरबों ने 712 ई. में सिंध पर विजय के पश्चात दक्षिण पर आक्रमण किया परंतु विक्रमादित्य ने उन्हें पराजित कर दिया। इस प्रकार उसने दक्षिण को अरबों से सुरक्षित किया परंतु यह पल्लवों की शक्ति को पूर्णत: नष्ट न कर सका।

**बादामी के चालुक्यों का अंत**- विक्रमादित्य द्वितीय के पश्चात कीर्तिवर्मन द्वितीय शासक बना। यह अंतिम सम्राट था। 753 ई. को राष्ट्रकूट दंतिदुर्ग ने कीर्तिवर्मन पर अधिकार कर इनकी शक्ति को नष्ट कर दिया। यद्यपि चालुक्यों की दूसरी शाखाओं ने अपना अधिकार बनाए रखा।

**कल्याणी के चालुक्य**- कल्याणी के चालुक्यों की स्थापना 973 ई. को तैलप द्वितीय ने राष्ट्रकूट नरेश को पदच्युत कर की तथा कल्याणी को अपनी राजधानी बनाया। इसने चोल, कलचुरी राजाओं को पराजित किया तथा परमार राजा मुंज पर भी विजय प्राप्त की। उसने लगभग 24 वर्षों तक शासन किया। तैलप द्वितीय की मृत्यु के उपरांत उसका पुत्र सत्याश्रय गद्दी पर बैठा। चोल राजा ने उसके राज्य में अशांति उत्पन्न कर दी परंतु सत्याश्रय ने अपनी शक्ति संचित की।

सत्याश्रय की मृत्यु के उपरांत विक्रमादित्य गद्दी पर बैठा । इसने 10 वर्ष तक शासन किया इसके पश्चात जयसिंह द्वितीय शासक बना। इसने परमार राजा भोज को पराजित किया था। इसके पश्चात सोमेश्वर प्रथम आहवमल्ल राजगद्दी पर आसीन हुआ। इसने चोल शासक राजाधिराज कांची पर आक्रमण कर उसे अपने साम्राज्य में मिलाया व चेदिराज को परास्त किया। इसने कल्चुरियों को परास्त किया। यादवों, होयसलों और कदंबों की शक्ति को बढ़ने से रोका। यह अपनी शाखा का सर्वश्रेष्ठ सम्राट था। इसने कल्याणी को अपनी राजधानी बनाया। कहा जाता है कि यह ज्वर से परेशान हो गया तो मंत्र पढ़ते हुए इसने तुंगभद्रा में जल समाधि ली।

सोमेश्वर की मृत्यु के पश्चात सोमेश्वर द्वितीय (1068 ई.-1076 ई.) शासक बना। इसके पश्चात विक्रमादित्य छठा शासक बना। वह न केवल प्रतापी सम्राट था वरन विद्वानों का संरक्षक भी था। कवि विल्हण उसके दरबार में रहता था। उसने विक्रमाडूदेव चरित नामक ग्रंथ लिखा था।

मिताक्षरा के प्रणेता विज्ञानेश्वर भी उसके दरबार में रहता था। सोमेश्वर के पश्चात अनेक शासक हुए परंतु सभी शक्तिहीन थे। 1190 ई. में देवगिरी के यादव शासक भिल्लम ने कल्याणी को अपने राज्य में मिला लिया।

टिप्पणी

**वेंगी के चालुक्य**–वेंगी के चालुक्यों ने 5 शताब्दियों तक आंध्र व कलिंग के एक भाग पर शासन किया। विष्णुवर्धन को पुलकेशी ने पिष्टपुर का शासन सौंपा था परंतु इसके उत्तराधिकारी स्वतंत्र हो गए। इस वंश के प्रसिद्ध शासक विजयादित्य द्वितीय तथा विजयादित्य तृतीय ने राष्ट्रकूटों, गंगों तथा समकालीन शक्तियों को पराजित किया। राजाराज चोल ने इनकी शक्ति को क्षीण कर दिया परंतु शक्तिवर्मन ने अपनी खोई हुई कीर्ति को पुनः प्राप्त करके अपना साम्राज्य विस्तार किया।

शक्तिवर्मन के उत्तराधिकारी विमलादित्य ने चोल राजकुमारी कुंदवा से विवाह किया और अपने संबंधों को सुधारा। विमलादित्य के पुत्र राजाराज विष्णुवर्धन ने राजेंद्र प्रथम की कन्या से विवाह किया। इस विवाह से उत्पन्न राजेंद्र चोल ने 1070 ई. में विजयादित्य सप्तम को वेंगी से मार भगाया ओर इस प्रकार चोल चालुक्य मिलकर एक हो गए।

## पल्लव

पल्लव काल में कला का सर्वाधिक विकास हुआ। सांस्कृतिक उत्थान में साहित्य की रचना हुई। कुछ पुरातात्विक अवशेष तथा लेख प्राप्त हुए हैं, जिनके आधार पर पल्लवकालीन इतिहास को जानने में सहायता मिलती है। ये स्रोत निम्नलिखित हैं-

### साहित्यिक स्रोत

इस काल में साहित्यिक रचना अपने चरम पर थी। इस काल की रचनाएं तमिल व संस्कृत में लिखी गई थीं, जो पल्लवकालीन, संस्कृति, प्रशासन, साम्राज्य, राजनीति, धर्म इत्यादि पर प्रकाश डालती हैं। संस्कृत में लिखी गई 'अवन्तिसुंदरीकथा', पल्लव नरेश सिंहविष्णु के शासन काल की राजनीतिक व सांस्कृतिक घटनाओं पर प्रकाश डालती है। यह सोड्ढल द्वारा लिखी गई सर्वश्रेष्ठ रचना है। 'मत्तविलासप्रहसन' की रचना पल्लव वंशीय महेन्द्रवर्मन ने की थी, इस रचना में तत्कालीन न्याय विभाग में व्याप्त भ्रष्टाचार तथा भिक्षुओं पर व्यंग्य किया गया है।

इसके अतिरिक्त तमिल भाषा में लिखे गए ग्रंथों में 'नन्दिक्कलम्बकम्' है, जिसमें नन्दिवर्मन तृतीय के जीवन की उपलब्धियों का वर्णन किया गया है, साथ ही कांची की संस्कृति का भी उल्लेख मिलता है। जैन ग्रंथ 'लोक विभाग' द्वारा नरसिंहसंवर्मन के शासन का पता चलता है। बौद्ध ग्रंथ 'महावंश' से पल्लव शासकों की तिथि निर्धारण में सहायता मिलती है।

इस प्रकार तत्कालीन साहित्य से हमें पल्लव शासन के संपूर्ण महत्वपूर्ण तथ्यों को जानने में मदद मिलती है।

टिप्पणी

## पुरातात्विक स्रोत

पल्लव वंश से जुड़े विभिन्न लेख मिलते हैं, जो मंदिरों, ताम्रपत्रों, शिलाओं, स्तंभों व मुद्राओं पर उत्कीर्ण कराए गए थे। इन लेखों से पल्लवकालीन शासकीय स्थितियां, प्रशासन, संस्कृति इत्यादि की जानकारी प्राप्त होती है। इस काल में लिखे गए लेखों की भाषा प्राकृत तथा संस्कृत है।

संस्कृत लेखों में कुमार विष्णु द्वितीय का केन्दूलुर दानपत्र, नन्दिवर्मन का उदयेनिन्द्रम दानपत्र, गहढ़वाल दानपत्र, वेलूरपाल्यम् अभिलेख, बाहूर अभिलेख, पल्लवरम् अभिलेख, वायलूर अभिलेख, इत्यादि महत्वपूर्ण लेख हैं, जिनमें पल्लव कालीन मुख्य घटनाओं पर प्रकाश पड़ता है। प्राकृत भाषा में प्राप्त लेख 'मेडवोल' तथा 'हीरहडगल्ली' के लेखों से शिवस्कन्दवर्मन के प्रारंभिक इतिहास का पता चलता है।

इन समस्त लेखों से तत्कालीन शासकों की राजनीतिक तथा सांस्कृतिक उपलब्धियों पर विस्तार से जानकारी मिलती है। इसके अतिरिक्त चालुक्यों तथा राष्ट्रकूटों के तत्कालीन लेखों से भी पल्ल्ववंशीय शासकों के विषय में पता चलता है।

## विदेशी विवरण

विख्यात चीनी यात्री ह्वेनसांग 640 ई. में पल्लवंशीय शासक नरसिंहवर्मन प्रथम के शासन काल में कांची की यात्रा पर आया था। उसने अपने विवरण में लिखा है कि कांची में बहुसंख्यक बौद्ध भिक्षु थे, जो यहां बने बौद्ध विहारों में रहते थे। उसके विवरण से ही हमें कांची और महाबलीपुरम की समृद्धि का पता चलता है।

इस प्रकार समस्त साक्ष्य पल्लवकालीन इतिहास को उजागर करने में सहायक हैं।

## पल्लवों की उत्पत्ति

पल्लवों की उत्पत्ति के संबंध में अनेक मत हैं। विभिन्न विद्वान अपने मतों के अनुसार पल्लवों की उत्पत्ति निश्चित करते हैं। ये समस्त मत निम्नलिखित हैं-

- डॉ. जायसवाल पल्लवों को ब्राह्मण मानते हुए कहते हैं कि इनकी उत्पत्ति वाकाटकों से हुई थी। इनके अनुसार वाकाटक नरेश प्रवरसेन ने पल्लव वंश की स्थापना की थी, और वाकाटक ब्राह्मण थे।

  किंतु इस मत का खण्डन किया जा चुका है, क्योंकि तालगुण्ड अभिलेख के अनुसार पल्लव क्षत्रिय थे।

- जे. डूब्रील के अनुसार, 'पल्लव वंश' पल्लवों के राज्यपाल सुविख्यात द्वारा स्थापित किया गया था, और यही पल्लव वंश का संस्थापक होने के कारण इनका आदि पुरुष था।

  किंतु यह तथ्य प्रामाणिक नहीं प्रतीत होता है, इस तथ्य में केवल दोनों वंश के नाम की साम्यता है, इसके अतिरिक्त डूब्रील महोदय कोई विशेष साक्ष्य प्रस्तुत नहीं कर सके।

टिप्पणी

- इसी प्रकार फादर हेरास पल्लवों को पर्थियनों से संबंधित बताते हैं। वे अपने मत में कहते हैं कि जो सिक्कें पल्लवों के प्राप्त हुए हैं, वे पर्थियनों के सिक्कों से मिलते हैं। पल्लवों के सिक्कों के पृष्ठ भाग पर सूर्य, चन्द्र की आकृति है, यही आकृतियां पर्थियनों के सिक्कों पर भी मिलती हैं किंतु केवल सिक्कों पर उत्कीर्ण आकृतियों के आधार पर यह नहीं कहा जा सकता कि पल्लव, पर्थियनों से संबंधित थे, और यदि वास्तव में संबंधित होते तो इसका उल्लेख हमें किसी साहित्य, अभिलेख या इन सिक्कों पर अवश्य मिलता।
- डॉ. आयंगर, स्मिथ एवं मुदालियर के अनुसार, पल्लव तमिल जनजाति से संबंधित थे, जो श्रीलंका के निवासी थे। चोल शासक किल्लिवन ने श्रीलंका के मणिपल्लव शासक की कन्या से विवाह किया था, इन्हें एक पुत्र की प्राप्ति हुई, जिसने भविष्य में पल्लव वंश की स्थापना की। 'पल्लव शब्द' उसकी माता के जन्म स्थल 'मणिपल्लव' के नाम पर रखा गया। अत: 'पल्लव' श्रीलंका और चोलों का सम्मिश्रण है।

  किंतु अन्य विद्वान इस मत को नहीं स्वीकारते हैं, क्योंकि यदि वे किसी भी प्रकार से श्रीलंका से संबंधित होते तो इसका उल्लेख हमें कहीं न कहीं अवश्य मिलता। अत: यह तथ्य भी निराधार है।
- जायसवाल, गोपालन, डी.सी. सरकार, नीलकण्ठ शास्त्री आदि विद्वानों के अनुसार पल्लव भारतीय ही थे, किंतु वे किस वंश से संबंधित थे यह कहना मुश्किल है, क्योंकि हमें कोई प्रमाण नहीं मिलता है। पल्लव अभिलेखों के अनुसार वे स्वयं को भारद्वाज गोत्रीय बताते हैं, इसी प्रकार उनके तालगुण्ड अभिलेख में उन्हें क्षत्रिय कहा गया है। इस आधार पर विद्वान मानते हैं कि संभव है कि वे उत्तर भारत के भारद्वाज गोत्रीय ब्राह्मण थे तथा कांची के समीप के राजवंशों के रक्त का सम्मिश्रण थे।

उपरोक्त समस्त मतों में से हमें पल्लव कालीन मतों पर ही निर्भर रहना पड़ता है, इसलिए यह माना जाता है कि पल्लव ब्राह्मण थे, किंतु कर्म से वे क्षत्रिय थे।

## पल्लव शासक

कांची पल्लवों की राजधानी थी, किंतु पल्लवों से पूर्व वहां पर नागवंशी शासकों का अधिकार था, जिन्हें परास्त कर पल्लवों ने कांची पर अधिकार किया था। जबकि पल्लवों का मूल स्थान तोलमंडलम् था, किंतु यह सत्य है कि कांची पर अधिकार करने तथा उसे अपनी राजधानी बनाने के पश्चात कांची में पल्लवों ने सांस्कृतिक और राजनीतिक उत्कर्ष प्राप्त किया। दक्षिण में पल्लव कालीन संस्कृति अत्यंत उत्कृष्ट थी। पल्लवकालीन लेख व साहित्य हमें प्राकृत तथा संस्कृत में मिलते हैं। प्राकृत लेख 250 ई. से 350 ई. तक तथा संस्कृत लेख 350 ई. से 600 ई. के मध्य में मिलते हैं।

## प्रारंभिक पल्लव शासक

पल्लवों का उदय तीसरी से चौथी शताब्दी में हुआ था। राजसिंह के 'वायालु-स्तंभ लेख' से विदित होता है कि अशोक के पूर्व भी पल्लव थे। पल्लव वंश के प्रारंभिक राजाओं में

टिप्पणी

'बप्पदेव' 'शिवस्कन्दवर्मन' और 'वीरवर्मन' थे। इतिहास में 'बप्प' को हम सिंहवर्मा के नाम से भी जानते हैं जो तृतीय शताब्दी के अंतिम चरण में इस वंश का प्रथम शासक बना था। उसके पश्चात उसका पुत्र एवं उत्तराधिकारी शिवस्कन्दवर्मन था। उसका साम्राज्य कृष्णा नदी से दक्षिण में पेन्नार नदी तक फैला था, और विजयों के पश्चात ही उसने अश्वमेध यज्ञ, वाजपेय और वैदिक यज्ञों का अनुष्ठान करवाया था। उसके प्राप्त लेख हरिहडागल्ली से पता चलता है कि उसने 'धर्ममहाराज' की उपाधि धारण की थी, यह लेख उसके शासन के आठवें वर्ष का था।

इसके पश्चात उसका पुत्र स्कन्दवर्मा शासक बना। इसके पश्चात विष्णुगोप शासक बना। यह वही विष्णुगोप है जिसे समुद्रगुप्त ने परास्त किया था। इसी विष्णुगोप का उल्लेख प्रयाग-प्रशस्ति में किया गया है। विष्णुगोप ने 375 ई. तक शासन किया। 550 ई. में पल्लववंश का शासक सिंह वर्मा था। इन 175 वर्षों के बीच के शासकों का उल्लेख नहीं मिलता है। महत्वपूर्ण बात यह है कि सिंहवर्मा ही पल्लववंश के उत्कर्ष की यात्रा को प्रारंभ करता है।

## प्रमुख पल्लव शासक एवं उनकी उपलब्धियां

विष्णुगोप के पश्चात सिंहवर्मा शासक बना, इन 175 वर्षों में 8 शासकों ने शासन किया, किंतु इनका इतिहास लुप्त है। सिंहवर्मा के विषय में भी जानकारी नहीं प्राप्त है। इसके पश्चात इसका पुत्र सिंहविष्णु शासक बना, जो अत्यंत पराक्रमी राजा था।

## सिंहविष्णु

सिंहविष्णु को पल्लववंश का वास्तविक संस्थापक माना जाता है। इसके काल से हमें पल्लवों का प्रामाणिक इतिहास मिलने लगा। उसे अवविष्ठणु भी कहा जाता है। कावेरी तक के समस्त प्रदेशों को जीतने के पश्चात उसने 'अवनिसिंह' की उपाधि धारण की थी। कशाकुड़ी दानपत्र से पता चलता है कि सिंहविष्णु ने कलभ्र, चोल, पांड्य, सिंहल, मलनाडु के राजाओं को परास्त किया था। चोलों को परास्त कर उसने चोलमंडलम् पर अधिकार किया था।

वह वैष्णव था। मामल्लपुरम् की एक गुफा में उसकी एक मूर्ति मिली थी। उसके दरबार में 'भारवि' कवि था, जिसने संस्कृत में किरातार्जुनीय महाकाव्य लिखा है।

## महेन्द्रवर्मन प्रथम

सिंहविष्णु का पुत्र महेन्द्रवर्मन, 600 ई. में शासक बना। वह अत्यंत महान शासक, निर्माता व कला प्रेमी था। उसे महेन्द्रविक्रम भी कहा जाता था। उसने मत्तविलास; अवनिभाजन, शत्रुमल्ल, गुणभार, विचित्रवित, सत्यसंघ, परममाहेश्वर, महेन्द्रविक्रय, चेतकारि इत्यादि उपाधियां ग्रहण की थीं। इस समय कर्नाटक तथा महाराष्ट्र में चालुक्यों की शक्ति का उत्कर्ष हो रहा था। एहोल अभिलेख से विदित होता है कि चालुक्य नरेश पुलिकेशिन द्वितीय ने कदम्बों तथा वेंगी के चालुक्यों को जीतने के पश्चात पल्लवों पर आक्रमण किया। पल्लवों के कुछ भागों पर तो चालुक्यों ने अधिकार कर लिया था किंतु राजधानी कांची पर अधिकार नहीं कर सके थे। कशाकुड़ी लेख में वर्णन मिलता है कि महेन्द्रवर्मन

टिप्पणी

ने पुल्लिलूर नामक स्थान पर शत्रुओं को परास्त किया था। महेन्द्रवर्मा ने दक्षिण में अपना राज्य विस्तार किया।

वह एक महान संगीतज्ञ भी था। उसके गुरु का नाम रूद्राचार्य था। उसकी संगीतरचना 'पुद्दकोट्टई' की शिलाओं पर उत्कीर्ण है। वह एक महान लेखक था। उसके द्वारा लिखी गई रचना 'मत्तविलासप्रहसन' में उसने पशुपति, बौद्ध भिक्षुओं के भ्रष्टाचार का उल्लेख किया है। इसके अतिरिक्त वह स्थापत्य का भी जानकार था। उसे चट्टानों को काटकर मंदिर बनाने की कला का प्रवर्तक माना जाता है। मंडगपट्ट लेख में लिखा है, कि महेन्द्रवर्मन ने ब्रह्मा, ईश्वर और विष्णु के अनेक मंदिर बनवाए थे। उसके मंदिरों की विशेषता 'त्रिमुखी स्तंभ' थे। उसने मोहिन्द्र तडाग बनवाया था।

वह प्रारंभ में जैन अनुयायी था, किंतु बाद में शैव हो गया था। उसने अनेक गुहामंदिरों का निर्माण करवाया था।

## नरसिंहवर्मन प्रथम

महेन्द्रवर्मन प्रथम के पश्चात उसका पुत्र नरसिंहवर्मन प्रथम शासक बना। उसे महामल्ल भी कहा जाता है। वह अपने वंश में सबसे शक्तिशाली शासक था। उसके शासनकाल में पल्लव वंश ने अद्वितीय समृद्धि प्राप्त की।

महेन्द्रवर्मन प्रथम के शासनकाल में चालुक्य नरेश ने पल्लव साम्राज्य के कुछ क्षेत्रों पर (उत्तरी क्षेत्र) अधिकार कर लिया था। नरसिंहवर्मन प्रथम के शासन काल में भी पुलिकेशिन ने आक्रमण किया, किंतु वह परास्त हो गया। नरसिंहवर्मन ने अब चालुक्यों को समाप्त करने के लिए शिरूतोण्ड के नेतृत्व में एक सेना वातापी पर आक्रमण के लिए भेजी, युद्ध में पुलिकेशिन द्वितीय मारा गया और बादामी पर पल्लवों का अधिकार हो गया। इस विजय का उल्लेख वातापी में 'मल्लिकार्जुन' मंदिर के पीछे पाषाण पर उत्कीर्ण है। पल्लवों ने युद्ध के पश्चात भारी संपत्ति लूटी और इसी विजय के उपलक्ष्य में 'वातापीकोण्ड' की उपाधि धारण की। अब वह संपूर्ण दक्षिणापथ का सर्वभौम शासक बन गया था।

चालुक्यों के विरुद्ध युद्ध में नरसिंह वर्मन ने सिंहल के युवराज मानवर्मन से सहायता प्राप्त की थी, अतः मानवर्मन का सिंहल के खोये हुए सिंहासन को पुनः प्राप्त करवाने हेतु नरसिंहवर्मन ने शक्तिशाली नौ सेना को उसके साथ भेजा और स्वयं भी महाबलीपुरम् तक गया। उसका प्रतिद्वंद्वी हत्थदत्य मारा गया और सिंहल के सिंहासन पर मानवर्मन का अधिकार हो गया। इसका उल्लेख 'कशाकुड़ी अभिलेख' में किया गया है। उसकी तुलना श्रीराम से की गई है।

नरसिंहवर्मन के शासनकाल में ही चीनी यात्री ह्वेनसांग कांची की यात्रा पर आया था, और उसने महाबलीपुरम तथा कांची की समृद्धि का उल्लेख किया है।

इसके पश्चात इसका पुत्र महेन्द्रवर्मन द्वितीय शासक बना। वह मात्र 2 वर्षों तक शासक रहा किंतु उसके काल की किसी भी घटना का प्रमाण नहीं मिलता है।

## परमेश्वरवर्मन प्रथम

टिप्पणी

महेन्द्रवर्मन के पश्चात उसका पुत्र परमेश्वरवर्मन शासक बना। उसके समय में चालुक्य-पल्लव संघर्ष पुनः प्रारंभ हो गया था। इस समय चालुक्यों-गंगों और पांड्य शासकों ने मिलकर पल्लवों पर पुनः आक्रमण कर दिया। प्रारंभ में तो परमेश्वर वर्मन को कई बार निराशा हाथ लगी और वह भागने पर मजबूर हो गया, किंतु उसके बाद चालुक्यों की सेना को परास्त कर अतुल संपत्ति लेकर वापस चला गया। इसका उल्लेख हमें 'कूरम के लेख' में मिलता है। परमेश्वरवर्मन विद्या प्रेमी था, इसलिए उसने 'विद्याविनीत' की उपाधि धारण की थी।

## नरसिंहवर्मन द्वितीय

नरसिंहवर्मन द्वितीय, परमेश्वरवर्मन का पुत्र एवं उत्तराधिकारी था। उसके शासनकाल में युद्धों पर विराम लगा तथा साहित्य व कला की उन्नति हुई। नरसिंहवर्मन द्वितीय ने कांची में कैलाशनाथ का मंदिर, ऐरावतेश्वर मंदिर, तथा महाबलीपुरम मंदिर का निर्माण करवाया। विद्वानों में दंडिन, नरसिंहवर्मन की राजसभा में विराजमान था। उसने चीनी बौद्ध यात्रियों के लिए 'नागपट्टिनम्' में एक विहार का निर्माण करवाया था।

## परमेश्वरवर्मन द्वितीय

यह नरसिंहवर्मन द्वितीय के पश्चात राजा बना था। इसने दो-तीन वर्षों तक ही शासन किया था। चालुक्यों ने पुनः कांची पर आक्रमण कर दिया था, और इसी युद्ध में वह मारा गया। यह सिंहविष्णु परंपरा का अंतिम शासक था।

## नन्दिवर्मन द्वितीय

परमेश्वरवर्मन द्वितीय का न कोई पुत्र था और न कोई उत्तराधिकारी था, अतः उसकी मृत्यु के पश्चात कांची के लोगों ने समानांतर शाखा के राजकुमार नन्दिवर्मन द्वितीय को राजा बनाया। चालुक्य नरेश विक्रमादित्य तथा गंगश्री पुरुष से उसे पराजय मिली, इन्होंने कांची पर अधिकार कर लिया किंतु नन्दिवर्मन ने पुनः अपना राज्य वापस ले लिया। राष्ट्रकूट शासक ने नन्दिवर्मन पर आक्रमण किया और कांची पर अधिकार कर लिया, किंतु बाद में दोनों में संधि हो गई। राष्ट्रकूट शासक ने अपनी पुत्री का विवाह नन्दिवर्मन के साथ कर दिया। नन्दिवर्मन का शासनकाल संघर्षों से भरा था, वह प्रतापी सम्राट था, उसने आक्रांताओं से सदेव कांची की रक्षा की।

## दन्तिवर्मन

दन्तिवर्मन, नन्दिवर्मन का पुत्र तथा उसका उत्तराधिकारी था। वह उसके पश्चात शासक बना। इस काल में पल्लवों को राष्ट्रकूट तथा पांड्य राजाओं के आक्रमणों का सामना करना पड़ा। प्रतीत होता है कि पल्लव तथा राष्ट्रकूटों में मतभेद हो गया था। राष्ट्रकूट शासक गोविन्द तृतीय ने कांची पर आक्रमण कर उस पर अधिकार कर लिया और दन्तिवर्मन ने उसे 'कर' देना स्वीकार किया। इसके बाद पांड्य शासकों ने दन्तिवर्मन पर आक्रमण किया और कावेरी क्षेत्र पर अधिकार कर लिया। दन्तिवर्मन, वैष्णव था, उसके समय में ही आदि गुरु शंकराचार्य का अविर्भाव हुआ था।

टिप्पणी

## नन्दिवर्मन तृतीय

अब पल्लव साम्राज्य की बागडोर नन्दिवर्मन तृतीय के हाथ में आ गई थी, वह दन्तिवर्मन का पुत्र व उत्तराधिकारी था। उसके अभिलेखों से ज्ञात होता है कि पांड्य शासकों ने कांची पर आक्रमण किया था, किंतु उसने पांड्यों की सेना को कांची के द्वारमुख पर रोक दिया। गंग शासकों ने भी उसकी अधीनता स्वीकार की थी। राष्ट्रकूट नरेश अमोघवर्ष ने अपनी कन्या 'शंखा' का विवाह 'नन्दिवर्मन से कर मैत्री संबंध' स्थापित किया। अब नन्दिवर्मन का साम्राज्य पुनः कावेरी तक पहुंच गया। उसने अपने वंश की खोई हुई प्रतिष्ठा को पुनः प्राप्त किया।

## नृपतुङ्ग वर्मन

नन्दिवर्मन तृतीय का पुत्र नृपतुङ्ग वर्मन शासक बना। उसने अपने साम्राज्य को अक्षुण्ण बनाए रखा। वह विद्या प्रेमी शासक था।

## अपराजित

अपराजित पल्लव वंश का अंतिम शासक था। उसने अपने साम्राज्य को शत्रुओं से न केवल बचाया बल्कि उसे अक्षुण्ण भी रखा। उसके शासनकाल में गंगनरेश पृथ्वीपति तथा चोलनरेश आदित्य प्रथम तथा पांड्य नरेश वरगुण द्वितीय ने मिलकर आक्रमण किया। इस युद्ध में पृथ्वीपति मारा गया, पांड्यों की शक्ति समाप्त हो गई। अपराजित ने अपने साम्राज्य को बचा लिया किंतु चोल नरेश आदित्य प्रथम ने अपराजित की हत्या कर दी और तोण्डमंडलम् पर चोलों का अधिकार हो गया।

अभिलेखों में अपराजित के पश्चात नन्दिवर्मन चतुर्थ तथा कम्पवर्मन के नाम मिले हैं, जो अपने शासन को बचाने में सफल नहीं हो सके। दक्षिण भारत की सत्ता अब पल्लवों के हाथ से निकल कर चोलों के हाथ में आ गई।

इस प्रकार उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि पल्लव शक्तिशाली शासक थे, तथा उन्हें परास्त करके कभी सत्ता नहीं हथियाई जा सकी, अंत में हत्या करके ही आक्रांता को कांची पर अधिकार करना पड़ा। यह उनकी अद्वितीय शक्ति का उदाहरण है।

## पल्लवों की उपलब्धियां

पल्लव वंश के शासकों ने जिस शक्ति व सूझ-बूझ से अपना साम्राज्य विस्तार करके उसे संभाला, ठीक वैसे ही पल्लव काल में विद्या, साहित्य, कला की उन्नति हुई। यह काल जितना पल्लव शासकों की वीरता, अदम्य साहस के लिए जाना जाता है, उससे कहीं अधिक कला के विकास के लिए जाना जाता है। इस काल में कला चारों ओर फैल रही थी, इसका कारण पल्लव शासकों द्वारा विद्वानों को आश्रय देना था। पल्लव शासक स्वयं विद्यानुरागी व कला प्रेमी थे। यदि इस काल से युद्ध, विजय, साम्राज्य इत्यादि को हटा दें, फिर भी इस काल की महत्ता कम नहीं होती है।

## पल्लवकालीन कला

इस काल में पल्लव वंश के द्वारा कला अपने चरमोत्कर्ष पर पहुंच गई थी। पल्लव नरेशों का काल अपनी स्थापत्य कला के लिए प्रसिद्ध है। इस काल में निर्मित किए गए मंदिर

इत्यादि आज भी अपने समय के गौरवशाली इतिहास को प्रस्तुत करते हैं। इस काल के मंदिरों का निर्माण द्रविड़ शैली में किया गया। इस काल के मंदिरों का निर्माण विभिन्न चार प्रकार की शैलियों में किया गया है, इनका वर्णन निम्नलिखित है-

टिप्पणी

## महेन्द्रवर्मन प्रथम शैली

महेन्द्र शैली का प्रारंभ पल्लव शासक महेन्द्रवर्मन 610-640 के समय में हुआ था, इसलिए इसे महेन्द्र शैली के नाम से जाना जाता है। इस शैली की विशेषताएं निम्नलिखित हैं-

- मंडगपट्ट लेख से ज्ञात होता है कि इसमें ईंट, लकड़ी, लोहा, चूना आदि का प्रयोग न करके, एक नई शैली का निर्माण किया गया। इसे 'मंडप शैली' कहा जाता है, जिसके अंतर्गत गुहा मंदिरों का निर्माण किया गया।
- इस शैली में प्राकृत चट्टानों को उत्कीर्ण कर मंदिर बनाए गए, जिन्हें 'मंडप' कहा गया। स्तंभयुक्त बरामदे हैं, इनके पीछे की दीवार पर कक्ष तथा पार्श्व में गर्भगृह होता है।
- गर्भगृह में संबंधित देवता की मूर्ति स्थापित की जाती थी, मुख्य द्वार पर आलंकारिक रूप से बनाई गई द्वारपालों की मूर्तियां हैं।
- मंडप के सामने स्तंभ बनाए गए जो समान दूरी पर पंक्ति में हैं, स्तंभ सात फीट ऊंचे हैं।
- स्तंभ के तीन भाग हैं, आधार, शीर्ष एवं मध्य/मध्यभाग अष्ठकोणीय है।
- पंचपांडव मंडप में स्तंभ लगाए गए हैं जो कि अलंकृत हैं। इन पर कमल, फुल्लक, मकर, तोरण, तरंग, मंजरि आदि अंकित हैं।

## मामल्ल शैली

मामल्लपुरम में इस शैली का विकास हुआ। यह शैली नरसिंहवर्मन प्रथम के काल की है। इस शैली में 'मंडप' व 'एकाश्म मंदिर' आते हैं।

मंडपों में आदिवराह मंडप, महिषमर्दिनी मंडप, रामानुज मंडप प्रमुख हैं। ये मंडप आकारों में लघु हैं, इनके स्तंभ लंबे व पतले हैं, इनके शीर्ष पर पद्म फलक बने हुए हैं। इस शैली में महाबलिपुरम में दस मंडप बनाए गए हैं।

इस शैली का दूसरा प्रकार एकाश्म मंदिर है, जिन्हें 'रथ' कहा जाता है। प्राकृत चट्टानों को काटकर एकाश्म पूजागृहों की रचना की गई है। इन्हें ही रथ कहा गया है। इन मंदिरों का आकार-प्रकार अन्य मंदिरों से छोटा है। रथों में द्रोपदी रथ, नकुल-सहदेव रथ, अर्जुन रथ, भीम रथ आदि उल्लेखनीय हैं। इन सभी रथों पर संबंधित देवता की मूर्ति है। मामल्ल शैली अपनी मूर्ति कला के लिए भी प्रसिद्ध है।

## राजसिंह शैली

यह शैली पल्लव शासक नरसिंहवर्मन द्वितीय 'राजसिंह' द्वारा प्रेरित है। मंदिर इमारतों की तरह बनाए गए हैं, जिन्हें पाषाण, ईंट आदि की सहायता से बनाया गया है। इस शैली में दो मंदिर अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं-

टिप्पणी

'शोर मंदिर', महाबलीपुरम् के समुद्रतट पर स्थित, पल्लवों की कला प्रदर्शित करता है। यह मंदिर विशाल प्रांगण में बना है, जिसका द्वार पश्चिम में है। गर्भगृह वर्गाकार है, उसके ऊपर अष्टकोणिक शुंडाकार विमान कई तल्लों में है, यह तल्ले ऊपर को जाते-जाते छोटे हो गए हैं। गर्भगृह के चारों ओर प्रदक्षिणा पथ है, इसका शिखर सीढ़ीदार है, ऊपर स्तूपिका बनी है। दीवारों पर शाईल, स्कन्द, गज, गणेश की मूर्ति तथा सिंह की मूर्ति मनोहर हैं। ये मूर्तियां खोद कर बनाई गई हैं। यह द्रविड़ शैली का सबसे सुंदर उदाहरण है। दूसरा प्रमुख मंदिर 'कैलाशनाथ मंदिर' जो इस शैली का उत्कृष्ट उदाहरण है, यह पल्लवों की राजधानी कांची में स्थित है। इसका निर्माण ग्रेनाइट व बलुआ पत्थरों से किया गया है। मंदिर में उत्कीर्ण मूर्तियां अत्यंत शोभायमान हैं, जो शैव तथा शिव लीलाओं से संबंधित हैं।

इस शैली का प्रारंभ अवश्य ही 'राजसिंह' के द्वारा किया गया किंतु इसका उत्कर्ष महेन्द्रवर्मन द्वितीय के समय में हुआ।

## नन्दिवर्मन शैली

यह शैली नन्दिवर्मन द्वारा प्रारंभ की गई थी। इस शैली के मंदिर आकार में छोटे, प्रवेशद्वार पर स्तंभयुक्त मंडप और शिखर वृत्ताकार तथा बेसर शैली के बने हैं। इसमें कांची के मुक्तेश्वर, आरेगडम् का वडमल्लिश्वर, तिरूतैन का वीरटानेश्वर उल्लेखनीय हैं।

इस प्रकार पल्लव शासकों द्वारा स्थापत्य रुचि के कारण पल्लवकालीन कला आज सुप्रसिद्ध है, और उनकी कला के उत्कृष्ट नमूने आश्चर्यचकित करते हैं। बाद में इस कला का प्रभाव चोल व पांड्य कलाओं में भी देखने को मिलता है, बाद में यह कला दक्षिण-पूर्व एशिया तक पहुंच गई।

## पल्लवकालीन साहित्य

पल्लव कालीन साहित्य हमें प्राकृत तथा संस्कृत दोनों भाषाओं में मिलता है। इस काल का साहित्य विद्वानों व शासकों, दोनों के द्वारा लिखा गया। पल्लव शासकों की साहित्य में रुचि थी, और इन्होंने अपने दरबार में भारवि, दंडी जैसे साहित्यकारों को आश्रय दिया था। महेन्द्रवर्मन प्रथम द्वारा लिखा हास्यग्रंथ 'मत्तविलासप्रहसन' है, जिसमें बौद्ध भिक्षुओं पर व्यंग्य किया गया है। नरसिंहवर्मन द्वितीय की राजसभा में भारिव तथा दंडि जैसे लेखक थे, जिन्होंने दशकुमारचरितम् एवं काव्यादर्श की रचना की थी। शैव तथा वैष्णव संतों ने तमिल और संस्कृत भाषा का प्रसार किया था। कांची में एक महाविद्यालय भी था। कांची, विद्या का केंद्र भी था।

## पल्लवकालीन धर्म

पल्लव काल के शासक शैव तथा वैष्णव अनुयायी थे, और ये दोनों धर्म ही प्रधानता में थे। इसी काल में विभिन्न शैव संप्रदायों का जन्म दक्षिण भारत में हुआ। शंकराचार्य, संत हुए अद्य और तिरूज्ञान इसी समय में हुए थे। अलवार वैष्णव संतों के प्रचार में वैष्णव धर्म उत्थान की ओर अग्रसर था। ये धर्म के भावपक्ष पर व्याख्यान करते थे। शंकराचार्य

अद्वैतसिद्धांत के प्रवर्त्तक थे। पल्लव काल में विष्णु और शिव के अनेक मंदिर बनवाए गए। दोनों धर्मों के साहित्य का निर्माण हुआ।

टिप्पणी

## पल्लवकालीन शासन व्यवस्था

पल्लवकालीन शासक संस्कृति प्रेमी थे। इनके काल में कला की अभूतपूर्व प्रगति हुई है। इसके साथ-साथ दक्षिण में अपनी प्रभुता सिद्ध करने वाले पल्लव शासकों की शासन-व्यवस्था भी शक्तिशाली रही होगी। ये शासक धर्मानुयायी थे, इसलिए अभिलेखों में इनके द्वारा ग्रहण की गई धर्म महाराजाधिराज तथा 'धर्ममहाराजा की उपाधि' का पता चलता है। पल्लव शासक अपनी उत्पति ब्रह्म से हुई मानते हैं। ये दैवीय सिद्धांतों को मानते थे। इनकी शासन-पद्धति मौर्यों-गुप्तों के शासन प्रबन्ध से साम्यता रखती है। अपने साम्राज्य विस्तार से उन्होंने यह तो सिद्ध कर ही दिया है कि वे कुशल योद्धा तथा अतिपराक्रमी शासक थे। इनकी शासन-व्यवस्था भी उतनी ही दृढ़ तथा सुव्यवस्थित थी।

प्रशासन में राजा सर्वोपरि था। राज्य की समस्त शक्तियां राजा में निहित थीं। राजा की आज्ञा सभी के लिए मान्य थी। वह प्रशासन के निर्णय स्वयं लेता था, किंतु वह अपने मन्त्रियों से सलाह लेता था, इनकी एक परिषद हुआ करती थी, जिसे मंत्री परिषद् कहते थे, इसका उल्लेख हमें 'वेकुण्ठपेरूमाल' में मिलता है। प्रशासन का कार्य विभागों में विभाजित था, जिससे कार्य करने में सुगमता रहे, प्रत्येक विभाग का एक मुख्य अधिकारी था, जिसकी देख-रेख में विभाग का कार्य किया जाता था। अभिलेखों में मुख्य अधिकारियों के नाम इस प्रकार से मिलते हैं-

- **युवराज** (प्रांतीय शासक)
- **सेनापति**
- **राष्ट्रिक** (जिले का प्रधान अधिकारी)
- **अमात्य** (राजा का उच्च अधिकारी)
- **देशाधिकृत** (स्थानीय संरक्षक)
- **ग्रामभोजक** (गांव का मुखिया)
- **गौमिल्क** (सैनिक चौकियों का प्रधान)
- **दूतक** (संदेशवाहक)
- **संरजन्तक** (गुप्तचर)
- **भट मनुष्य** (सैनिक)
- **मंडपी** (कर एकत्र करने वाला)
- **नेयोजिक**
- **तीर्थक** (जलाशयों का अधिकारी)

विशाल साम्राज्य के कुशल संचालन हेतु साम्राज्य को प्रांतों में विभक्त किया गया था। प्रांतों को राष्ट्र या मंडल कहा जाता था, जिसका अधिकारी 'राष्ट्रिक' था। मुख्य रूप से यह पद अत्यंत महत्वपूर्ण था, इस पद को युवराज, राजवंश के व्यक्ति, मुख्य अधिकारी

टिप्पणी

अथवा अधीन राजा को सामंत रूप में सौंपा जाता था। बाद में यह पद वंशानुगत हो गया था। इनके पास अपनी सेना तथा निजी अदालतें भी होती थीं।

राष्ट्र में अनेक विषय होते थे। उप विषय में कोटम्नाडु और ग्राम आते थे। कोट्म के अधिकारी को देशांतिक तथा ग्राम अधिकारी को वपित्र कहा जाता था। ग्राम के अधिकारी को मुखिया कहा जाता था। ग्रामों का संचालन या नेतृत्व मुटक या ग्राम के द्वारा किया जाता था। ग्राम सभा को स्थानीय, न्याय, रक्षा और सार्वजनिक कार्य, करने का अधिकार था। ग्राम सभा खुले में, वृक्षों के नीचे की जाती थी। इस स्थान को 'मन्रम्' कहा जाता था। स्वशासी वर्ग तथा संगठन जनता के दैनिक जीवन से जुड़ी बातों पर ध्यान रखते थे। हर वर्ग का अपना लचीला सा विधान था। इसी उपलक्ष्य में महासभा की बैठक वर्ष में दो बार होती थी। उच्चस्तरीय इकाइयों के अतिरिक्त प्रदेश में नानादेसी, मणिग्राम, पंचशत जैसी व्यापारिक महासभा, ठठेर, तेली, जुलाहों का संगठन, छात्र, पुजारी, संन्यासियों के संघ इत्यादि स्वतंत्र रूप से कार्य करते थे। दो प्रकार की ग्राम सभाओं का उल्लेख मिलता है, जिसमें प्रथम है 'उर' जिसमें गांव के सभी वर्गों के लोग शामिल होते थे, ऐसे गांवों में मात्र ब्राह्मण ही रहते थे जिनका संपूर्ण भूमि पर स्वामित्व था। दूसरा- 'नगरम्' इसमें व्यापारियों की प्रधानता थी, जिसे नगरम् कहा जाता था। ग्राम दो प्रकार के होते थे, 'ब्रह्मदेय' इन ग्रामों में ब्राह्मणों की आबादी कम होती थी, इनसे किसी प्रकार का कर नहीं लिया जाता था, सामान्य- इसमें सभी जातियों के लोग रहते थे, उन्हें राजा को छठे या दसवें भाग तक कर देना पड़ता था। पल्लव अभिलेखों में 18 प्रकार के 'करों' का उल्लेख किया गया है। इन करों में मार्ग शुल्क, मकान शुल्क, बाजार शुल्क, अन्य शुल्क इत्यादि थे।

पल्लवों की अपनी शक्तिशाली सैन्य शक्ति भी थी, जिसमें अश्वारोही, हस्ति सेना, पैदल सैनिक थे। अभिलेख से पल्लवों की सेना का दूसरा महत्वपूर्ण अंग जल-सेना का भी उल्लेख मिलता है। महाबलिपुरम तथा नेगपत्तम मुख्य जल सेना के केन्द्र थे, यह व्यापार से संबंधित कार्य भी करते थे, उस समय दक्षिणी-पूर्वी-एशिया से भारत का व्यापार था, सम्भव है जल सेना इस व्यापार में मददगार थी।

## पल्लव वंश का पतन

टिप्पणी

पल्लव वंश के पतन के मुख्य कारण इस प्रकार हैं-

1. **पांड्यों की शक्ति का प्रभाव**- 730 ई. में राजसिंह प्रथम सिंहासन पर बैठा। उसने शासन संभालने के पश्चात पल्लवों शत्रुओं को एकजुट करके नन्दिवर्मन पर आक्रमण किया और नन्दिपुर दुर्ग में उसे बंदी बनाकर दुर्ग पर अधिकार कर लिया। इस घटना की पुष्टि वेल्वीकुडी दानपत्र और उदयेन्द्रिम् दानपत्रों से होती है। किंतु शीघ्र ही उसके सामंत उदयचंद्र ने अपनी शक्ति लगाकर उसे मुक्त कराया।
2. **चोलों का आक्रमण**- जिस समय पांड्य शासक राजसिंह ने पल्लव शासक नन्दिवर्मन पर आक्रमण किया था, उसी समय चोलों ने भी नन्दिवर्मन पर आक्रमण किया, जिसकी पुष्टि उदयेन्द्रिम् दानपत्र से होती है।
3. **चालुक्य आक्रमण**- 740 ई. में चालुक्य शासक विक्रमादित्य ने अपने मित्र के विरुद्ध एक विजाल सेना के साथ पल्लव राज्य पर आक्रमण किया और नन्दिवर्मन को कांची से भगा दिया। किंतु कुछ समय पश्चात नन्दिवर्मन ने पुनः कांची को प्राप्त कर लिया। किंतु अब कांची पर विक्रमादित्य का शासन था। उसने नन्दिवर्मन द्वारा संचालित मंदिर को दान दिया। केंदूर ताम्रपत्र में विक्रमादित्य द्वारा दिए गए दानों का उल्लेख मिलता है।
4. **राष्ट्रकूटों का आक्रमण**- पल्लव पर चोल व पांड्य शासकों के आक्रमण के समय इस स्थिति का लाभ राष्ट्रकूट शासक दन्तिदुर्ग ने भी उठाया। दन्तिदुर्ग का उपनाम 'वैरमेग' था। इसका उल्लेख इलौर अभिलेख तथा गोविन्द तृतीय के बेगूम्रा दानपत्र में उल्लिखित है।

केन्दूर तथा उदयेन्दिरम् दानपत्र में इन सभी के साथ आक्रमण करने का उल्लेख मिलता है। जिससे स्पष्ट है कि पांड्य, चोल, तथा केरल के राजाओं के आक्रमण से पल्लव शासक त्रस्त थे। नन्दिवर्मन के शासनकाल के 63वें अभिलेख से ज्ञात होता है कि 730 ई. से 800 ई. तक उसका शासन था। यह स्पष्ट है कि वह अपने शासन के अंत तक व पल्लव साम्राज्य को सुरक्षित रखने के लिये संघर्षरत था।

### अपनी प्रगति जांचिए

1. पल्लव वंश का वास्तविक संस्थापक किसे माना जाता है?

   (क) बप्पदेव (ख) सिंह विष्णु

   (ग) वीरवर्मन (घ) शिवस्कंदवर्मन

2. नरसिंहवर्मन प्रथम किस राजा का पुत्र था?

   (क) महेन्द्रवर्मन प्रथम (ख) परमेश्वरवर्मन

   (ग) नन्दिवर्मन (घ) दन्तिवर्मन

## 2.3 राष्ट्रकूट

टिप्पणी

चालुक्य वंश की मुख्य शाखा के पतन के बाद आठवीं शताब्दी के मध्य राष्ट्रकूट वंश का उदय हुआ। इस वंश की उत्पत्ति तथा मूल स्थान के बारे में मतभेद हैं। राष्ट्रकूटों ने अपने अभिलेख में स्वयं को यदुवंशी बताया है। इसी प्रकार अनेक साक्ष्य इनकी उत्पत्ति के विषय में अलग-अलग मत प्रस्तुत करते हैं।

### राष्ट्रकूट शासक

इंद्र द्वितीय के पुत्र दंतिदुर्ग ने राष्ट्रकूट वंश की राजनीतिक सत्ता की स्थापना की। ऐलोरा अभिलेख से ज्ञात होता है कि दंतिदुर्ग ने चालुक्यों को परास्त किया और मालवा, कौशल, कलिंग आदि को जीता, दंतिदुर्ग ने 756 ई. तक शासन किया।

### कृष्ण प्रथम

दंतिदुर्ग के पश्चात उसका चाचा कृष्ण प्रथम शासक बना जिसने लगभग 773 ई. तक शासन किया। उसने चालुक्यों की शक्ति को पूरी तरह क्षीण कर दिया और कोंकण पर अधिकार कर लिया तथा गंग नरेश को पराजित किया। कृष्ण प्रथम ने अपने पुत्र गोविंद को वेंगी के चालुक्यों पर आक्रमण करने के लिए भेजा। वेंगी नरेश पराजित हुआ और उसने अपनी पुत्री शील भट्टारिका का विवाह राजकुमार ध्रुव से कर दिया। विश्व प्रसिद्ध एलोरा का मंदिर कृष्ण प्रथम ने ही बनवाया था।

### गोविंद द्वितीय

कृष्ण प्रथम के पश्चात गोविंद द्वितीय राजा बना, परंतु उसने राज्य का भार अपने भाई ध्रुव को सौंप दिया और स्वयं भोगविलास में लिप्त हो गया।

### ध्रुव

ध्रुव ने परिस्थिति का लाभ उठाया और 780 ई. तक शासन किया। उसने गंग नरेश शिवार द्वितीय और पल्लव नरेश दंतिवर्मन को पराजित किया। अपनी इन विजयों से प्रोत्साहित होकर उसने उत्तर की ओर अपना अभियान बढ़ाया। उसने प्रतिहार शासक वत्सराज को पराजित किया और राजस्थान तक खदेड़ा। उसके राधनपुर तथा संजन अभिलेखों से ज्ञात होता है कि उसने इंद्रायुद्ध तथा पाल शासक धर्मराज को पराजित किया।

### गोविंद तृतीय

ध्रुव के पश्चात उसका पुत्र गोविंद तृतीय राजा बना। उसे जगतुंग के नाम से भी जाना जाता है। उसने 814 ई. तक शासन किया। गोविंद ने सभी विद्रोहों को सफलतापूर्वक दबा दिया और उत्तर में विजयाभियान किया। उसने प्रतिहार शासक नागभट्ट द्वितीय, कन्नौज राजा चक्रायुद्ध और धर्मपाल को पराजित किया। उसने चोल, गंग, पांडय तथा केरल के राजाओं के संगठन को पराजित किया। गोविंद तृतीय ने कांची नरेश दंतिवर्मन और चालुक्य शासक विजयादित्य को पराजित कर अपना राज्य दक्षिण में कांची से लेकर उत्तर मालवा तक विस्तृत कर लिया।

टिप्पणी

## अमोघवर्ष

गोविंद तृतीय के बाद उसके पुत्र अमोघवर्ष ने 814 ई. से 878 ई. या 880 ई. तक शासन किया। आरंभिक दिनों में गुजरात के राज्यपाल कर्क ने उसके संरक्षक के रूप में कार्य किया। इस कारण अनेक विद्रोह उठ खड़े हुए और मंत्री उसके विरुद्ध हो गए। गंगदेश स्वतंत्र हो गया। विजयादित्य ने अमोघवर्ष पर चढ़ाई कर दी और उसे अपदस्थ कर दिया, किंतु बाद में 830 ई. में अमोघवर्ष ने चालुक्य नरेश विजयादित्य को परास्त किया, परंतु विजयादित्य के सेनापति पांडुरंग ने पुनः वेंगी पर अधिकार कर लिया। अमोघवर्ष एक दुर्बल शासक था। उसने अपने अंतिम दिनों में राजकाज युवराज को सौंप दिया और वह बहुधा मनोयोग में लीन हो जाया करता था। लगभग चौंसठ वर्ष शासन करने के बाद वह मृत्यु को प्राप्त हुआ।

## कृष्ण द्वितीय

अमोघवर्ष प्रथम के बाद कृष्ण द्वितीय ने 914 ई. तक शासन किया। उसको गंग, कलिंग, अंग, गुर्जर, लाट कोलंब, मगध के विरुद्ध सफलता मिली, लेकिन विजयादित्य ने उसको पराजित किया। कलुचंबरु अभिलेख से ज्ञात होता है कि चालुक्य वंशी भीम ने भी कृष्ण द्वितीय को परास्त किया था, लेकिन उसे सफल नरेश नहीं कहा जा सकता।

## इंद्र तृतीय

कृष्ण द्वितीय के बाद इंद्र तृतीय (914-28 ई.) राजा बना। उसने नित्यवर्ष की उपाधि धारण की। उसकी कन्नौज विजय खंभात के दानपात्र में वर्णित है। इसके बाद अमोघवर्ष द्वितीय, गोविंद चतुर्थ एवं अमोघवर्ष तृतीय कमजोर शासक हुए।

## कृष्ण तृतीय

कृष्ण तृतीय ने राष्ट्रकूटों की प्रतिष्ठा को पुनः स्थापित किया और गंगराज शचमल्ल को पराजित किया। देवली दानपात्र से विदित होता है कि उसने उत्तर भारत में भी विजय प्राप्त की थी। उसने कांची और तंजौर पर अधिकार किया। आटकूट अभिलेख उसकी चोल विजय का प्रमाण है। इसी प्रकार कर्हद अभिलेख से ज्ञात होता है कि उसने पांड्य, केरल तथा लंका के शासकों को भी पराजित किया। कृष्ण तृतीय राष्ट्रकूट वंश का अंतिम प्रभावशाली शासक था, कृष्ण तृतीय के बाद उसका भाई शोट्टिग 967 ई. में उसका उत्तराधिकारी बना। उसके समय में परमार राजा सीयक ने राष्ट्रकूटों पर आक्रमण किया और मान्यखेत को खूब लूटा। इस अपमान को खोट्टिग बर्दाश्त न कर सका और उसने अपने प्राण गंवा दिए। उसकी मृत्यु के बाद राष्ट्रकूट वंश का अंतिम शासक कर्क द्वितीय शासक बना, जिसे वर्तवाडि के सामंत तैलप द्वितीय ने हराया और सिंहासन पर अधिकार कर लिया। इस प्रकार राष्ट्रकूट वंश का अंत हो गया।

टिप्पणी

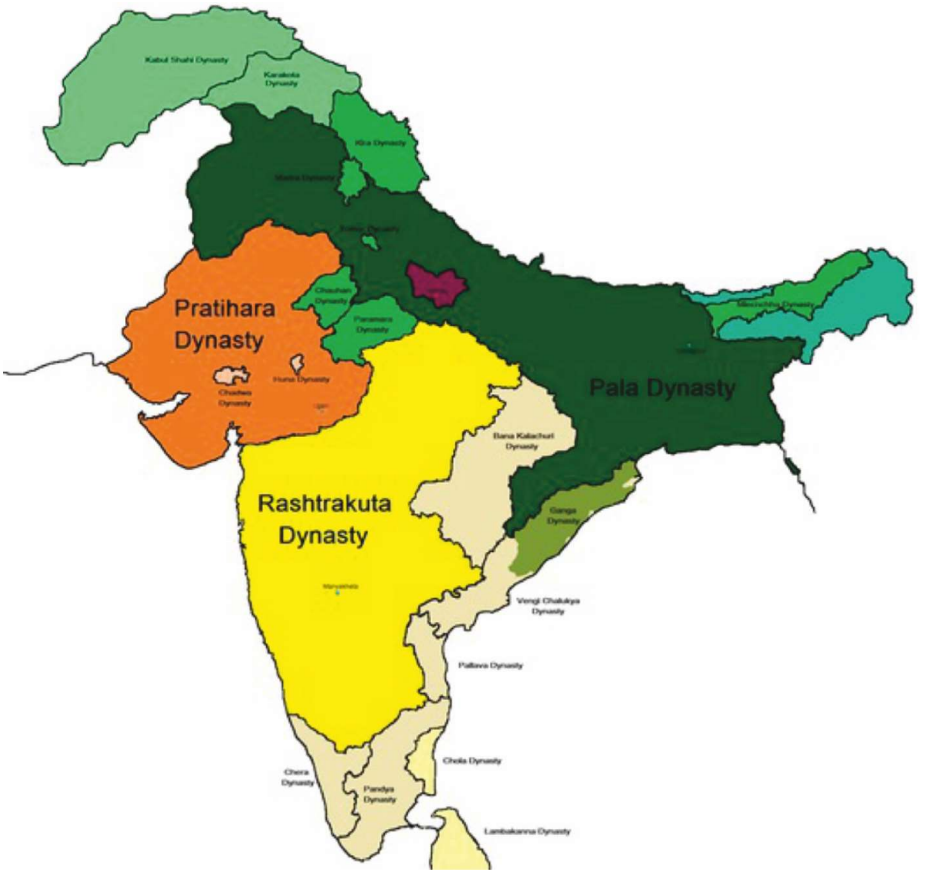


## राष्ट्रकूट : सभ्यता, संस्कृति एवं कला

राष्ट्रकूटों के काल में शिक्षा, साहित्य एवं कला के क्षेत्र में बहुत प्रगति हुई है।

**शिक्षा एवं साहित्य**–राष्ट्रकूटों ने शिक्षा की समुचित व्यवस्था की। शिक्षा के सुचारू रीति से संचालन की ओर भी विशेष ध्यान दिया। इस काल के राजा तथा धनी वर्ग दोनों ही शिक्षण संस्थाओं को दान दिया करते थे। इन दिनों कन्हेरी में एक बौद्ध विहार था जिसे नूतन ग्रंथों को खरीदने के लिए भद्रविष्णु ने बहुत सा धन दान के रूप में दिया था। शिक्षण संस्थानों को द्रव्य तथा भूमि दोनों ही रूपों में दान दिया जाता था। साल्तोगी अभिलेख में एक ऐसे विद्यालय का उल्लेख है जिसका व्यय सैकड़ों एकड़ भूमि की आय से चलता था। इस विद्यालय में 27 छात्रावास थे जिससे यह स्पष्ट है कि विद्यार्थियों के निवास के लिए भी समुचित व्यवस्था की जाती थी। विहार तथा मंदिर दोनों ही शिक्षण संस्थाओं का कार्य किया करते थे और उनमें अपने-अपने धर्म की शिक्षा-दीक्षा दी जाती थी।

राष्ट्रकूट नरेश बड़े ही विद्यानुरागी, साहित्य-प्रेमी और विद्वानों तथा साहित्यकारों के आश्रयदाता थे। फलतः उनके संरक्षण तथा प्रोत्साहन में साहित्य का बड़ा विकास हुआ।

राष्ट्रकूट कालीन नरेश न केवल साहित्यकारों के संरक्षक तथा आश्रयदाता थे वरन उनमें से कतिपय स्वयं भी उच्च कोटि के विद्वान तथा साहित्यकार थे और ग्रंथ-रचना में उनकी विशेष अभिरुचि थी। उदाहरणार्थ, राष्ट्रकूट नरेश अमोघवर्ष एक उच्चकोटि का साहित्यकार था और उसने 'कविराजमार्ग' नामक ग्रंथ कन्नड़ भाषा में दंडिन् के काव्यादर्श के आधार पर लिखा था। अमोघवर्ष के गुरु जिनसेन ने भी 'हरिवंश' तथा 'पार्श्वाभ्युदय' नामक ग्रंथों की

रचना की थी। इसी सम्राट के काल में शाक्तायन ने 'अमोघवत्ति' नामक ग्रंथ लिखा था। महावीराचार्य नामक एक अन्य विद्वान का भी इसी समय आविर्भाव हुआ था जिसने 'गणित-सारसंग्रह' नामक ग्रंथ की रचना की थी। भंडारकर के मतानुसार राष्ट्रकूट नरेश इंद्र तृतीय के शासनकाल में त्रिविक्रम नामक एक विद्वान हुआ था जिसने 'नालचम्पू' नामक ग्रंथ की रचना की। कृष्ण तृतीय के शासन काल में हलायुध नामक विद्वान ने 'कविरहस्य' नामक ग्रंथ की रचना की। कन्नड़ भाषा का आदि कवि पम्पा भी इसी युग की विभूति था। आदि 'विक्रमार्जुनविजय' इसकी अनुपम कृति है। कवि पोन्ना का भी आविर्भाव इसी काल में हुआ था जिसने संस्कृत तथा कन्नड़ दोनों भाषाओं में साहित्य की रचना की और इसी से उसे 'उभयकवि चक्रवर्तिन' की उपाधि से अलंकृत किया गया। उसने 'शांति पुराण:' नामक ग्रंथ लिखा था।

टिप्पणी

**कला–** कला के क्षेत्र में राष्ट्रकूटों का अपना योगदान रहा है। उनके समय के स्मारक, एलोरा, एलिफेंटा, जोगेश्वर आदि स्थानों में विद्यमान हैं। ए. कनिंघम धूमर (राजपूताना) की गुहाओं को भी इसी समय का मानते हैं। सबसे अधिक स्मारक एलोरा से प्राप्त होते हैं। उनमें से मुख्य हैं–रावण की खाई (गुहा नं. 14), दशावतार (गुहा नं. 15), कैलाश (गुहा नं. 16), रामेश्वर (गुहा नं. 21) और धूमरसेना अथवा सीता नहान (गुहा न. 29)। ये ब्राह्मण धर्म की गुहाओं की शायद सर्वोत्तम प्रतिनिधि हैं। इन गुहाओं से मुख्यत: तीन विभिन्न प्रकार की शैलियों का पता चलता है। प्रथम प्रकार की शैली दशावतार के मंदिर में देखने को मिलती है। इसके महाकक्ष में स्तंभ है और वह बौद्ध विहार के अनुसरण में खोदी गई है। दूसरी प्रकार की शैली प्रथम प्रकार की शैली से मिलती-जुलती है। परंतु इसमें मुख्य वेदी के चारों ओर प्रदक्षिणा पथ है। तीसरी प्रकार की शैली का प्रतिनिधित्व 'धूमरसेना' करती है। इसका महाकक्ष क्रास के आकार का है तथा इसमें एक से अधिक प्रवेश द्वार तथा आंगन भी हैं। कैलाश मंदिर इस समय की कला का अद्‌भुत नमूना है। पहाड़ में खोदे गए गुहा मंदिरों का निर्माण संभवत: पल्लवों की राजधानी कांची के कलाकारों ने किया था। इसका विमान एक समानांतर चतुर्भुज के आकार का है। मंदिर के अंदर तक जाने के लिए सोपान है। मंदिर के ऊपर 28.5 मी. का शिखर है। मंदिर की प्रमुख इमारत में गर्भगृह है जिसके आगे एक स्तंभ युक्त मंडप है और दोनों को जोड़ते हुए एक अंतराल। ब्राह्मण धर्म की गुहाओं के अलावा जैन धर्म की गुहाएं भी हैं। नं. 30 से 34 तक के गुहा मंदिर इसी समय के हैं। गुहा 32 विशेष उल्लेखनीय है। इसकी अंदर की छत पर एक विशाल सुंदर कमल-पुष्प उत्कीर्ण है, एक यक्षणी, आम्र वृक्ष के नीचे सिंह पर बैठी हुई है। गुहा दो मेंजिली है। इन जैन गुहाओं के साथ ही भारत के पहाड़ी गुहा मंदिरों का इतिहास खत्म हो जाता है। इन सभी गुहाओं का वैशिष्ट यह है कि बौद्ध गुहा मंदिरों से एकदम भिन्न हैं। इनके स्तंभों का आकार तथा बनावट स्थापत्य की एक अलग ही पीठ का प्रतिनिधित्व करती है। इन गुहाओं के प्रवेश द्वार पर कोई अलंकरण नहीं है। इस समय की ब्राह्मण धर्म की गुहाएं एलिफेंटा में हैं। परंतु आकार और बनावट में छोटी हैं। यहां तीन-तीन प्रवेश द्वार हैं और प्रत्येक के सामने एक आंगन है। पैनल 4 में भगवान शिव की तीन चेहरों वाली महेश मूर्ति है। मध्य का चेहरा सौम्य, ध्यान मग्न और तत्पुरुष है। बायीं ओर का चेहरा शिव का रौद्र रूप दर्शाता है, गले में सर्प और दांत बाहर हैं। दायीं ओर का चेहरा शिव का सौंदर्य रूप है–नारी जैसा

टिप्पणी

कमनीय। पैनल 2 में शिव का उमा-महेश्वर, पैनल 3 में अर्धनारीश्वर। पैनल 8 में नटराज और 9 में योगेश्वर रूप है। पैनल 7 में शिव को असुर का वध करते दिखाया गया है और पैनल एक में रावण को कैलाश पर्वत उठाते दिखाया गया है। इसी समय की ब्राह्मण गुहाएं जोगेश्वर में भी हैं। कुछ विद्वानों के अनुसार औरंगाबाद की गुहाएं राष्ट्रकूटों के समय की हैं।

स्थापत्य कला के समान ही इस समय की मूर्ति कला की भी अपनी एक विशेषता है। मूर्तियों में भारीपन, विशालता तथा शक्ति की अभिव्यक्ति है और यह अभिव्यक्ति बड़ी संतुलित तथा शरीर के अंगों के मोड़ एवं भाव-भंगिमाओं के अनुपात में है। एलोरा ओर रामेश्वर में यक्षिकाओं की मूर्तियां बहुत ही कोमलता लिए हुए हैं। रावण का कैलश पर्वत को हिलाना, शिव पार्वती का विवाह, शिव का तांडव आदि की सुंदरता हमेशा के लिए आनंददायक है। कैलाश गुहा में कुछ रामायण और महाभारत के दृश्यों का अंकन है जिसका प्रभाव इंडोनेशिया की कला पर परिलक्षित होता है। एलोरा की जैन गुहाओं की शांतिनाथ और पार्श्वनाथ की मूर्तियां बहुत ही भव्य हैं। एलिफेंटा की मूर्तियां मूर्तिकला का सर्वोत्तम कौतुक हैं। त्रिमूर्ति अपनी सुंदरता के लिए विश्व-विख्यात है। इसमें शिव के 3 मुख दिखाए गए हैं। उन मुखों पर नैसर्गिक शांति और आध्यात्मिकता विराजमान है। औरंगाबाद की गुहाओं की मूर्तियां गतिशीलता लिए हुए हैं।

कुछ स्थलों पर चित्रकारी के नमूने भी मिलते हैं। कैलाश मंदिर के बरामदे तथा भित्ति तथा गुहा 32 की छत एवं एलिफेंटा के महेश मूर्ति मंदिर की छत पर चित्रकारी है।

### अपनी प्रगति जांचिए

3. राष्ट्रकूट वंश का उदय कब हुआ?

   (क) छठी शताब्दी के मध्य (ख) सातवीं शताब्दी के मध्य

   (ग) आठवीं शताब्दी के मध्य (घ) नौवीं शताब्दी के मध्य

4. विश्वप्रसिद्ध एलोरा का मंदिर किसने बनवाया था?

   (क) गोविंद द्वितीय (ख) कृष्ण प्रथम

   (ग) ध्रुव (घ) अमोघवर्ष

## 2.4 कल्याणी के चालुक्य

दक्षिण भारत के इतिहास में चालुक्य वंश का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। छठी शताब्दी से लगभग 300 वर्षों तक दक्षिण भारत का इतिहास मुख्यतः तीन शक्तियों के संघर्ष का इतिहास है- वातापी के चालुक्य, कांची के पल्लव तथा मदुरा के पाण्ड्य।

इनकी उत्पत्ति के विषय में विद्वानों में मतभेद है। फिर भी विद्वानों द्वारा प्रस्तुत मतों का उल्लेख करना आवश्यक है। ये मत निम्नलिखित हैं-

1. अनुश्रुतियों में वर्णित है कि इनके पूर्व पुरुषों का जन्म हरीति द्वारा अर्ध्यदान के समय उनके जलपात्रों से हुआ।

2. स्मिथ महोदय के अनुसार, चालुक्यों को गुर्जरों की 'चक' नामक शाखा से जोड़ते हुए कहते हैं कि ये राजपूताना से दक्षिण की ओर गए थे।
3. विल्हण के अनुसार, इनका जन्म उस तेजस्वी शूर से हुआ है जिसे पृथ्वी का अधर्म नष्ट करने के लिए ब्रह्मा ने अपनी हथेली से उत्पन्न किया था।
4. अभिलेखों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि ये पहले अयोध्या में रहे थे और बाद में दक्षिण चले गए थे।
5. चीनी यात्री ह्वेनसांग के अनुसार पुलकेशिन क्षत्रिय थे।

टिप्पणी

निष्कर्ष रूप में यह माना गया है कि इनके पूर्वज उत्तर भारत के किसी क्षत्रिय वंश के थे, जो पहले राजस्थान गए और गुप्तों के पतन के पश्चात कर्नाटक चले गए। गुप्त साम्राज्य के पश्चात जिन क्षत्रिय राज्यों का गठन हुआ उनमें चालुक्यों का भी महत्वपूर्ण स्थान है।

**चालुक्यों का वंश वृक्ष**

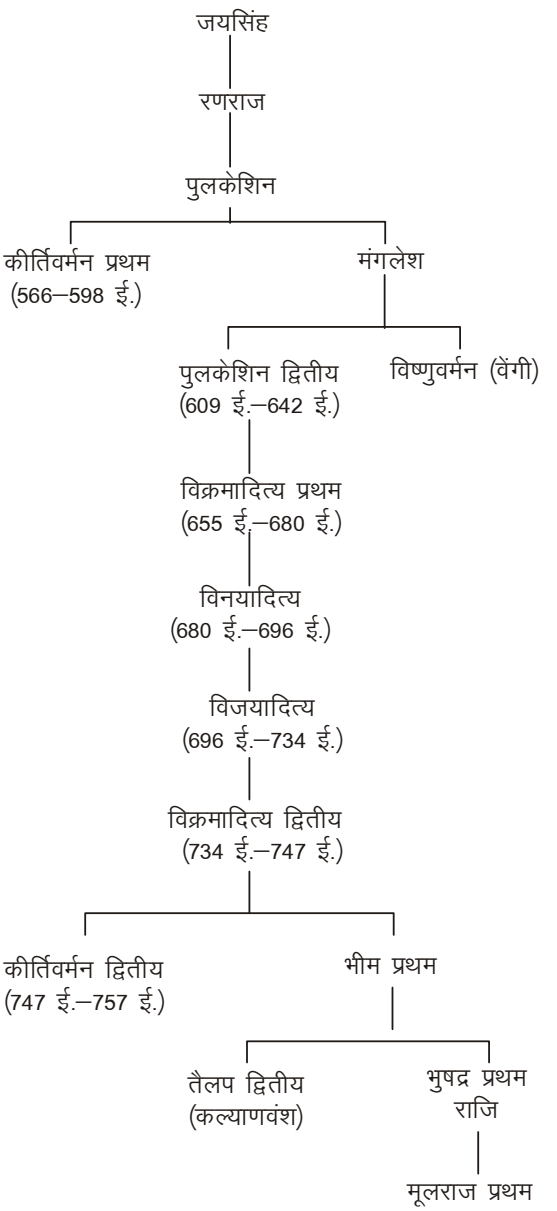

टिप्पणी

## चालुक्य शासक

चालुक्य वंश का प्रथम शासक जयसिंह था, उसने राष्ट्रकूटों को पराजित किया तथा महाराष्ट्र का क्षेत्र प्राप्त किया। कदंबों से भी युद्ध करके अपना छोटा सा राज्य स्थापित किया। वह युद्ध प्रिय शासक था। इसके पश्चात उसका पुत्र रणराज शासक बना। इसके विषय में हमें कोई जानकारी प्राप्त नहीं है।

चालुक्य वंश का क्रमिक इतिहास हमें 535 ई. से मिलता है। जिसमें सर्वप्रथम उल्लेख पुलकेशिन प्रथम का किया गया है। अभिलेखों व अन्य साक्ष्यों से प्राप्त तथ्यों के आधार पर आगे के चालुक्य नरेशों का वर्णन किया जाएगा।

## पुलकेशिन प्रथम

पुलकेशिन प्रथम रणराज का पुत्र था। इसने बीजापुर में स्वतंत्र सत्ता स्थापित की और चालुक्य राजवंश की सत्ता स्थापित की। बादामी को जीतकर उसे अपनी राजधानी भी बनाया था। बादामी में प्राप्त लेख से पुलकेशिन की तिथि 543 ई. ज्ञात होती है। वह अत्यंत शक्तिशाली शासक था, उसके पौरुष की तुलना पौराणिक शासक ययाति से की जाती है। उसमें रणविक्रम, सती आश्रय, श्री पृथ्वीवल्लभ महत्वपूर्ण है। वह विद्वानों का संरक्षक था, वह स्वयं भी महाभारत, रामायण, पुराणों के इतिहास का ज्ञाता था। उसके द्वारा हिरण्यगर्भ, अश्वमेध, तथा बाजपेय यज्ञों के संपादन के भी साक्ष्य मिलते हैं।

## कीर्तिवर्मन प्रथम

कीर्तिवर्मन प्रथम, पुलकेशिन प्रथम का पुत्र था। अपने पिता की मृत्यु के पश्चात वह चालुक्य वंशीय नरेश बना। वह अपने पिता के समान वीर तथा महत्वाकांक्षी था। चालुक्य अभिलेखों से ज्ञात होता है कि कीर्तिवर्मन ने बंग, अंग, कलिंग, मगध, मद्र गंग, केरल, द्रमल, मूशक, पाण्ड्य, चोलीय, वैजंती मौर्य, कदंब, नल इत्यादि पर विजय प्राप्त की थी। अभिलेखों से ज्ञात होता है कि उसने अधिकांशत: दक्षिणी भारत में विजय प्राप्त करके साम्राज्य किया था, उसने महाराष्ट्र, मैसूर, और मद्रास के राज्यों पर अधिकार किया था। उसके द्वारा बहुस्वर्णा तथा अग्निष्ठटोम यज्ञों का संपादन किया गया था। उसकी राजधानी में नवीन मंदिरों तथा भवनों की अधिकता मिलती है। उसने अनेक उपाधियां भी धारण की थी।

## मंगलेश

टिप्पणी

मंगलेश ने कीर्तिवर्मन के नाबालिग पुत्र की हत्या करके साम्राज्य पर अधिकार कर लिया था। मंगलेश कीर्तिवर्मन का भाई था। मंगलेश मालवा, खानदेश, गुजरात पर अधिकार करने के लिए लालायित था। इस विशाल साम्राज्य का स्वामी, मंगलेश का समकालीन कलचुरी शासक बुद्धराज था, अतः मंगलेश को बुद्धराज से काफी समय तक संघर्ष करना पड़ा। बाद में खानदेश तथा आस-पास के राज्यों पर विजय प्राप्त करने में मंगलेश सफल हुआ। उसने पूर्वपयोधि और पश्चिमी समुद्रतट के बीच के प्रदेशों पर अधिकार किया। उसने रत्नगिरी के रेवतीद्वीप को भी अपने अधीन किया।

मंगलेश ने अपने शासनकाल में ही पुत्र सत्याश्रय ध्रुवराज इंद्रवर्मन को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया था, किंतु उसके बड़े भाई के दूसरे पुत्र पुलकेशिन द्वितीय को यह रास नहीं आया, अतः उसने विद्रोह कर दिया। मंगलेश मारा गया (609 ई.) और पुलकेशिन द्वितीय शासक बना।

## पुलकेशिन द्वितीय

कीर्तिवर्मन का पुत्र पुलकेशिन द्वितीय था जिसने अपने चाचा से विद्रोह करके सिंहासन प्राप्त किया। पुलकेशिन ने जिस समय विद्रोह किया था, उस समय इस गृहयुद्ध का संपूर्ण लाभ अधीनस्थ सामंतों तथा आंतरिक शत्रुओं ने उठाया इसलिए सत्ता में आते ही पुलकेशिन को धैर्य, साहस, दृढ़ता तथा सफलता के साथ परिस्थितियों का सामना करना पड़ा। एहोल अभिलेख में उस काल की परिस्थितियों का वर्णन किया गया है। यह अभिलेख कवि रविकीर्ति द्वारा पद्यबद्ध किया गया है। उसका सबसे महत्वपूर्ण उद्देश्य अब यह था कि अपने प्रतिद्वंद्वियों को समाप्त कर राज्य में शांति की स्थापना करे।

## पुलकेशिन द्वितीय द्वारा साम्राज्य विस्तार-

- उसने सर्वप्रथम गोविंद तथा आप्यायिक को असफल करने के लिए कूटनीति का सहारा लिया। ये दोनों उसके साम्राज्य पर आक्रमण करते हुए भीमा नदी तक आ पहुंचे थे। पुलकेशिन ने गोविंद से मैत्री की और आप्यायिक को हराने में सफलता प्राप्त की।

टिप्पणी

- उसकी शक्ति, व साम्राज्य विस्तार के पश्चात गंग शासक ने अपनी पुत्री का विवाह पुलकेशिन से संपन्न किया। अब गंग शासक भी पुलकेशिन के मित्र बन गए थे।
- अब पुलकेशिन ने कदंब वंश की राजधानी वनवासी पर आक्रमण किया और उसे आत्मसमर्पण के लिए मजबूर होकर पुलकेशिन की अधीनता स्वीकार करनी पड़ी।
- इस समय उत्तरी कोंकण पर मौर्य शासक शासन कर रहे थे। इन पर आक्रमण करके पुलकेशिन द्वितीय ने राजधानी पुरी को अपने अधिकार में ले लिया। मौर्यों ने पराजित होकर उनकी अधीनता स्वीकार कर ली।
- इस समय उत्तरी भारत पर सबसे शक्तिशाली शासक हर्षवर्धन शासन कर रहा था। गुर्जर, मालव, तथा लाट हर्ष की बढ़ती हुई शक्ति से भयभीत थे, अतः इन्होंने पुलकेशिन द्वितीय की अधीनता स्वीकार कर ली थी।
- हर्षवर्धन से पुलकेशिन द्वितीय के युद्ध की भी घटना मिलती है। इस युद्ध का कारण हर्ष के शत्रु 'गुरनरपति दद्' की पुलकेशिन से मित्रता थी। हर्ष और पुलकेशिन दोनों वल्लभी राज्य पर अधिकार करना चाहते थे, अतः युद्ध अवश्यंभावी था। यह एकमात्र युद्ध है जिसमें हर्ष को पराजय का सामना करना पड़ा। एहोल अभिलेख में इस विजय का विस्तृत वर्णन किया गया है। यह युद्ध संभवतः 630 से 634 ई. के मध्य में हुए थे। ह्वेनसांग के अनुसार पुलकेशिन के नेतृत्व में महाराष्ट्र के लोगों ने हर्ष के आक्रमण का निराकरण किया। इस विजय के पश्चात उसने परमेश्वर और दक्षिण की उपाधियां धारण कीं।
- 'एहोल अभिलेख' के अनुसार कलिंग और कौशल के शासकों ने पुलकेशिन द्वितीय की अधीनता स्वीकार कर ली थी। अपने अनुज विष्णुवर्धन को राजधानी सौंपकर स्वयं पूर्वी दक्कन की ओर विजय के लिए चल पड़ा।
- इस समय पल्लव वंशीय शासक महेंद्रवर्मन प्रथम, पुलकेशिन का समकालीन था। वह महेंद्रवर्मन को अपना शत्रु समझता था, अतः पुलकेशिन ने उस पर आक्रमण कर दिया, किंतु वह पल्लवों को परास्त नहीं कर सका और पुल्ललूर तक चला गया। पल्लवों को परास्त करने के लिए उसने चोलों तथा पाण्डयों से मैत्री संबंध स्थापित किए। 630 ई. के लोहनेर अभिलेख में पुलकेशिन को पूर्व और पश्चिम का स्वामी बताया गया है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि उसने 630 ई. से पूर्व ही यह विजय प्राप्त की होगी।
- इन उपरोक्त विजयों के अतिरिक्त पुलकेशिन ने वैदेशिक संबंध भी स्थापित किए। हाबरी के अनुसार उसने फारस/ईरान के राजा खुसरू द्वितीय से भी संबंध स्थापित किए थे और 625 ई. में कुछ पत्र और भेंट देकर अपने दूत भेजे थे। ह्वेनसांग भी उसके दरबार में आया था।

टिप्पणी

- पल्लव शासक महेंद्रवर्मन के बाद उसका पुत्र नरसिंहवर्मन शासक बना। पुलकेशिन ने एक बार पुनः उस पर आक्रमण किया। इस बार लंका के राजकुमार मानवर्मा ने नरसिंह वर्मा को सहयोग दिया और इस युद्ध में पुलकेशिन द्वितीय को हार का सामना करना पड़ा। इस विजय के पश्चात पुलकेशिन द्वितीय की राजधानी वातापी पर अधिकार करके वातापी कोड की उपाधि धारण की। इस युद्ध में पुलिकेशिन द्वितीय वीरगति को प्राप्त हुआ। पुलकेशिन द्वितीय की मृत्यु के समय से ही चालुक्य वंश का पतन होने लगा।

इस प्रकार पुलकेशिन द्वितीय ने सारे दक्षिणापथ पर अधिकार कर लिया था। साथ ही विदेशों से भी मैत्री संबंध स्थापित किए गए। उसके पूर्वज तो वैदिक धर्म को मानने वाले थे, किंतु पुलकेशिन द्वितीय जैन अनुयायी था। वह विद्या व कला का संरक्षक था। उसके समय के गुहा-स्थापत्य और चित्रकला के नमूने अजंता में पाए जाते हैं।

## विक्रमादित्य प्रथम

पुलकेशिन द्वितीय के पश्चात चालुक्य वंश का लगभग पतन सा हो गया था किंतु अपने ननिहाल, गंग शासक के सहयोग से विक्रमादित्य प्रथम ने पुनः चालुक्य वंश की स्थापना की। संकटपूर्ण परिस्थितियों में उसने धैर्य और दृढ़ता से शासन किया। उसने अपने प्रतिद्वंद्वियों को परास्त किया। चालुक्य-पल्लव संघर्ष चलता रहा, उसने पल्लवों से सुदीर्घ संघर्ष के बाद उन्हें परास्त किया और राजधानी कांची को लूट कर चोल पाण्ड्य और केरल में अपनी शक्ति स्थापित की। अब उसका साम्राज्य अरब सागर, हिंद महासागर और बंगाल की खाड़ी तक फैल चुका था। संकटपूर्ण परिस्थितियों में विक्रमादित्य के भाई जयसिंह ने अत्यंत सहायता प्रदान की। इससे प्रसन्न होकर विक्रमादित्य ने जयसिंह को लाट का शासक बना दिया। उसने रणसिक, श्रीपृथ्वीवल्लभ, श्रीभट्टारक और महाराजाधिराज की उपाधियां धारण की। 671 ई. और 674 ई. के दान पत्रों से ज्ञात होता है कि इस समय विक्रमादित्य कांची के मलियपुरग्राम और चौल राजधानी उग्रपुर में थे। इससे यह कहा जा सकता है कि इस बीच पल्लवो की शक्ति क्षीण हो गई थी।

## विनयादित्य

विनयादित्य अपने पिता विक्रमादित्य के पश्चात शासक बना। उसके शासनकाल के विषय में अधिक जानकारी उपलब्ध नहीं है। उसके शिलालेखों में पल्लव, पाड्य, चोल केरल और सिंहल तक के राज्यों की विजयों का उल्लेख है। विक्रमादित्य की भांति विनयादित्य को अपने पुत्र विजयादित्य का सहयोग प्राप्त था। उत्तरापथ का अभियान उसने अपने पुत्र के साथ किया था और इसी अभियान में वह मारा गया था।

## विजयादित्य

विनयादित्य की मृत्यु के पश्चात उसका पुत्र विजयादित्य शासक बना। उच्छल के शिलालेख (730 ई.) से ज्ञात होता है कि उसने पल्लव राजधानी कांची पर अधिकार करके राजा को 'कर' देने के लिए बाध्य किया। उसने अपने शासनकाल में बीजापुर में शिवमंदिर, लक्ष्मीश्वेर में जैन मंदिर का निर्माण करवाया था। उसने अनेक जैन आचार्यों

को ग्राम दान में दिया था, जिससे अनुमान लगाया जाता है कि वह जैन धर्म का अनुयायी था।

टिप्पणी

## विक्रमादित्य द्वितीय

विक्रमादित्य 733 ई. में चालुक्य नरेश बना। उसने पल्लव शासक नंदीवर्धन को पराजित किया, कांची को नष्ट-भ्रष्ट किया, जनता में अपार धन-संपत्ति बांटकर वापस आ गया। शवराज, उदयन, निषादराज, पृथ्वीव्याघ्र, गंगराज तथा श्रीपुरुष उसके सहायक थे। राष्ट्रकूट, दंतिदुर्ग ने लाट पर अधिकार कर वहां से चालुक्यों की शक्ति को समाप्त कर दिया था। इसी समय में अरबों का आक्रमण हुआ, वे उत्तरापथ के पश्चात अब दक्षिणापथ की ओर बढ़ने लगे, परंतु विक्रमादित्य द्वितीय ने सफलतापूर्वक सामना करते हुए उन्हें वहीं रोक दिया। वह ब्राह्मणों को दान देने के लिए प्रसिद्ध था, दो शिव के मंदिर उसकी दो पत्नियों द्वारा बनवाए गए थे।

## कीर्तिवर्मन द्वितीय

746 ई. में वह चालुक्य वंश का शासक बना। वह अंतिम चालुक्य शासक था। उसने पल्लवों से लोहा लिया। राष्ट्रकूट शासक दंतिदुर्ग ने कीर्तिवर्मन प्रथम को परास्त किया था और धीरे-धीरे दक्षिण पर अपना अधिकार स्थापित किया था।

इस प्रकार 757 ई. में चालुक्य वंश का पतन हो गया और एक बार पुनः राष्ट्रकूट साम्राज्य का सूर्य उदित हुआ।

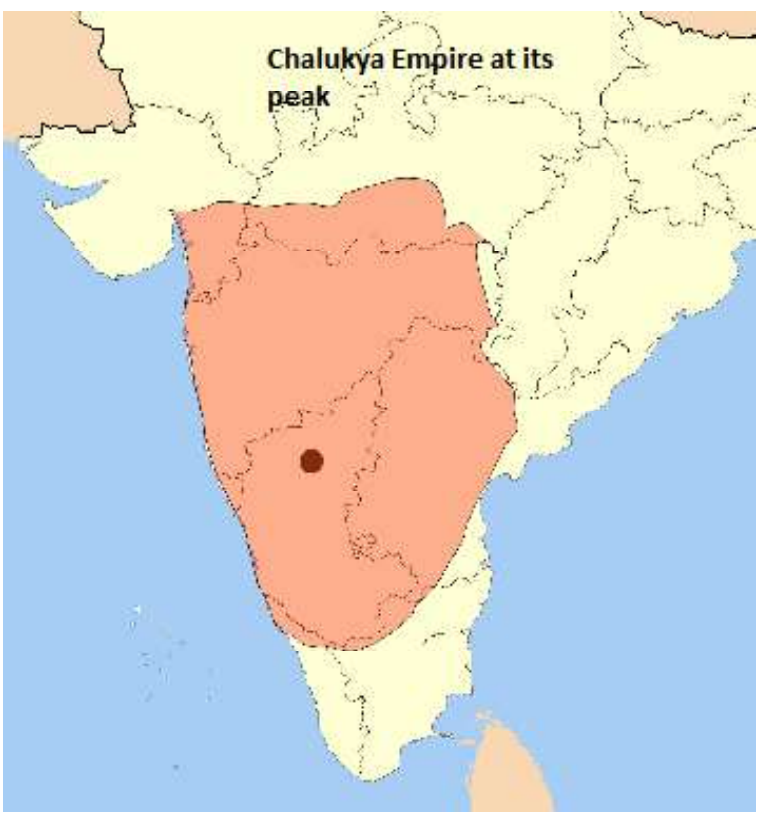

## चालुक्य प्रशासन

चालुक्यवंशीय शासन प्रबंध की हमें विस्तृत व्याख्या तो उपलब्ध नहीं है, किंतु कुछ प्राप्त तथ्यों के आधार पर यहां वर्णन किया जा रहा है-

टिप्पणी

चालुक्य सम्राटों की पूरी उपाधि '*सत्याश्रय श्री पृथ्वीवल्लभ महाराजाधिराज परमेश्वर भट्टारक*' थी। ये लोग परमभागवत थे। राजा शास्त्रों और दंडनीति का विद्वान हुआ करता था। समस्त प्रशासन के विधि विधान राज परिवार में निहित थे। चालुक्यों का राज्य एकात्मक न होकर केंद्रित था। राज्य के सभी कार्यों, समस्त ब्यौरों को राजा स्वयं देखता था। वह समय-समय पर राज्य का दौरा भी किया करता था। वह युद्ध का नेतृत्व भी स्वयं करता था। विभिन्न विजित राजाओं को अपने राज्य में सामंतों के रूप में राज्य करने का अधिकार दिया गया था। उत्तराधिकार आनुवंशिक था। रानियां अत्यंत विदुषी हुआ करती थी। 'विजय भट्टारिका' कवयित्री थी।

विषयपतियों, सामंतों, ग्रामभोगिकों, महत्तरों को दान के विषय में सूचित किया जाता था, जिसका उल्लेख हमें दानपत्रों से प्राप्त होता है। 'देशाधिगरिगल' कन्नड़ भाषा में विषयपति को कहा जाता था। वे राजा के प्रतिनिधि के साथ उसके हितैषी भी थे।

गांव प्रशासन में महाजन/सामंतों का स्थान प्रमुख था। इसके अतिरिक्त 'नगर' का भी उल्लेख मिलता है। 'लक्ष्मेश्वर अभिलेख' में सरकार तथा ग्राम सभाओं के मध्य संबंध का पता चलता है, साथ ही करो का वर्णन भी किया गया था।

राजा के मौखिक आदेशों को सचिव द्वारा लिखा जाता था, और संबद्ध अधिकारियों को भेजा जाता था। राजा की विज्ञप्ति को 'राजश्रावितम्' कहा गया है।

इस प्रकार चालुक्यों की शासन व्यवस्था उचित ढंग से कार्यान्वित की गई थी।

## चालुक्य कालीन संस्कृति और धर्म

चालुक्य नरेशों के प्रारंभिक व अंतिम शासक ब्राह्मण धर्म को मानने वाले थे, शेष शासक जैन धर्म के अनुयायी थे। एहोल-अभिलेख से ज्ञात होता है कि रविकीर्ति ने जितेंद्र का मंदिर बनवाया था। वातापी और पत्रदक्कल में त्रिमूर्ति के विशाल मंदिर बनवाए गए। मंगलेश ने एक मंदिर का निर्माण किया था। यज्ञों के अनुष्ठान का भी उल्लेख मिलता है। पुलकेशिन प्रथम ने अवश्वमेध, वाजपेय, पौडरिक आदि यज्ञ किए थे। मंदिर का नक्शा सितारानुमा होता था। शिखर 'कलशमंडित कोणात्मक स्तंभ से' अलंकृत था। धार्मिक जागरण से उत्साहित होकर वास्तुकला, शिल्पकला, चित्रकला तथा संगीतकला के क्षेत्र में काफी उत्थान हुआ, इसके साथ ही भक्ति-साहित्य और दार्शनिक विचारधारा का पर्याप्त विकास हुआ।

ह्वेनसांग ने वर्णन किया है कि इस क्षेत्र में बौद्ध धर्म का पतन हो रहा था। इस राज्य में 100 से अधिक बौद्धविहार तथा दो यानों के भिक्षुओं की संख्या 500 के करीब थी। राजधानी में 5 अशोक स्तूप थे। इस समय जैनधर्म का बोलबाला था।

सांस्कृतिक विवरण के संबंध में कहा जाता है कि, लोगों को विद्या का व्यसन था। सूर्यग्रहण और चंद्रग्रहण के अवसर पर वे दान देते थे। वातापी में 4 महाविधाओं की अकादमी थी, जिसमें दो हजार छात्रों का उल्लेख मिलता है।

टिप्पणी

एहोल अभिलेख से साहित्यिक दृष्टिकोण का पता चलता है। पुलकेशिन द्वितीय के सुर और सामंत गंगराज दुर्विनीत ने 'शब्दावतान' नामक ग्रंथ की रचना की। सर्वाधिकार ने क्लिष्ट सर्गों पर 'किरातार्जुनीय' पर टीका लिखी। राजशेखर के अनुसार कालिदास के बाद कर्णाट कवयित्री विजया ने वैदर्भी शैली को आश्रित किया था। उसी समय कन्नड़ भाषा की प्रगति हुई। कन्नड़ का प्राचीनतम ग्रंथ लेखक नृत्य तुंग द्वारा रचित कविराजमार्ग था।

## चालुक्यों की शाखाएं

चालुक्यों की 3 शाखाएं थीं–(1) बादामी के चालुक्य (2) वेंगी के चालुक्य (3) कल्याणी के चालुक्य।

### 1. बादामी के चालुक्य

बादामी के चालुक्यों का विवरण इस प्रकार है-

**( क ) जयसिंह**–चालुक्य वंश का प्रथम सम्राट जयसिंह था जिसने कदंबों और राष्ट्रकूटों से लड़कर अपने एक स्वतंत्र राज्य की स्थापना की। जयसिंह के पुत्र रणराज ने साम्राज्य को मात्र सुरक्षित रखा परंतु इसके पुत्र पुलकेशिन प्रथम को चालुक्य वंश का वास्तविक संस्थापक माना जाता है क्योंकि वह प्रथम स्वतंत्र सम्राट था। इसने अपने साम्राज्य का विस्तार किया तथा अश्वमेध यज्ञ कराकर अपनी प्रतिभा सिद्ध की। इसकी राजधानी बादामी थी।

**( ख ) कीर्तिवर्मन**–यह अपने पिता के समान ही वीर था। उसने बंग अंग, कलिंग, वंतुर, मग, मद्रक, केरल, गंग, मूठक, पांड्य, द्रमिल, चोलिय, आलुक व वैजयंती के राजाओं को पाराजित किया था। इसका शासन काल 566 से 597-98 ई. तक माना जाता है।

**( ग ) मंगलेश**–कीर्तिवर्मन के पुत्र के नाबालिग होने के कारण राजसिंहासन पर उसका सौतेला भाई मंगलेश बैठा। रेवती द्वीप व कलचुरी विजय उसकी सबसे बड़ी सफलताएं थीं। विष्णुभक्त मंगलेश ने बादामी में विष्णु का भव्य गुहा मंदिर निर्मित कराया जो कला का उत्कृष्ट नमूना है।

**( घ ) पुलकेशिन द्वितीय ( 610 से 642 ईसा तक )**–पुलकेशिन द्वितीय अपने वंश का सबसे महान व प्रतापी सम्राट था। उसने अपने चाचा को हटाकर गद्दी प्राप्त की जिससे इस गृहयुद्ध का लाभ उठाकर अनेक अधीनस्थ राज्य स्वतंत्र हो गए। इसी समय बाह्य आक्रमण भी हुआ। इस संकटमय स्थिति में पुलकेशिन द्वितीय ने धैर्य से काम लिया व बाह्य आक्रांताओं को अपना मित्र बना लिया। अपनी स्थिति सुदृढ़ करने के पश्चात उसने अपना विजय अभियान प्रारंभ किया। पुलकेशिन द्वितीय ने नवासियों, मैसूर के गंगों, मालावार के अलूपों और उत्तर के कोंकण मौर्यों को आत्मसमर्पण के लिए विवश किया। गुजरात के लाटों, मालवा और गूर्जरों का दमन किया।

पुलकेशिन द्वितीय की सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपलब्धि हर्ष की पराजय थी। हर्ष को पराजित करने से उसकी प्रतिभा में अत्यधिक वृद्धि हुई। चोलों, केरलों व पांड्यों को अपना मित्र बनाकर उसने पल्लवों को भी पराजित किया, परंतु पुलकेशिन द्वितीय के अंतिम दिनों में चालुक्य शक्ति का ह्रास होने लगा था तथा नरसिंहवर्मन ने पुलकेशिन द्वितीय को युद्ध में मार दिया।

टिप्पणी

(ङ) **विक्रमादित्य प्रथम**–13 वर्षों तक पल्लवों ने चालुक्यों की शक्ति को ग्रसित रखा, परंतु विक्रमादित्य जो पुलकेशिन द्वितीय का पुत्र था, ने चालुक्यों की शक्ति को पुन:स्थापित किया। उसने अपने पिता के समान ही विजय प्राप्त की।

विक्रमादित्य की मृत्योपरांत इसका पुत्र विजयादित्य 680 ई. से 698 ई. तक राजा रहा। तत्पश्चात विजयादित्य ने 696 ई. से 733 ई. तक शासन किया।

(च) **विक्रमादित्य द्वितीय**–विक्रमादित्य द्वितीय अत्यंत वीर सम्राट था। उसने चोल पांड्यों व केरल शक्तियों को आतंकित किया था। उसी के समय अरबों ने 712 ई. में सिंध पर विजय के पश्चात दक्षिण पर आक्रमण किया परंतु विक्रमादित्य ने उन्हें पराजित कर दिया। इस प्रकार उसने दक्षिण को अरबों से सुरक्षित किया। परंतु यह पल्लवों की शक्ति को पूर्णत: नष्ट न कर सका।

## बादामी के चालुक्यों का पतन

बादामी के चालुक्यों के पतन के मुख्य कारण इस प्रकार रहे-

1. **अराजकता का काल** - 655 ई. से प्रथम विक्रमादित्य के राज्यारोहण तक चालुक्य राज्य में अराजकता व्याप्त थी। यह काल चालुक्य वंश के लिए संकट व अवनति का काल था। चालुक्यों की क्षीण शक्ति के कारण अनेक अधीन सामंतों ने अपनी स्वतंत्रता घोषित कर दी थी। इसके पश्चात के शासकों ने स्थिति में कुछ सुधार अवश्य किए थे किंतु इस अराजकता का असर बाद में भी व्याप्त रहा जो चालुक्यों के पतन का कारण भी बना।
2. **उत्तराधिकार के लिए युद्ध**- चालुक्यों की क्षीण स्थिति के कारण सामंतों ने अब खुले व छिपे रूप से विद्रोह करने आरंभ कर दिए थे। इसके अतिरिक्त अब पुलकेशिन द्वितीय के पुत्रों ने सिंहासन के लिए भी संघर्ष प्रारंभ कर दिए थे। इसके साथ उन्हें अब पल्लवों के आक्रमणों का भी सामना करना पड़ा जो बाद में चालुक्यों के पतन का कारण बना।
3. **राष्ट्रकूटों का उत्कर्ष** - अभिलेख के अनुसार कीर्तिवर्मन द्वितीय बादामी के चालुक्यों का अंतिम प्रतापी सम्राट था। मान्यखेत के राष्ट्रकूट की स्थापना करने वाले दंतिदुर्ग ने कीर्तिवर्मन को परास्त किया था। दंतिवर्मन ने अब पूरी शक्ति एकत्र करके कीर्तिवर्मन पर आक्रमण किया। उसके प्रत्येक मित्रों को अपनी ओर मिला लिया और इस संघर्ष में अंतत: राष्ट्रकूटों को विजय प्राप्त हुई।

इस प्रकार चालुक्य वंश के पतन के पश्चात राष्ट्रकूट काल में चालुक्यों का वर्णन यंत्र-तंत्र मिलता है। चालुक्य शासक ने पुन: अपना राज्य प्राप्त करने का प्रयास किया

टिप्पणी

किंतु उन्हें सफलता प्राप्त नहीं हुई। अपने शासनकाल में चालुक्य साम्राज्य गुजरात से दक्षिण में नेल्लौर तक फैला हुआ था।

### 2. वेंगी के चालुक्य

वेंगी के चालुक्यों ने 5 शताब्दियों तक आंध्र व कलिंग के एक भाग पर शासन किया। विष्णुवर्धन को पुलकेशिन ने पिष्टपुर का शासन सौंपा था परंतु इसके उत्तराधिकारी स्वतंत्र हो गए। इस वंश के प्रसिद्ध शासक विजयादित्य द्वितीय तथा विजयादित्य तृतीय ने राष्ट्रकूटों, गंगों तथा समकालीन शक्तियों को पराजित किया। राजाराज चोल ने इनकी शक्ति को क्षीण कर दिया परंतु शक्तिवर्मन ने अपनी खोई हुई कीर्ति को पुनः प्राप्त करके अपने साम्राज्य का विस्तार किया। शक्तिवर्मन के उत्तराधिकारी विमलादित्य ने चोल राजकुमारी कुंदवा से विवाह किया और अपने संबंधों को सुधारा। विमलादित्य के पुत्र राजाराज विष्णुवर्धन ने राजेन्द्र प्रथम की कन्या से विवाह किया। इस विवाह से उत्पन्न राजेन्द्र चोल ने 1070 ई. में विजयादित्य सप्तम को वेंगी से मार भगाया और इस प्रकार चोल चालुक्य मिलकर एक हो गए।

### 3. कल्याणी के चालुक्य

973 ईसा को तैलप द्वितीय ने राष्ट्रकूट नरेश को पदच्युत कर कल्याणी को अपनी राजधानी बनाया। इसने चोल, कलचुरी राजाओं को पराजित किया तथा परमार राजा मुंज पर भी विजय प्राप्त की। उसने लगभग 24 वर्षों तक शासन किया। तैलप द्वितीय की मृत्यु के उपरांत उसका पुत्र सत्याश्रय गद्दी पर बैठा। चोल राजा ने उसके राज्य में अशांति उत्पन्न कर दी, परंतु सत्याश्रय ने अपनी शक्ति को संचित किया। सत्याश्रय की मृत्यु के उपरांत विक्रमादित्य गद्दी पर बैठा। इसने 10 वर्ष तक शासन किया। इसके पश्चात जयसिंह द्वितीय शासक बना। इसने परमार राजा भोज को पराजित किया था। इसके पश्चात सोमेश्वर प्रथम आहवमल्ल राजगद्दी पर आसीन हुआ। इसने चोल शासक राजाधिराज कांची पर आक्रमण कर उसे अपने साम्राज्य में मिलाया व चेदिराज को परास्त किया, कल्चुरियों को परास्त किया। यादवों, होयसलों और कदंबों की शक्ति को बढ़ने से रोका। यह अपनी शाखा का सर्वश्रेष्ठ सम्राट था। इसने कल्याणी को अपनी राजधानी बनाया। कहा जाता है कि यह ज्वर से परेशान हो गया तो मंत्र पढ़ते हुए इसने तुंगभद्रा में जल समाधि ली।

सोमेश्वर की मृत्यु के पश्चात सोमेश्वर द्वितीय (1068 ई.-1076 ई.) शासक बना। इसके पश्चात विक्रमादित्य छठा शासक बना। वह न केवल प्रतापी सम्राट था वरन विद्वानों का संरक्षक भी था। कवि विल्हण उसके दरबार में रहता था। उसने विक्रमाडूदेव चरित नामक ग्रंथ लिखा था। मिताक्षरा के प्रणेता विज्ञानेश्वर भी उसके दरबार में रहता था। सोमेश्वर के पश्चात अनेक शासक हुए परंतु सभी शक्तिहीन थे। 1190 ई. में देवगिरी के यादव शासक भिल्लम ने अपने राज्य में मिला लिया।

चालुक्य शासकों ने अपने कई शताब्दियों के शासनकाल में राजनैतिक और सांस्कृतिक क्षेत्र में नए मापदंड स्थापित किए। चालुक्य शासन सामंतीय शासन था।

सम्राट और सामंतों के मध्य संपर्क अधिकारियों के रूप में कार्य करने के लिए संधि विग्रहक नियुक्त होते थे। सामंतों को विशेषाधिकार प्राप्त थे। वह अपनी सेनाएं भी रखते थे। शासन का स्वरूप राजतंत्रात्मक था। राजा को सलाह देने के लिए मंत्रिपरिषद होती थी।

टिप्पणी

चालुक्य वंश के शासन की प्रारंभिक दो शताब्दियों में ब्राह्मण धर्म को प्रधानता प्राप्त थी। इसी कारण वैदिक धर्म को प्रोत्साहन प्राप्त हुआ। अनेक मंदिरों का निर्माण हुआ तथा पुलकेशिन द्वितीय ने अश्वमेध यज्ञ व वाजपेय यज्ञ भी किए। चालुक्य नरेशों की धर्म सहिष्णुता के कारण जैन धर्म की भी प्रगति हुई। ऐहोल अभिलेख का रचयिता रविकीर्ति जैन अनुयायी था और उसने जितेन्द्र के एक मंदिर का भी निर्माण करवाया। ह्वेनसांग ने लिखा- "बौद्ध विहारों की संख्या 100 से ऊपर थी और 5000 से ऊपर की संख्या में हीनयान और महायान संप्रदायों के भिक्षु वहां विद्यमान थे। राजधानी के भीतर और बाहर 5 अशोक स्तूप थे। इससे प्रामाणित होता है कि बौद्ध धर्म की भी उन्नति हुई।"

चालुक्यों के शासनकाल में कलाओं की पर्याप्त उन्नति हुई। जैनों और बौद्धों के अनुकरण में हिंदू देवताओं के लिए भी गुहा मंदिरों का निर्माण करवाना चालुक्य कला की एक महत्वपूर्ण देन है। अजंता व एलोरा की गुफाओं में कुछ गुफाओं का निर्माण चालुक्यों ने किया था। एलोरा में कुछ विख्यात चित्र स्थापत्य के हैं; जैसे कैलाश पर्वत के नीचे रावण, नृत्य करते हुए भगवान शिव, हिरण्यकश्यप का वध करते हुए नृसिंह भगवान। इसके अतिरिक्त विरुपाक्ष मंदिर सबसे प्रसिद्ध है, जिसमें भित्ति चित्रों द्वारा रामायण की कथाओं को दिग्दर्शित किया गया है। चालुक्य राजाओं की धर्मसहिष्णुता की नीति उदारता, विद्या प्रेम और विद्वानों के संरक्षण ने साहित्य सृजन के अवसर प्रदान किए। जैन आचार्यों ने मराठी, कन्नड़ तथा तेलगू नामक प्रांतीय भाषाओं के साहित्य सृजन की नींव डाली।

### अपनी प्रगति जांचिए

5. चालुक्य वंश का प्रथम शासक कौन था?

(क) जयसिंह (ख) रणराज

(ग) पुलकेशिन (घ) कीर्तिवर्मन

6. चालुक्यों की कितनी शाखाएं थीं?

(क) दो (ख) तीन

(ग) चार (घ) पांच

## 2.5 चोल और उनका प्रशासन

इस काल के इतिहास को जानने के लिए हमारे पास तत्कालीन साहित्य, शासकों के दानपत्र, लेख, अभिलेख, विदेशी यात्रियों के वृतांत तथा शासकों द्वारा जारी की गई मुद्राएं उपलब्ध हैं। ये हमें तत्कालीन चोल शासकों का साम्राज्य विस्तार, युद्ध, विजय, प्रशासन, कला इत्यादि की जानकारी देती हैं। चोल इतिहास में चोलकालीन साहित्य है- चोल

साहित्य में सर्वप्रथम संगम साहित्य का उल्लेख किया जाना आवश्यक है। इस साहित्य से पांड्य तथा चेर राजाओं के साथ उसके संबंधों की जानकारी मिलती है। प्रारंभिक चोल शासक करिकाल की उपलब्धियों का भी उल्लेख किया गया है।

टिप्पणी

'कुलोतुंग द्वितीय' के काल में लिखी गई शेक्किलार की रचना 'पेरियपुराणम्' है, इससे तत्कालीन धार्मिक दशा का पता चलता है। 'कलिंगगत्तुपराणि' से कुलोतुंग प्रथम द्वारा किए गए कलिंग आक्रमण की जानकारी मिलती है। यह जयन्गोण्डार द्वारा लिखी गई थी। 'ओट्कुट्टम्' द्वारा विक्रमचोल, कुलोतुंग द्वितीय तथा राजराज द्वितीय एवं शृंगार प्रधान जीवन वृत, लिखा गया है, जो इनके विषय में ऐतिहासिक तथ्य बताता है।

इसी प्रकार बौद्ध ग्रंथ, बुद्धमित्र के व्याकरण ग्रंथ 'वीरशोलियम' में वीर राजेन्द्र की ऐतिहासिक घटनाओं का उल्लेख किया गया है। इसी प्रकार से परांतक की पांड्य विजय तथा राजेन्द्र प्रथम की लंका विजय का विवरण बौद्ध ग्रंथ 'महावंश' में मिलता है।

सिक्के भी चोल इतिहास को उजागर करने में प्रामाणिक स्रोत हैं। चोल शासन काल के स्वर्ण सिक्कों का एक ढेर 'धवलेश्वरम्' से मिला है, जो इसकी समृद्धि को दर्शाते हैं। लंका से भी कुछ सिक्के प्राप्त हुए हैं, जो राजाधिराज प्रथम के काल के हैं, जिससे स्पष्ट होता है कि लंका पर भी इनका अधिकार रहा होगा। कुछ रजत सिक्के 'कनारा' से भी मिले हैं। सिक्कों की बाहुल्यता दक्षिण में चोल अधिपत्य को स्पष्ट करती है।

इसके अतिरिक्त चोलों के इतिहास पर तत्कालीन अभिलेख भी प्रकाश डालते हैं। अभिलेख सर्वाधिक प्रामाणिक माने जाते हैं। 871 ई. के पश्चात का चोलों का क्रमिक इतिहास अभिलेखों से प्राप्त होता है। पूर्वजों के इतिहास को संकलित करना, समकालीन घटनाओं को लेखबद्ध करने का कार्य राजराज प्रथम ने अभिलेखों द्वारा किया था। राजराज प्रथम के शासनकाल से जुड़े लेख हमें 'लेडन ताम्रपत्र' तथा 'तंजौर मंदिर' के लेख से प्राप्त होते हैं। राजेन्द्र प्रथम की उपलब्धियों का वर्णन हमें विरूवालंगाडु तथा करन्डै दानपत्र से मिलता है। ऐतिहासिक रूप से सर्वाधिक उल्लेखनीय लेख राजराज तृतीय का तिरुवेन्द्रिपुरम् अभिलेख है, जिससे चोल वंश के उत्कर्ष का विवरण मिलता है। राजाधिकरा प्रथम की लंका विजय तथा चालुक्यों से किए गए संघर्ष का वर्णन 'मणिमंत्रलम्' अभिलेख में मिलता है। चोलों के अभिलेखों में संस्कृत, तमिल, कन्नड़ तथा तेलुगु भाषाओं का प्रयोग किया गया है।

विदेशी विवरण के संबंध में चीनी यात्रियों द्वारा किए गए उल्लेखों से ज्ञात होता है चोल शासकों तथा चीनी साम्राज्य के मध्य राजनयिक संबंध थे। चीनी अनुभूति के अनुसार राजराज प्रथम तथा कुलोतुंग प्रथम के काल में एक दूत मंडल चीन की यात्रा पर गया था। चीनी यात्री चाऊ-जू-कूआ के वर्णन से चोल देश की शासन व्यवस्था पर प्रकाश पड़ता है। चीनी विवरणों के अतिरिक्त टालेमी पेरीप्लस के लेखों में भी चोलों का वर्णन किया गया है।

इस प्रकार साहित्य, अभिलेख, सिक्कों तथा यात्री वृत्तांतों से चोल कालीन सभी महत्वपूर्ण व ऐतिहासिक घटनाओं पर प्रकाश पड़ता है।

## चोलों की उत्पत्ति

टिप्पणी

चोलों की उत्पत्ति के प्रश्न पर विद्वानों में मतभेद है। इस संबंध में विद्वानों के विभिन्न मत हैं। चोलों की प्राचीनता इस बात से सिद्ध होती है कि महाभारत में चोलों का उल्लेख किया गया है, चंद्रगुप्त के शासनकाल में आए यूनानी यात्री 'मेगस्थनीज' के विवरण में चोलों का उल्लेख किया गया है। अशोक के अभिलेख में सीमांत राज्यों के रूप में चोल शासकों का उल्लेख मिलता है। पेरीप्लस ने अपने ग्रंथ में चोलप्रदेश के बंदरगाहों का उल्लेख किया है। इससे चोलों की प्राचीनता तो सिद्ध होती है किंतु चोलों के विषय में मतभेद अभी शेष है। चोलों की उत्पत्ति के विषय में निम्नलिखित तथ्य प्रस्तुत किए जाते हैं-

- विद्वानों के अनुसार, 'चोल' तमिल भाषा के 'चुल' से बना है, जिसका अर्थ है, घूमने वाला, अर्थात प्रारंभ में चोल भ्रमणशील रहे होंगे।
- इतिहासकारों का मानना है कि चोल शब्द की उत्पत्ति संस्कृत के 'चौर' शब्द से हुई है, जिसका यह अर्थ निकाला गया है कि चोरी से जीवन यापन करने के कारण बाद में चोरी से सत्ता प्राप्त की होगी, इसलिए ये चोल कहलाए।
- तमिल विद्वानों के अनुसार, चोल शब्द की उत्पत्ति तमिल भाषा के चोलम से हुई है जिसका अर्थ है 'बाजरा'। इस संबंध में विद्वान यह मत देते हैं कि ये जिस प्रदेश के निवासी रहे होंगे वहां पर बाजरा की प्रमुखता रही होगी, इसलिए इन्हें चोल कहा गया है।
- इतिहासकारों के अनुसार, चोल शब्द 'पोल' का बदला हुआ रूप है। प्रारंभ में दक्षिण की सभी प्राचीन जातियों को पोल कहा जाता था, इस आधार पर चोल अनार्यों के वशंज और दक्षिण भारत के मूल के होंगे।

उपर्युक्त मतों में इतना अधिक भेद है कि निष्कर्ष रूप में कुछ भी कहा जाना संभव नहीं है। अपने अभिलेखों में चोल शासकों ने स्वयं को 'सूर्यवंशी क्षत्रिय' घोषित किया है। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि ये उत्तर भारत के आर्यों के वंशज रहे होंगे, और जाति से क्षत्रिय थे, जो बाद में दक्षिण में जाकर बस गए।

## चोल शासक

चोल वंश का प्रारंभिक इतिहास हमें संगम साहित्य से ही प्राप्त होता है, जिसके अनुसार 250 ई. में चोल शासक दक्षिण में अपना प्रभुत्व स्थापित किए हुए थे। संगम साहित्य के वर्णन के अनुसार 190 ई. में शासन कर रहे करिकाल ने पांड्य तथा चेर शासकों को अपने अधिकार में किया था। इसके बाद नवीं सदी तक चोल इतिहास अंधकारमय था। इस विषय में अधिक कुछ ज्ञात नहीं है, किंतु इतिहासकार यह निष्कर्ष निकालते हुए कहते हैं कि इस समय पल्लवों के आक्रमण के कारण इनका स्थान नगण्य हो गया होगा।

850 ई. में **विजायालय** नामक शक्तिशाली चोल शासक का उल्लेख मिलता है, जो त्रिचलापल्ली में पल्लवों के अधीन सामंत रूप में शासन करता था। यह समय पल्लव तथा पांड्यों के संघर्ष का समय था। त्रिचलापल्ली, चोलों का प्राचीन स्थान था, फिर भी

उसने अवसर पाकर कमजोर होती पल्लव शक्ति को समाप्त करके तंजौर पर अधिकार कर लिया। यहीं से चोल वंश के उत्कर्ष का दौर प्रारंभ होता था। उसने यहां दुर्गादेवी का मंदिर बनवाया।

टिप्पणी

**आदित्य प्रथम,** विजायालय का पुत्र था जो उसके पश्चात 871 ई. में उत्तराधिकारी बना। यह अत्यंत वीर शासक था, वह प्रारंभ से ही अपने साम्राज्य विस्तार में लग गया। पल्लव नरेश का सामंत होने के कारण उसने पांड्यों से युद्ध में पल्लव शासक अपराजित की सहायता की और विजय प्राप्त की, किंतु उसके पश्चात ही उसने अपराजित की हत्या करके तोण्ड-मंडलम को अपने राज्य में मिला लिया, पांड्यो से कांगू का प्रदेश छीना तथा गंगो पर अधिकार कर लिया। उसने चेर वंश की राजकुमारी से अपने पुत्र परांतक प्रथम का विवाह करा दिया। इस प्रकार इतनी कुशलता से उसने पल्लवों, पांड्यों तथा गंगो पर अधिकार कर अपना साम्राज्य विस्तार किया। वह शिव का अनन्य भक्त था। कला प्रेमी होने के कारण कावेरी नदी के दोनों किनारों पर उसने शैव मंदिरों का निर्माण करवाया था।

**परांतक प्रथम,** आदित्य प्रथम के पश्चात शासक बना। वह अपने पिता के समान वीर तथा महत्वाकांक्षी था। उसने अपने पिता के समान साम्राज्यवादी नीतियों को अपनाया। इस समय मदुरा पर पांड्य शासकों का अधिकार था, परांतक ने मदुरा पर आक्रमण कर दिया, पांड्य शासक ने सिंहल के शासक से सहायता मांगी, किंतु दोनों की सम्मिलित सेना को वेल्लुर के युद्ध में परास्त किया, और मदुरा पर अधिकार कर दिया। इसी विजय के पश्चात परांतक ने 'मदुरैकोण्ड' की उपाधि धारण की। अब पल्लव शेष थे, तथा उन्हें परास्त कर परांतक ने बानों तथा बैदुम्बों पर अधिकार कर लिया। अब परांतक का साम्राज्य उत्तरी पेन्नार से कुमारी अंतरीत तक विस्तृत हो चुका था।

परांतक को इतनी सफलता प्राप्त होने के पश्चात एक ऐसी आंधी आई, जिससे परांतक का साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया। इस समय राष्ट्रकूट वंश का शासक कृष्ण तृतीय था, उसने चोलों पर आक्रमण करके 'तोण्डमंडलम्' पर अधिकार कर लिया। इससे चोल साम्राज्य की प्रतिष्ठा को गहरा धक्का लगा, और उसका साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया। अब चोलों की शक्ति क्षीण हो रही थी, जिसका लाभ अधीन सामंतों ने उठाया, और सामंतों ने स्वयं को स्वतंत्र कर दिया।

परांतक की मृत्यु के पश्चात उसके उत्तराधिकारियों ने साम्राज्य की दुर्बलता पर विशेष ध्यान नहीं दिया। उनकी रुचि धार्मिक कार्यों में अधिक थी। लगभग 30 वर्षों तक चोल वंश का साम्राज्य अस्त-व्यस्त रहा।

## चोल वंश के प्रमुख शासक एवं उपलब्धियां

परांतक की मृत्यु के पश्चात उसके उत्तराधिकारी मन्दरादित्य, परांतक द्वितीय दुर्बल शासक सिद्ध हुआ। आदित्य द्वितीय जो परांतक द्वितीय का पुत्र था उसने अपने पुत्र को युवराज बनाया। उसने पांड्यों को पराजित कर सिंहल पर आक्रमण किया। परांतक द्वितीय ने राष्ट्रकूटों से तोण्डमंडलम् को जीतकर अपने अधिकार में कर लिया। परांतक द्वितीय के पश्चात उसका पुत्र अरुमोलिवर्मन शासक बना।

टिप्पणी

## राजराज प्रथम द्वारा साम्राज्य विस्तार

चोल साम्राज्य का वास्तविक संस्थापक 'अरूमोलिवर्मन' था जो परांतक द्वितीय का पुत्र था और 985 ई. में वह सम्राट बना, तथा उसने राजराज की उपाधि धारण की। राजराज प्रथम के नाम से ही वह इतिहास में विख्यात है। अपने 30 वर्षों के शासन में उसने अपने वंश की खोयी प्रतिष्ठा तथा साम्राज्य को पुन:स्थापित किया। राजराज प्रथम इस वंश का शक्तिशाली शासक था। उसके शासनकाल में चोल वंश का सर्वतोन्मुखी विकास हुआ। उसने अपने पराक्रम से चोल वंश का वैभवशाली इतिहास बनाया। चेर, पांड्यों, लंका, कलिंग गणराज्य इत्यादि पर अपना अधिकार स्थापित कर दृढ़ साम्राज्य की नींव डाली।

## कल्याणी के पश्चिमी चालुक्यों से संघर्ष

तैलप के पश्चात चालुक्य शासक सत्याश्रय था। साम्राज्यवादी नीति का अनुकरण करके राजराज ने चालुक्यों पर आक्रमणों किया, किंतु सत्याश्रय की सेना चोल सेना का सामना नहीं कर सकी। विरूवालंगाडु, ताम्रपत्र से ज्ञात होता है कि सत्याश्रय इस युद्ध से भाग खड़ा हुआ था। चालुक्य सेनापति केशव को युद्ध में बंदी बना लिया गया। कन्याकुमारी लेख के अनुसार राजराज ने चालुक्यों को पराजित किया। सत्याश्रय के लेख के अनुसार, राजराज के पुत्र राजेन्द्र चोल ने एक विशाल सेना के साथ लूट-पाट की और पूरे जिले को रौंद डाला. स्त्रियों, बच्चों और ब्राह्मणों का संहार किया। किंत अभिलेखों के वर्णन से

लिया था। फिर भी इस अभियान से चोलों को अतुल संपत्ति प्राप्त हुई थी, और उनका साम्राज्य तुंगभद्रा नदी तक विस्तृत हो गया था।

## वेंगी के चालुक्य

इस समय वेंगी के साम्राज्य पर संकट छाया हुआ था। वेंगी शासक दानर्णव की चोडभीम ने हत्या कर दी थी, और स्वयं वेंगी पर अधिकार कर लिया था। दानर्णव के दोनों पुत्रों शक्तिवर्मा और विमलादित्य ने चोल शासक राजराज से शरण मांगी। चोडभीम ने वेंगी पर अधिकार करने के पश्चात अब तोण्डमंडलम, पर आक्रमण किया। राजराज की सेना ने ईंट का जवाब पत्थर से दिया, और इस युद्ध में चोडभीम को बंदी बना लिया गया तथा शक्तिवर्मा को वेंगी का राजा बनाया गया। अब वेंगी, चोलों द्वारा संरक्षित राज्य था। इस संकट की समाप्ति के तुरंत ही बाद कल्याणी के चालुक्य नरेश सत्याश्रय ने वेंगी पर आक्रमण कर दिया। राजराज ने अपनी दो सेनाओं, जिसमें एक सेना का नेतृत्व उसका पुत्र राजेन्द्र कर रहा था सेना द्वारा पहले वनवासी पर आक्रमण करके उसे ध्वस्त किया। दूसरी चोल सेना ने वेंगी पर अधिकार कर लिया, अब सत्याश्रय को इस युद्ध से विवश होकर भागना पड़ा। फिर से वेंगी पर शक्तिवर्मन का शासन स्थापित हो गया और चोलों अतुल संपत्ति लेकर लौटे। इसी क्रम में राजराज ने अपनी कन्या कुन्दवा देवी का विवाह, उसके छोटे भाई विमलादित्य के साथ कर दिया। इस संबंध में दोनों के मैत्री संबंध को प्रगाढ़ता प्राप्त हुई।

## केरल पर विजय

इस समय केरल पर रविवर्मा का शासन था, त्रिवेन्द्रम में दोनों के बीच युद्ध हुआ, जिसमें राजराज ने रविवर्मा को परास्त किया। इस विजय के उपलक्ष्य में उसने 'काण्डलूरशालैकलमरूत्त' की उपाधि धारण की।

टिप्पणी

## पांड्यों पर विजय

केरल के पश्चात अब राजराज ने पांड्यों के राज्य पर आक्रमण किया। इस समय अमर भुजंग यहां शासन कर रहा था। तिरूवालंगाद् अभिलेख से यह पता चलता कि राजराज ने अमरभुंजग को बंदी बनाकर अपनी राजधानी मदुरा को जीतकर विलिन्द के दुर्ग पर अधिकार किया था।

## सिंहल पर विजय

वर्तमान श्रीलंका नामक देश को प्राचीन इतिहास में सिंहल कहा जाता था। इस समय यहां पर महेन्द्र पंचम का शासन था। राजराज अब सिंहल पर विजय का इच्छुक था। राजराज ने अपनी नौ सेना के साथ सिंहल पर आक्रमण किया। पांड्य, केरल, के शासकों ने राजराज के विरुद्ध महेन्द्र पंचम की सहायता की थी। किंतु राजराज इतना शक्तिशाली शासक था कि उसने इन तीनों की सम्मिलित सेनाओं को परास्त कर अनुराधापुर को ध्वस्त करते हुए सिंहल पर अधिकार कर लिया। चोलों ने अनुराधापुर के स्थान पर पोलोन्नुरूव को राजधानी बनाया तथा इसका नाम जननाथ मंगलम् रखा। सिंहल में राजराज द्वारा बनवाए गए शिव मंदिरों का भी उल्लेख है।

## पश्चिमी गंगो पर विजय

राजराज के शासन के छवें वर्ष के कर्नाटक लेख से ज्ञात होता है जिसमें उसे नारायण चोल कहा गया है, के अनुसार उसने गंगो पर विजय प्राप्त की। अब राजराज का साम्राज्य तुंगभद्रा नदी तक फैल गया जिसमें संपूर्ण दक्षिण भारत, सिंहल मालद्वीव का भाग शामिल है। उसने चोनमार्त्तंड, राजश्रम राजमार्तंड, चोलेन्द्र सिंह जैसी उच्च सम्माननीय उपाधियां धारण की थीं तथा अपने पराक्रम से उसने एक विशाल और दृढ़ शासन व साम्राज्य की स्थापना की।

## राजाधिराज प्रथम

राजेन्द्र चोल की मृत्यु 1044 ई. के लगभग हुई, वह अपने पिता के बाद उत्तराधिकारी बना। उसने अपने पिता की भांति, अपने पिता के प्रशासनिक कार्यों में सहयोग दिया। उसने भी अपने शासन काल में चारों तरफ के शत्रुओं का सामना किया सोमेश्वर के विक्रमादित्य के नेतृत्व में वेंगी के पश्चिमी चालुक्यों पर आक्रमण किया। चालुक्य सेनापतियों तथा सामंतों को जीतकर उसने चालुक्यों की राजधानी कल्याणी को जीत लिया था। कलिंग पर भी उसने अधिकार किया था। उसने अपने अनुज राजेन्द्र द्वितीय की सहायता से सोमेश्वर के विरुद्ध दूसरा सैनिक अभियान किया। 1052 ई. में कोप्पम के युद्ध में राजाधिराज मारा गया, और राजेन्द्र द्वितीय ने सोमेश्वर को युद्ध में परास्त किया।

## राजेन्द्र द्वितीय

राजेन्द्र द्वितीय, राजाधिराज प्रथम का छोटा भाई था, और उसके पश्चात शासक भी बना। उसने राजाधिराज के शासन काल में ही उसे सहायता देनी प्रारंभ कर दी थी। इसके शासनकाल में सोमेश्वर ने वेंगी पर विक्रमादित्य सप्तम के पुत्र विक्रमादित्य को शासक

बनाया। इसके दोनों पुत्रों विक्रमादित्य तथा जयसिंह ने गंगवाडी में चोलों पर आक्रमण कर दिया चामुण्डराज भी इनकी सहायता के लिए सेना लेकर गया, किंतु चोल नरेश, राजेन्द्र चोल के भाई वीर राजेन्द्र तथा उसके पुत्र राजमहेन्द्र ने चारों ओर से शत्रुओं की सेना का सामना किया, और चामुराज तथा शक्तिवर्मन की सेनाओं को परास्त किया, और वहीं पर दोनों की हत्या कर दी गई। इस सफलता के बाद राजेन्द्र द्वितीय तथा राजमहेन्द्र की मृत्यु हो गई। किंतु पिता और पुत्र ने अपने साम्राज्य को अक्षुण्ण बनाए रखा। इससे इनकी वीरता तथा पराक्रम का परिचय मिलता है।

टिप्पणी

## वीर राजेन्द्र

वीर राजेन्द्र, राजेन्द्र द्वितीय का भाई तथा राजमहेन्द्र का चाचा था, और दोनों की मृत्यु के पश्चात वह चोल वंश का शासक बना। इस काल में भी चालुक्यों के प्रायः आक्रमण होते रहे। वीर राजेन्द्र ने वेंगी में चालुक्यों को परास्त किया। सोमेश्वर ने पुनः कुडल संगमम् में चोल सेना पर आक्रमण किया और स्वयं ही युद्ध में उपस्थित नहीं हुआ तथा चोल सेना द्वारा पराजय हाथ लगी और वीर राजेन्द्र ने तुंगभद्रा के तट पर विजय स्तंभ स्थापित किया। कृष्णा नदी को पार करके कलिंग पर आक्रमण किया, वहां पश्चिमी चालुक्यों को वीर राजेन्द्र ने बुरी तरह परास्त किया, तथा सोमेश्वर ने तुंगभद्रा नदी में कूद कर आत्महत्या कर ली। अब चालुक्य शासक सोमेश्वर द्वितीय ने वीर राजेन्द्र पर आक्रमण किया किंतु उसका छोटा भाई विक्रमादित्य उससे जा मिला तथा वीर राजेन्द्र ने अपनी पुत्री का विवाह उसके साथ कर दिया तथा उसे ही वेंगी का शासक नियुक्त कर दिया।

वीर राजेन्द्र ने सिंहल नरेश विजयबाहु प्रथम पर आक्रमण कर उसे परास्त किया। 1070 ई. में वीर राजेन्द्र की मृत्यु हो गई। इस प्रकार वीर राजेन्द्र ने चोल वंश की नींव हिलने नहीं दी। उसने भी अपने शौर्य से अपने वंश की सत्ता को अक्षुण्ण रखा और उसका विस्तार किया।

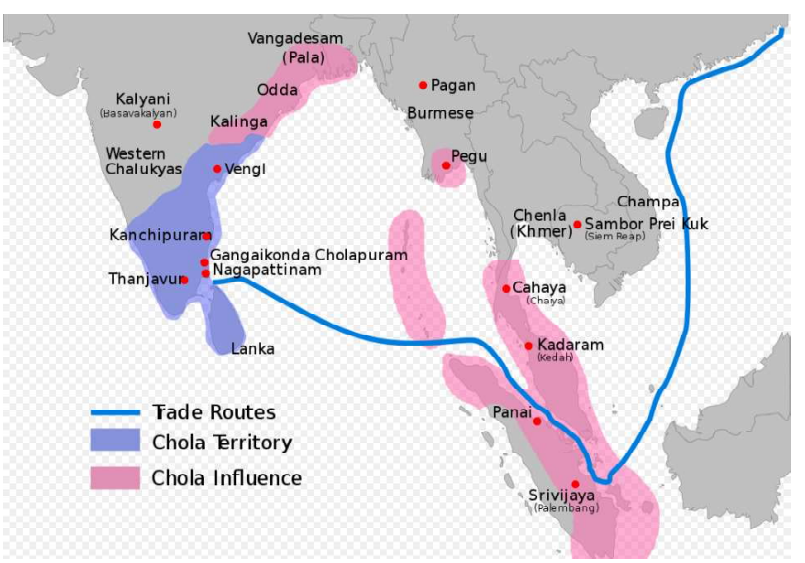


## कुलोतुंग प्रथम

वीर राजेन्द्र की मृत्यु के पश्चात उसका पुत्र राजेन्द्र गद्दी पर बैठा और पूर्वी चालुक्य राजराज प्रथम के पुत्र राजेन्द्र द्वितीय ने उस पर आक्रमण किया और उसकी हत्या करके

टिप्पणी

वेंगी तथा चोल राज्य दोनों पर अधिकार कर लिया। यहीं राजेन्द्र द्वितीय कुलोतुंग प्रथम के नाम से शासक बना था। उसकी माता तथा पत्नी चोल वंश की कन्या थी, अतः उसमें चोल रक्त का मिश्रण अवश्य था। उसके समय में चालुक्य साम्राज्य दो भागों में बंट चुका था। उत्तरी भाग पर सोमेश्वर द्वितीय तथा दक्षिणी भाग पर उसका भाई विक्रमादित्य शासन कर रहा था। सोमेश्वर द्वितीय ने कुलोतुंग से संधि की किंतु 1075 ई. में विक्रमादित्य ने कुलोतुंग से संघर्ष किया, वह पराजित हुआ और गंगवाडी पर कुलोतुंग का अधिकार हो गया। कुलोतुंग ने हैहयों, लंका के विजय बाहु, पांड्यों, चेरों से संघर्ष किया, चेरों के राज्य कडारम को नष्ट कर दिया। कलिंग में उत्पन्न विद्रोह का दमन कर दिया गया। उसने कुशलतापूर्वक इतने विशाल साम्राज्य की रक्षा की, कन्नौज के गढ़वालों से मैत्री संबंध स्थापित किए। किंतु उसके अंतिम वर्ष सफल नहीं रहे, लंका गंगवाडी, नोलम्वडी, तलकाड, वेंगी राज्य पूर्ण रूप से स्वतंत्र हो गए। अब तमिल व तेलुगु राज्य ही उसके अधिकार में रह गए थे।

कुलोतुंग के पश्चात कोई भी शक्तिशाली शासक नहीं हुआ जो चोल वंश की खोयी हुई प्रतिष्ठा, विशाल साम्राज्य, दोबारा से स्थापित कर सके। राजेन्द्र तृतीय इस वंश का अंतिम स्वतंत्र शासक था। पांड्य शासक जटा वर्मन सुंदर ने राजेन्द्र चोल तृतीय को आत्म समर्पण के लिए विवश किया। 1258 ई. में चोल वंश, पांड्यों के अधीन सामंत रहे और इसके पश्चात चोल वंश का पतन हो गया।

## चोल प्रशासन एवं उपलब्धियां

चोल वंश शक्तिशाली सम्राटों का वंश था और निश्चित ही चोल शासकों ने एक सुनियोजित शासन व्यवस्था की स्थापना की थी। उनका साम्राज्य अब पूर्वी समुद्र से लेकर पश्चिमी समुद्री तट तक फैला हुआ था। चोल संस्कृति का सर्वाधिक महत्वपूर्ण पक्ष चोलों की शासन-व्यवस्था है। उन्होंने राजतंत्रात्मक शासन-व्यवस्था की स्थापना की थी। प्रत्येक शासक की शासन-व्यवस्था केंद्रीय हुआ करती थी, किंतु चोल शासन व्यवस्था में स्थानीय स्वायत्तता पर अधिक जोर दिया गया था। इस शासन व्यवस्था का केंद्र राजा था, और राजा ही सर्वोपरि था।

## चोल शासन व्यवस्था

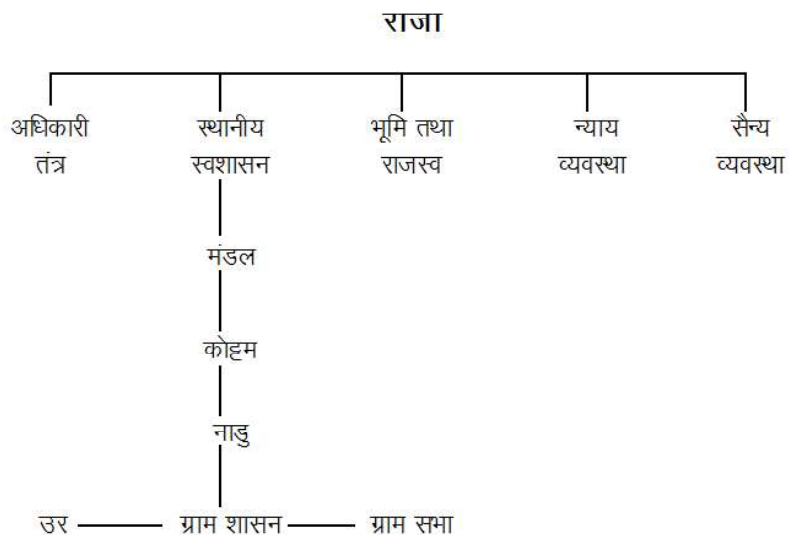

## राजा

टिप्पणी

शासन व्यवस्था का मुख्य आधार राजा ही था। प्रशासन की समस्त शक्तियां उसी में निहित थी। विभिन्न अभिलेखों और ताम्रपत्रों से पता चलता है कि राजराज और राजेन्द्र चोल ने महान उपाधियां धारण की थीं। वे 'चक्रवर्तिगल', 'त्रिलोक' सम्राट जैसी सम्माननीय उपाधियां थीं। सम्राट बहुसंख्यक कर्मचारियों व सामंतों से घिरा रहता था। एक चीनी लेखक चाऊ-जू-कुआ सम्राट के भोज के विवरण के संदर्भ में बताता है कि "उसके भोज के समय राजसिंहासन के समक्ष चार मंत्री उसका अभिवादन करते थे। वह शराब नहीं पीता था, किंतु मांस खाता था और सूती वस्त्र पहनता था। रक्षक के रूप में उसने हजारों नर्तकियों को नियुक्त कर रखा था। वहां उपस्थित सभी लोग संगीत, नृत्य तथा गीत गाते थे।" इस विवरण से उसकी शान-शौकत का ज्ञान मिलता है। उसका राज्याभिषेक भव्य राजप्रसाद में किया जाता था। मंदिरों में सम्राट की प्रतिमा भी स्थापित की जाती थी, और उसकी मृत्यु के बाद उसकी पूजा होती थी, तंजौर के मंदिर में सुन्दर चोल तथा राजेन्द्र चोल की प्रतिमाएं स्थापित की गई थीं।

राजा का पद वंशानुगत था। वह अपने जीवनकाल में ही युवराज का चुनाव कर लेता था, जो उसका उत्तराधिकारी होता था। युवराज प्रारंभ से ही राजा की प्रशासनिक सहायता करता था तथा भावी राजा के गुणों को सीखता था। युवराज के अतिरिक्त राजा की सहायता के लिए अनेक विभागों व उनके अधिकारियों की नियुक्ति की गई थी। धार्मिक मामलों में वह राजगुरुओं से परामर्श लेता था। वह प्रशासनिक कार्यों के अतिरिक्त सार्वजनिक कार्यों में भी रुचि रखते थे, जैसे- सिंचाई के साधनों की व्यवस्था, विद्यालय, औषधालयों की स्थापना मंदिरों का निर्माण इत्यादि। चोल शासक निरंकुश नहीं थे, वे धर्म के विरुद्ध कोई भी काम नहीं करते थे।

अधिकारी तंत्र-राजा की सहायता हेतु अनेक अधिकारियों की नियुक्ति की गई थी। इसमें केंद्रीय अधिकारी प्रमुख थे, जिनमें सबसे ऊपर 'पेरून्दम्' तथा इसके पश्चात निम्न श्रेणी 'शिरूदनम्' थी। अभिलेखों में उडनकूटम नामक अधिकारी का नाम मिलता है, जिसका अर्थ है, सदा राजा के निकट रहने वाला अधिकारी, यह सचिव के समान था। इसका कार्य अन्य विभागों को नीतियां बताना था, तथा कर्मचारियों से संपर्क बनाए रखना। अधिकारियों का पद आनुवंशिक होते थे। इनके विषय में अधिक जानकारी नहीं मिलती है। चोल अभिलेखों से पदाधिकारियों की कार्य-प्रणाली पर प्रकाश पड़ता है कि 'सम्राट' जब किसी विषय पर निर्णय लेता था तब सभी अधिकारी उपस्थित होते थे और 'आले' नामक पदाधिकारी उस निर्णय का कच्चा मसौदा तैयार करता था, और इसकी जांच औलैनायगम् नामक अधिकारी द्वारा की जाती थी तब यह निर्णय लिपिबद्ध करके संबंधित विभाग को भेजे जाते थे। इससे स्पष्ट है कि राजा मौखिक आदेश व निर्णय देता था, जिसे सावधानीपूर्वक लिपिबद्ध किया जाता था।

## स्थानीय स्वशासन

यह निम्नलिखित चरणों में बंटे हुए थे-

**मंडलम्**-चोल प्रशासन में स्थानीय स्वशासन मंडलम् का विशेष महत्व था, इसलिए प्रशासनिक सुविधा हेतु संपूर्ण चोल साम्राज्य को छः प्रांतों में विभक्त किया गया था। प्रांतों

टिप्पणी

को 'मंडलम्' कहा जाता था, इसका शासन एक वायसराय के हाथों में निहित था, और साधारणतः यह पद राजकुमारी को ही दिया जाता था, संभवतः कभी-कभी इस पद पर राजा की इच्छानुसार पराजित शासक सामंत रूप में अथवा किसी अन्य अधिकारी की नियुक्ति भी की जाती थी। इनकी शक्ति केंद्र में ही निहित थी। इसलिए केंद्र सरकार का एक प्रतिनिधि इनकी गतिविधियों पर नजर रखता था। इनके पास अपनी सेना तथा न्यायालय की भी व्यवस्था थी। इनका पद आनुवंशिक था।

**कोट्टम**-मंडलम् को अनेक कोट्टम में विभाजित किया गया था। कोट्टम कमिश्नरियों के समान थे, प्रत्येक कोट्टम में कई जिले होते थे। जिलों को नाडु कहा जाता था।

**नाडु**-नाडु कई गांवों का समूह था। नाडु में होने वाली सभा को नाटार कहा जाता था। इस सभा में गांव व जिलों के प्रतिनिधि शामिल होते थे। इनका प्रमुख कार्य भू-राजस्व वसूलना था, ये किसी का भू-राजस्व माफ भी कर सकते थे, किंतु नाटार को भू-राजस्व को माफ करने का अधिकार नहीं था। नाटार राजकीय पदाधिकारी से मिलकर न्याय प्रशासन एवं अन्य कार्यों में सहयोग करते थे। कुलोतुंग तृतीय के समय में तिरूवारंगलुम् मंदिर के प्राप्त लेख से ज्ञात होता है कि संपूर्ण नाडु का एक संगठन बनाया गया था, जो संभवतः भूमि का प्रबंध व शांति व्यवस्था कायम करने का कार्य भी करता था। 12 नाडुओं की महासभा का उल्लेख राजराज प्रथम के लेख में किया गया है। व्यापारियों की एक सभा थी, जिसे नगरम् कहा जाता था, श्रेणियों को सरकार से मान्यता प्राप्त थी, अपनी सुरक्षा हेतु इनके पास अपनी सेना थी। प्रशासन की सबसे छोटी इकाई ग्राम थी।

**ग्राम शासन**-स्थानीय स्वशासन चोल शासकों की मौलिक उपलब्धि थी। स्वायत्त शासन पूर्णतया ग्रामों में ही संचालित था। ग्राम में मुख्यतः दो प्रकार की संस्थाएं थीं, जो ग्राम की अपनी सभा करती थीं, ये केंद्रीय नियंत्रण से मुक्त, स्वतंत्र होकर काम करती थीं। इनकी कार्यकारिणी समिति का उल्लेख उत्तरमेरूर से प्राप्त लेख में किया गया है। ग्राम की ये दों प्रमुख संस्थाएं निम्नलिखित थीं-

**उर**-इस संदर्भ में डॉ. नीलकंठ शास्त्री के विचार उल्लेखनीय हैं। उनके अनुसार 'उर' का तात्पर्य अवश्य ही पुर से रहा होगा, जो गांव और नगर दोनों के लिए प्रयुक्त रहा होगा। चोल लेखों में ऐसा उल्लेख मिलता है कि ग्रामवासी उर के रूप में मिले (उराय-इशैन्दु-उरोम्) जिसके अनुसार उर की समस्त सभाओं में सभी ग्रामवासी उपस्थित होते थे। इसकी समिति आंलुगणम् कहलाती थी। यह समिति सभी विषयों की गतिविधियों व देख-रेख के लिए उत्तरदायी थी। एक ग्राम में दो उर के संगठनों का भी उल्लेख मिलता है। एक गांव में दो उर पहला हिंदू, देवदान के लोगों के लिए तथा दूसरा, जैन पल्लिच्चदम् लोगों का।

**सभा/महासभा**-यह अग्रहारों (ब्राह्मण वर्ग) की सभा थी। इसके सदस्यों को पेरूमक्कल भी कहा जाता था, इस सभा को पेरूण्गुडि भी कहा जाता था। इनका शासन महाजन नामक संस्था देखती थी। कांची तथा मद्रास क्षेत्रों में ऐसी सभा का उल्लेख चोलमंडलम् के लेखों में किया गया है। इस सभा के कार्यों के लिए अनेक समितियों का निर्माण किया गया था। इन समितियों को 'वारियम्' कहा गया, इसका तमिल में अर्थ

'आय' है। इनके सदस्यों को विशेष कार्य सौंपे जाते थे, जैसे- मंदिर का प्रबंध, देवदान भूमि का लिखित विवरण इत्यादि। ग्राम सभा की सभाएं वृक्षों के नीचे, मंदिर तथा मंडप, तालाब के तटों पर आयोजित की जाती थीं। इनके सदस्यों के निर्वाचन के लिए नियम बनाए गए थे, इनका चुनाव ग्रामवासियों द्वारा किया जाता था। वरियम् की सहायता हेतु उसे अन्य विभागों में विभाजित किया गया था, जिनमें मुख्य हैं-

टिप्पणी

**'पेनवारियम्'**-इसका कार्य मुद्रा का नियम करना था। 'एरिवारियम्' तालाब समिति, 'सम्वत्सर वारियम्' यह अन्य समितियों की देख-रेख करती थी। 'तोट्टवारियम्' उद्यानों की देख-रेख करती थी, 'पच्चवारियम्' स्थायी समिति, 'उदासीन वारियम्' संन्यासियों की संस्था थी 'गणवारियम्' ग्राम के कार्य 'कोयिल्वारियम्' मंदिरों की देख-रेख तथा 'न्यायत्तार वारियम्' न्याय समिति थी 'महाजन' ग्राम के कार्य करती थी।

ग्राम सभा के कार्य विस्तृत थे, वह न्याय करने का कार्य भी देखती थी। इसके कार्यों का उल्लेख चोल अभिलेखों में किया गया। यह अग्रहार भूमि थी, इसलिए भूमि की स्थिति का लेखा-जोखा भी इस संस्था के पास सुरक्षित रहता था। ग्राम सभा के प्रमुख कार्य निम्नलिखित थे-

1. ग्राम की सड़कों का निर्माण व मरम्मत।
2. सिंचाई की उचित व्यवस्था हेतु तालाब व नहरों का निर्माण।
3. धार्मिक कार्यों को देखने जैसे- औषधालयों, पाठशालाओं, मंदिरों का निर्माण के लिए धर्मवारियम् नामक संस्था का निर्माण किया गया था।
4. दोषी को दंड देना व अपराध का पता लगाने का कार्य इसी समिति द्वारा बनाई गई न्यायत्तार समिति करती थी।
5. ग्राम सभा के पास अपने बैंक थे। ग्राम की अक्षयनिधियां ग्राम सभा के अधीन थीं।
6. ग्रामवासियों के स्वास्थ्य, संपत्ति, सुरक्षा का दायित्व भी इसी संस्था पर था।
7. इस संस्था का प्रमुख कार्य केंद्रीय सरकार को वार्षिक कर देना था।

इस प्रकार चोल सभाएं आंतरिक कार्यों में पूरी तरह से स्वतंत्र थी। सुरक्षा, विदेश नीति, आंतरिक शांति, तथा लोक कल्याण के कार्यों में केंद्र थोड़ा बहुत हस्तक्षेप अवश्य करता था। परवर्ती चोल युग में आपसी गुटबंदी, कलह, हिंसा की स्थिति में केंद्र द्वारा हस्तक्षेप के प्रमाण मिलते हैं। ग्राम सभा को प्रभावित करने वाला कोई भी नियम बिना ग्रामसभा की स्वीकृति के केंद्र उस पर लागू नहीं कर सकता था। सामान्यत: दोनों शक्तियों केंद्र व ग्राम सभा के संबंध सौहार्दपूर्ण थे। केंद्र की निर्बल स्थित पर इसका महत्व बढ़ जाता था। इस प्रकार चोल साम्राज्य में स्थानीय स्वशासन की महत्ता स्पष्ट होती है।

## भूमि तथा राजस्व

भू-राजस्व चोल प्रशासन की आय का प्रमुख साधन थी। ग्रामसभाओं द्वारा भूमि कर एकत्र किया जाता था। भूमि की उर्वरता का ध्यान भी इस संस्था की जिम्मेदारी थी। चोल लेखों से

टिप्पणी

भूमि के 12 प्रकारों का उल्लेख मिलता है। भूमिकर, भूमि के वर्गीकरण के आधार पर किए जाते थे। राजा द्वारा भूमि का सर्वेक्षण किया जाता था। चोल शासक भूमि की माप करते थे तथा उसकी उत्पादकता के आधार पर भूमि कर निश्चित किया जाता था। चोल लेखों के वर्णन से ज्ञात होता है कि राजराज प्रथम तथा कुलोतुंग प्रथम द्वारा दो बार भूमि की माप कराई गई थी। उत्पादकता के आधार पर भूमि कर 1/1 से 1/4 तक होता था। किसी भी प्राकृतिक आपदा के कारण भूमिकर में छूट भी दी जाती थी। भूमि कर नकद अथवा द्रव्य रूप में दिए जा सकते थे। इसका लेखा-जोखा राजस्व विभाग की पंजिका में लिखा जाता था, जिसे 'वरित्पोत्तगककणक्क', कहा जाता था। करों को वसूलते समय अधिकारी कठोर व्यवहार अपनाता था। परवर्ती चोल काल में कुछ ऐसे उदाहरण मिलते हैं, जिससे ज्ञात होता कि केंद्रीय शक्ति के निर्बल होने पर स्थानीय पदाधिकारी मनमाने तरीकों से जनता पर अत्याचार करने लगे थे।

राज्य की आय के अन्य साधनों में वन संपदा आयात-निर्यात कर, खनिज खानें, स्थानीय शुल्क लिया जाता था। लेखों से प्राप्त वर्णन के अनुसार स्वर्णकारों उप्पायम् ओल्लुकुनीर पाटाम (जल स्रोत) बाट-माप, दुकानों आदि द्वारा भी कर लिया जाता था, जो नगरम् द्वारा वसूल किया जाता था। राजस्व विभाग के अधिकारी को 'वरित्पोत्कक' कहा जाता था।

## न्याय व्यवस्था

चोल शासकों की न्याय व्यवस्था भी कठोर किंतु नरम थी। राजा ज्वलंत अपराधों का निर्णय स्वयं या उसी के आदेश पर अधिकारियों से करवाता था। न्याय के लिए नियमित न्यायालयों का गठन किया गया था। न्यायालय में न्याय के लिए 'धर्मासन' तथा धर्मासन-भट्ट लेखों में उल्लेख किया गया है। अपराधों का दंड सामान्यत: जुर्माने के रूप में लिया जाता था। हत्या जैसे-कुकृत्यों का उल्लेख सामान्यत: नहीं मिलता है, फिर भी इसके लिए प्रायश्चित हेतु मंदिर में अखंडदीप जलवाने की व्यवस्था करनी होती थी। पशुओं की चोरी के अपराध में संपत्ति जब्त करके मंदिर को दे दी जाती थी। जघन्य अपराधों के लिए सिर काटना, हाथी के पैरों के नीचे कुचलवाना तथा अग्नि व जल परीक्षाओं द्वारा दिव्य परीक्षाओं का विधान था। राजद्रोह सबसे बड़ा अपराध था, जिसके सिद्ध होने पर मृत्युदंड तक दिया जाता था।

इस प्रकार चोल शासकों द्वारा प्रशासन में शांति स्थापना के लिए कठोर किंतु संगठित व निष्पक्ष न्याय व्यवस्था की स्थापना की गई थी।

## सैन्य व्यवस्था

चोल शासक अपनी उत्कृष्ट सैन्य शक्ति के द्वारा ही विशाल साम्राज्य स्थापित करने में सफल रहे। चोल सेना को गुन्रूकई महासेनई कहा जाता था, जिसका अर्थ है कि चोल

सेना के तीन अंग थे- पदाति, अश्वारोहि, गजारोहि। चोलों की सेना के घोड़े अरब देशों से लाए गए थे।

टिप्पणी

युद्ध में चोल सेना का नेतृत्व राजा अथवा युवराज करते थे। सेनापतियों को 'क्षत्रिय शिखामणि' की उपाधि दी जाती थी। दंडनायक व नायक अन्य विशेष अधिकारी थे। युद्ध में विजय के पश्चात शत्रु नगर को ध्वस्त करना, शत्रुओं व स्त्री बच्चों की हत्या व दुर्व्यवहार करना, लूट-पाट करने के लिए चोल सेना कुख्यात थी। चोल सेना छावनियों में रहती थी, जिसे 'कडगम' कहा जाता था। अभिलेखों में चोल सेना के 70 रेजिमेंटों का उल्लेख किया गया है।

इसके अतिरिक्त चोल सेना का एक मुख्य अंग जल सेना भी थी। जिसके द्वारा चेर राज्य ने, लंका, मालद्वीप तथा शैलेन्द्र के राज्यों से टक्कर ली थी। राजराज प्रथम तथा राजेन्द्र प्रथम के काल में जल सेना अधिक शक्तिशाली हो गई थी। बंगाल की खाड़ी पर चोल पर अधिकार हो गया था, उसे चोलों की झोल कहा जाने लगा था।

इस प्रकार चोल शासन व्यवस्था उत्कृष्ट, संगठित थी, तथा वह अपनी शक्तिशाली शासन व्यवस्था के लिए विख्यात थी।

## चोलों का सांस्कृतिक उत्कर्ष

उपरोक्त अध्ययन से यह ज्ञात हो चुका है कि चोल शासक कुशल प्रशासक शक्तिशाली सेनानी, महान योद्धा, धार्मिक, न्यायप्रिय थे, किंतु इसके साथ ही चोल शासक कला प्रेमी, साहित्य निर्माता, कला निर्माता भी थे। चोल शासकों का शासन काल दक्षिण में स्वर्णकाल माना जाता है। चोल शासकों ने भारत को सांस्कृतिक देन के रूप में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

## साहित्य

चोल शासकों के काल में तमिल भाषा की अत्यधिक उन्नति हुई। अनेक ग्रंथों की रचना तमिल में ही की गई। तमिल भाषा में लिखा गया ग्रंथ 'कलिंगत्तुपर्णि' है, जिसकी रचना चोल शासक कुलोतंग प्रथम के राजकवि जयनगोन्दार ने की है तथा उसकी कलिंग घटनाओं का वर्णन किया है। इसी प्रकार 'तमिल रामायण' कुलोत्तुंग तृतीय के काल के प्रसिद्ध कवि 'कम्बन' द्वारा लिखा गया, जो तमिल साहित्य का महाकाव्य कहा जाता है। हुगलेन्दि द्वारा लिखा गया काव्य 'नलवेम्भ' है, जिसमें नल दमयंती की कथा का उल्लेख किया गया है। इसके अतिरिक्त अन्य ग्रंथों की रचना भी मिलती हैं, जैसे- 'शेक्किल्लार' का पेरियपुराणम्; तोलामोल्लि का शूलामणि; तिरूक्तदेवर द्वारा लिखित 'जीवक चिंतमणि' आदि विशेष है।

प्रसिद्ध जैन विद्वान अमृतसागर ने याप्परूगलम् तथा यांप्पयंगलक्कारिगैं नामक ग्रंथ की रचना की। इसी प्रकार बौद्ध विद्वान बुद्धमित्र ने वीर शोल्लियम् की रचना की।

तमिल के अतिरिक्त संस्कृत भाषा में भी कुछ ग्रंथ लिखे गए लेकिन उनकी संख्या अत्यंत अल्प है। संस्कृत ग्रंथों में बैंकट-माधव का ऋग्वेद भाष्य महत्वपूर्ण है। इस काल के प्रमुख संस्कृत लेखक नाथमुनि, रामानुज, यमुनाचार्य हैं।

टिप्पणी

## कला

इस काल में सर्वाधिक विकास कला के क्षेत्र में हुआ। चोल शासक कला प्रेमी तथा कला निर्माता भी थे। चोल कला में दो प्रकार की कला का विकास हुआ- वास्तु तथा तक्षण।

दक्षिण में वास्तु कला द्रविड़ शैली में देखने को मिलती है। चोल शासक ने द्रविड़ शैली के अनेक विशाल, भव्य, आकर्षक मंदिरों का निर्माण करवाया। पल्लव शासकों ने जिस कला का प्रारंभ किया था, चोल शासकों के उत्साह ने उसे अपने चरम पर पहुंचा दिया। चोल काल भारतीय कला का स्वर्णयुग कहा जाता है। फर्गुसन ने कहा है कि 'चोल कलाकारों ने दैत्यों के समान कल्पना की और जौहरियों के समान उसे पूरा किया।'

द्रविड़ शैली के मंदिरों का निर्माण स्थूल, विशाल तथा वर्गाकार होता था, इसके भीतर ही मंदिर का गर्भगृह होता था, चारों और प्रदक्षिणा पथ भी होता था। इन मंदिरों के प्रवेश द्वार, बरामदे, स्तंभयुक्त मंडप विशेष उल्लेखनीय हैं। द्रविड़ शैली में मंदिर का शिखर आयताकार एक-दूसरे के ऊपर रखकर ऊपर की ओर जाता है, इस प्रकार मंदिर का शिखर पिरामिड की तरह होता है। शिखर के ऊपर गुंबद होता है, जिसे 'स्तूपी' या 'स्तूपिका' कहा जाता है।

परांतक प्रथम द्वारा बनावाया गया कोरंगनाथ का मंदिर तीन भागों में विभाजित है- गर्भगृह अंतराज और मंडप। यह मंदिर पल्लव कला से प्रभावित है। इस मंदिर का शिखर 20 फीट ऊंचा तथा मंदिर 50 फीट लंबा हैं। गर्भगृह और मंडप को जोड़कर एक अंतराल बनाया गया। इसके विमान पर काली, लक्ष्मी, सरस्वती तथा काली के नीचे एक राक्षस की मूर्ति भी बनाई गई है। यह मंदिर प्रारंभिक चोल कला का विशेष उदाहरण है। यह मंदिर त्रिचलापल्ली के श्रीनिवासनल्लूर नामक स्थान पर स्थित है।

राजराज प्रथम द्वारा बनवाया गया तंजौर का बृहदेश्वर मंदिर कोरंगनाथ मंदिर से अधिक विकसित है। यह पूरी तरह से चोल कला से प्रभावित है। इसको बनाने में सात साल (1003ई. से 1010 ई.) लगे। यह मंदिर चार भागों में विभाजित है-गर्भगृह, मंडप, अर्धमंडप, बहिर भाग। इस मंदिर का शिखर अद्वितीय है। मंदिर के चारों और चारदीवारी का निर्माण किया गया है। इसके प्रवेश द्वार पर नंदी की प्रतिमा स्थापित की गई है। इसका शिखर 13 मंजिलों का है। यह द्रविड़ कला का सबसे उत्कृष्ट मंदिर है।

राजेन्द्र प्रथम के शासन काल में बनवाया गया गंगकोण्ड चोलपुरम् का मंदिर तंजौर के मंदिर की शैली के सदृश्य है। इसका निर्माण 1030 ई. में हुआ था। यह 102मी. × 33मी. के आयत में बनाया गया। यह मंदिर पांच भागों में विभक्त किया गया है- गर्भगृह, अंतराल, मंडप, अर्ध मंडप, बहिर भाग। मंदिर का प्रवेश द्वारा पूर्व की ओर है, इसके आगे मंडप है, जिसमें 150 स्तंभ हैं। इस मंदिर का शीर्ष भाग तंजौर के मंदिर के समान है। मंदिर के चारों ओर चारदीवारी है, प्रवेश द्वार पर नंदी की प्रतिमा स्थापित की गई है।

टिप्पणी

इसके अतिरिक्त तंजौर का सुब्रह्मण्य मंदिर है जो अपने शिखर के सुंदर अंलकरण के लिए प्रसिद्ध है। तंजौर का ऐरावतेश्वर मंदिर, इसका मंडप रथ के समान है, जो हाथी द्वारा खींचा जा रहा है। यह राजराज द्वितीय के शासनकाल में बनाया गया था। त्रिभुवनम का कम्पहरेश्वर मंदिर का निर्माण कुलोतुंग द्वितीय के शासनकाल में हुआ था, यह अपनी स्थापत्य के लिए प्रसिद्ध है।

चोल कला में स्थापत्य के अतिरिक्त तक्षण कला भी अपने चरम पर थी। मूर्ति कला प्रारंभ में पल्लव कला से प्रभावित है किंतु 10वीं शताब्दी में चोल कला द्वारा निर्मित की गई। इस काल की मूर्तियां धातु व पत्थर से निर्मित की गई। आकृतियों को बड़ी सूक्ष्ममता से बनाया गया है। इन मूर्तियों में देवी-देवता व मानव मूर्तियां भी बनाई गई, इसके अतिरिक्त संत, राजा, भक्त, नटराज की मूर्तियां भी बनाई गई। देवियों तथा विष्णु के विविध रूपों की मूर्तियां तथा 108 मुद्राओं में नर्तकियों की मूर्तियां उल्लेखनीय है। दारासुरम मंदिर मूर्तियों का विशाल संग्रह है, जो नाट्यशास्त्र की सभी मुद्राओं को प्रकट करता है।

इस प्रकार चोल शासकों की कला में अत्यधिक रुचि तथा विद्वानों को आश्रय प्रदान करने के कारण ऐसे अद्भुत उदाहरण प्रस्तुत किए हैं जो उस समय की कला की बारीकियों को दर्शाते हैं तथा आज के कलाकारों के लिए उत्कृष्ट उदाहरण हैं।

## धर्म

चोल शासनकाल में शैव तथा वैष्णव धर्म प्रधान था। चोल शासक स्वयं शैव धर्म के पुजारी थे। शिव की उपासना के भक्तिगीत लिखे जाते थे, तथा मंदिरों में इन गीतों का गान किया जाता था। चोल शासकों द्वारा अनेक शिव मंदिरों का निर्माण किया गया था। चोल शासक परांतक ने चितम्बरम् के नटराज मंदिर को स्वर्ण आभूषणों से सजाया था, राजराज ने शिवपादशेखर की उपाधि धारण की थी। राजेन्द्रचोल ने शैव को दक्षिण में सर्वाधिक लोकप्रिय बनाया। चोल शासकों ने शैव संतों ईशानशित, सर्वशिव को अपना राजगुरु बनाया था।

शैव के पश्चात दूसरा धर्म वैष्णव धर्म अधिक लोकप्रिय था। वैष्णव आलवरों ने भक्ति को दार्शनिक रूप प्रदान किया तथा भक्ति को कर्म और ज्ञान का आधार बताया। अब आलवरों का स्थान आचार्यों ने ग्रहण किया। आचार्यों में प्रथम नाथमुनि तथा अंतिम मधुर कवि था। एक अन्य आचार्य यमुनाचार्य ने आगमों की महत्ता बताते हुए उन्हें वेदों के समकक्ष बताया था। रामानुज ने शंकराचार्य के अद्वैतवाद का खंडन किया है और कहा कि ब्रह्म अद्वैत होते हुए भी चित्त और अचित्त शक्ति विशिष्ट है। मोक्ष के लिए ज्ञान से अधिक भक्ति की आवश्यकता है।

इसका अर्थ यह नहीं है कि चोल शासक धर्म असहिष्णु थे, ऐसा नहीं था वे जनता में अपने धर्म का प्रचार अवश्य करते थे किंतु वे धर्म-सहिष्णु शासक थे। उनके शासन काल में श्रीमूलवास नेगपत्तम् तथा कांची में बौद्ध विहारों का निर्माण किया गया, जैन मंदिरों की भूमि के कर माफ किए गए। इनके शासनकाल में धर्म- असहिष्णुता या अन्य धर्मों, धार्मिक स्थलों या संबंधित व्यक्तियों पर हिंसा के साक्ष्य नहीं मिलते हैं।

टिप्पणी

*महान चोल मंदिर 11वीं और 12वीं सदी के तीन महान मंदिर– तंजावुर में बृहदेश्वर मंदिर गंगईकोंडाचोलिसवरम में बृहदेश्वर मंदिर और दारासुरम में ऐरावतेश्वर मंदिर विश्व विरासत स्थल के रूप में संरक्षित*

## चोल साम्राज्य का पतन

चोल साम्राज्य के पतन के निम्न कारण रहे-

1. **पांड्य शासकों से पराजय** - चोलों का पतन राजराज तृतीय के शासनकाल से ही प्रारंभ होने लगा था। पांड्यों ने राजराज पर आक्रमण करके उसे परास्त किया तथा उसकी राजधानी पर भी अधिकार कर लिया। इस प्रकार से अब चोल शासकों की शक्ति क्षीण होने लगी।
2. **सामंतों का स्वतंत्र होना**- चोलों की शक्ति क्षीण होते ही उनके अधीन सामंत भी स्वतंत्र होने लगे। इसके साथ ही निरंतर सामंतों के विद्रोह भी होने लगे, और धीरे-धीरे चोल शासन का पतन प्रारंभ होने लगा।

### अपनी प्रगति जांचिए

7. चोल साम्राज्य का वास्तविक संस्थापक किसे माना जाता है?

   (क) परान्तक (ख) आदित्य प्रथम

   (ग) विजयालय (घ) अरुमोलिवर्धन

8. यूनानी यात्री 'मेगस्थनीज' किसके शासन काल में भारत आए थे?

   (क) विक्रमादित्य (ख) चंद्रगुप्त

   (ग) आदित्य प्रथम (घ) परांतक

## 2.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

टिप्पणी

1. (ख)
2. (क)
3. (ग)
4. (ख)
5. (क)
6. (ख)
7. (घ)
8. (ख)

## 2.7 सारांश

विंध्य के दक्षिण में पड़ने वाले भारत के भाग को लोग दक्षिण भारत या दक्खन कहते हैं। यह विभाजन दरअसल प्राचीन भारत के उस समय से ही चला आ रहा है, जब विंध्य के दक्षिण में पड़ने वाला क्षेत्र दक्षिणपथ या दक्षिणी क्षेत्र कहलाता था। दक्खन मध्य युग में आकर दक्कन हो गया, जिससे दकन शब्द निकला है। लेकिन इतिहासकारों और भूगोलविदों को मुख्य दकन को शेष दक्षिण भारत से अलग करके देखना उपयोगी लगा। दक्खन में महाराष्ट्र और उत्तरी कर्नाटक आ जाते हैं, और गोदावरी और कृष्णा के दुहरे डेल्टा भी।

सातवाहनों के पतन के बाद दक्षिण या दक्खन पर एक वंश का राजनीतिक कब्जा समाप्त हो गया। कई राज्य अलग-अलग क्षेत्रों में सातवाहनों के उत्तराधिकारियों के रूप में उभर कर आए। उत्तरी महाराष्ट्र में हम अमीरों को देखते हैं, जिन्होंने कुछ समय तक शक राज्यों में सेनापतियों का काम किया, और मध्य तीसरी शताब्दी में ईश्वरसेन ने एक राज्य की स्थापना की, जिसके फलस्वरूप 248-49 ई. में एक युग की शुरुआत हुई। बाद में यह युग बहुत महत्वपूर्ण हो गया और इसे कलचुरी चेदी युग के नाम से जाना गया।

चालुक्य वंश का प्रथम सम्राट जयसिंह था जिसने कदंबों और राष्ट्रकूटों से लड़कर अपने एक स्वतंत्र राज्य की स्थापना की। जयसिंह के पुत्र रणराज ने साम्राज्य को मात्र सुरक्षित रखा परंतु इसके पुत्र पुलकेशिन प्रथम को चालुक्य वंश का वास्तविक संस्थापक माना जाता है क्योंकि वह प्रथम स्वतंत्र सम्राट था। इसने अपने साम्राज्य का विस्तार किया तथा अश्वमेध यज्ञ कराकर अपनी प्रतिभा सिद्ध की। इसकी राजधानी बादामी थी।

पल्लव वंश से जुड़े विभिन्न लेख मिलते हैं, जो मंदिरों, ताम्रपत्रों, शिलाओं, स्तंभों व मुद्राओं पर उत्कीर्ण कराए गए थे। इन लेखों से पल्लवकालीन शासकीय स्थितियां, प्रशासन, संस्कृति इत्यादि की जानकारी प्राप्त होती है। इस काल में लिखे गए लेखों की भाषा प्राकृत तथा संस्कृत है।

टिप्पणी

पल्लव वंश के शासकों ने जिस शक्ति व सूझ-बूझ से अपना साम्राज्य विस्तार करके उसे संभाला, ठीक वैसे ही पल्लव काल में विद्या, साहित्य, कला की उन्नति हुई। यह काल जितना पल्लव शासकों की वीरता, अदम्य साहस के लिए जाना जाता है, उससे कहीं अधिक कला के विकास के लिए जाना जाता है। इस काल में कला चारों ओर फैल रही थी, इसका कारण पल्लव शासकों द्वारा विद्वानों को आश्रय देना था। पल्लव शासक स्वयं विद्यानुरागी, व कला प्रेमी थे। यदि इस काल से युद्ध, विजय, साम्राज्य इत्यादि को हटा दें, फिर भी इस काल की महत्ता कम नहीं होती है।

चालुक्य वंश की मुख्य शाखा के पतन के बाद आठवीं शताब्दी के मध्य राष्ट्रकूट वंश का उदय हुआ। इस वंश की उत्पत्ति तथा मूल स्थान के बारे में मतभेद हैं। राष्ट्रकूटों ने अपने अभिलेख में स्वयं को यदुवंशी बताया है। इसी प्रकार अनेक साक्ष्य इनकी उत्पत्ति के विषय में अलग-अलग मत प्रस्तुत करते हैं। इंद्र द्वितीय के पुत्र दंतिदुर्ग ने राष्ट्रकूट वंश की राजनीतिक सत्ता की स्थापना की। ऐलोरा अभिलेख से ज्ञात होता है कि दंतिदुर्ग ने चालुक्यों को परास्त किया और मालवा, कौशल, कलिंग आदि को जीता, दंतिदुर्ग ने 756 ई. तक शासन किया।

राष्ट्रकूट नरेश बड़े ही विद्यानुरागी, साहित्य-प्रेमी और विद्वानों तथा साहित्यकारों के आश्रयदाता थे। फलतः उनके संरक्षण तथा प्रोत्साहन में साहित्य का बड़ा विकास हुआ।

चालुक्यों के शासनकाल में कलाओं की पर्याप्त उन्नति हुई। जैनों और बौद्धों के अनुकरण में हिंदू देवताओं के लिए भी गुहा मंदिरों का निर्माण करवाना चालुक्य कला की एक महत्वपूर्ण देन है। अजंता व एलोरा की गुफाओं में कुछ गुफाओं का निर्माण चालुक्यों ने किया था। एलोरा में कुछ विख्यात चित्र स्थापत्य के हैं; जैसे कैलाश पर्वत के नीचे रावण, नृत्य करते हुए भगवान शिव, हिरण्यकश्यप का वध करते हुए नृसिंह भगवान। इसके अतिरिक्त विरुपाक्ष मंदिर सबसे प्रसिद्ध है, जिसमें भित्ति चित्रों द्वारा रामायण की कथाओं को दिग्दर्शित किया गया है। चालुक्य राजाओं की धर्मसहिष्णुता की नीति उदारता, विद्या प्रेम और विद्वानों के संरक्षण ने साहित्य सृजन के अवसर प्रदान किए। जैन आचार्यों ने मराठी, कन्नड़ तथा तेलगू नामक प्रांतीय भाषाओं के साहित्य सृजन की नींव डाली।

चोलों की उत्पत्ति के प्रश्न पर विद्वानों में मतभेद है। इस संबंध में विद्वानों के विभिन्न मत हैं। चोलों की प्राचीनता इस बात से सिद्ध होती है कि महाभारत में चोलों का उल्लेख किया गया है, चंद्रगुप्त के शासनकाल में आए यूनानी यात्री 'मेगस्थनीज' के विवरण में चोलों का उल्लेख किया गया है। अशोक के अभिलेख में सीमांत राज्यों के रूप में चोल शासकों का उल्लेख मिलता है। पेरीप्लस ने अपने ग्रंथ में चोलप्रदेश के बंदरगाहों का उल्लेख किया है। इससे चोलों की प्राचीनता तो सिद्ध होती है किंतु चोलों के विषय में मतभेद अभी शेष है।

चोल वंश शक्तिशाली सम्राटों का वंश था और निश्चित ही चोल शासकों ने एक सुनियोजित शासन व्यवस्था की स्थापना की थी। उनका साम्राज्य अब पूर्वी समुद्र से लेकर पश्चिमी समुद्री तट तक फैला हुआ था। चोल संस्कृति का सर्वाधिक महत्वपूर्ण पक्ष चोलों की शासन-व्यवस्था है। उन्होंने राजतंत्रात्मक शासन-व्यवस्था की स्थापना की थी। प्रत्येक

शासक की शासन-व्यवस्था केंद्रीय हुआ करती थी, किंतु चोल शासन व्यवस्था में स्थानीय स्वायत्तता पर अधिक जोर दिया गया था। इस शासन व्यवस्था का केंद्र राजा था, और राजा ही सर्वोपरि था।

टिप्पणी

## 2.8 मुख्य शब्दावली

- **दक्खन** : दक्षिण।
- **उपाधि** : पदवी, पद।
- **समुचित** : उपयुक्त।
- **संरक्षक** : रक्षा करना।
- **अनुष्ठान** : धार्मिक आयोजन।
- **विद्यानुरागी** : विद्या में अनुराग रखने वाला।
- **अराजकता** : शासन का अभाव, अव्यवस्था।
- **पतन** : विनाश, समाप्ति।
- **नगण्य** : शून्य।
- **उत्कर्ष** : उन्नति, श्रेष्ठता।
- **तडाग** : तालाब।
- **प्रवर्तक** : स्थापना करने वाला।
- **प्रांगण** : आंगन।
- **द्वारपाल** : द्वार पर पहरा देने वाला।

## 2.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

### लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. पल्लवों का उदय कब हुआ था?
2. कला के क्षेत्र में राष्ट्रकूटों का क्या योगदान है? स्पष्ट कीजिए।
3. चालुक्य वंश की कौन–कौन सी शाखाएं थीं? उल्लेख कीजिए।
4. चोल साम्राज्य के पतन के कारणों का वर्णन कीजिए।
5. एलोरा का मंदिर किसने बनवाया था?

### दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. दक्षिण भारत के प्रमुख राजवंशों का वर्णन कीजिए।
2. पल्लवकालीन प्रशासकों की विशेषताएं बताइए।
3. राष्ट्रकूट की ऐतिहासिकता एवं संस्कृति का विवेचन कीजिए।

4. चालुक्य वंश की उत्पत्ति एवं उसके प्रशासकों का वर्णन कीजिए।
5. चोल वंश की स्थापना एवं चोल प्रशासन की गतिविधियों की समीक्षा कीजिए।

टिप्पणी

## 2.10 सहायक पाठ्य सामग्री


1. बी. चटोपाध्यायः एज ऑफ कुषान।
2. चौधरी, राधाकृष्णनः प्राचीन भारत का राजनैतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, भारती भवन, पटना, 2003।
3. झा एंड श्रीमालीः प्राचीन भारत का इतिहास, हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 2002।
4. झा, डी. एन.ः प्राचीन भारत; एक रूपरेखा, पीपल्स पब्लिशर्स हाउस, नई दिल्ली, 2005।
5. मजूमदार, ए. के.ः द हिस्ट्री एंड कल्चर ऑफ द इंडियन पीपल, ''द क्लासिकल एज'' वाल्यूम–III, भारतीय विद्या भवन, मुंबई।
6. पुरी, बी. एन.ः इंडिया अंडर द कुषान।
7. मजूमदार, आर. सी.ः (''द हिस्ट्री एंड कल्चर ऑफ इंडियन पीपल, वाल्यूम III,ः द क्लासिक एज भारतीय विद्या भवन, मुंबई, 1954'')।
8. श्रीवास्तव, के. सी.ः प्राचीन भारत का इतिहास द संस्कृति, इलाहाबाद, 2005।
9. शर्मा, रीताः ''प्राचीन भारत का इतिहास'' मोतीलाल बनारसी दास, 1998।
10. पाण्डेय, विमल चंदः ''प्राचीन भारत का राजनैतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास'', (वाल्यूमः II) सैंट्रल बुक डिपो, इलाहाबाद, 1980।

# इकाई 3 मध्य भारत के राजवंश

टिप्पणी

## संरचना

3.0 परिचय
3.1 उद्देश्य
3.2 राजपूतों, गुर्जर प्रतिहारों की उत्पत्ति
3.3 चंदेल
3.4 कलचुरी
3.5 परमार
3.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
3.7 सारांश
3.8 मुख्य शब्दावली
3.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
3.10 सहायक पाठ्य सामग्री

## 3.0 परिचय

भारतीय इतिहास में राजपूत युग का अति महत्वपूर्ण स्थान है। इस युग में जहां एक ओर उत्तरी भारत अनेक छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त हो गया था जिनमें प्राय: युद्ध होता रहता था वहीं दूसरी ओर जब भारत पर तुर्कों के आक्रमण आरंभ हुए तो भारत की राजनीतिक स्वतंत्रता की रक्षा का भार इन्हीं राजपूत राज्यों को उठाना पड़ा था। राजपूत शासकों ने भारतीय संस्कृति और सभ्यता का संरक्षण करते हुए उसे विकास पथ पर अग्रसर किया था। राजपूत राज्यों की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक और स्थापत्य कला संबंधी उपलब्धियां भारतीय इतिहास वर्णन की प्रमुख सामग्री है।

प्राचीन भारतीय इतिहास में गुर्जर प्रतिहार वंश का भी बड़ा महत्व है। इस वंश की स्थापना हरिश्चंद्र नामक एक राजा ने की थी, परंतु वास्तविक तथा प्रथम शासक नागभट्ट था। इस वंश के प्रतापी राजाओं ने उत्तरी भारत के अधिकांश भाग को अपने अधीन रखा था।

चंदेलों के संबंध में अधिक साक्ष्य उपलब्ध नहीं हैं, फिर भी उपलब्ध साक्ष्यों से चंदेलों के विषय में जानकारी प्राप्त होती है। चंदेल भी चालुक्यों की भांति सामंत थे, ये प्रतिहार राजाओं के सामंत थे। साक्ष्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि इनका प्रथम शासक 'नन्नुक' था। 10वीं शताब्दी के पश्चात जब राष्ट्रकूटों, प्रतिहारों और पालों का पतन हो गया तब चंदेलों ने अपनी शक्ति स्थापित की। चंदेल शासक अपने पराक्रम और रण कौशल से अधिक अपनी कला (स्थापत्य व वास्तुकला) के लिए प्रसिद्ध थे। उनकी कला का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण आज भी खजुराहो के रूप में उपलब्ध है जो विश्वविख्यात है।

कलचुरी राजवंश की स्थापना कोकल्ल प्रथम ने लगभग 845 ई. में की थी। उसने त्रिपुरी को अपनी राजधानी बनाया था।

टिप्पणी

पूर्व मध्यकालीन राजपूत वंशों में परमार वंश भी प्रमुख स्थान रखता है। नवीं शताब्दी से ग्यारहवीं शताब्दी तक परमारों ने मालवा पर शासन किया। इतिहास में परमारों का वही स्थान है जो प्रतिहारों या चंदेलों का है। परमार शासक वीर तथा महत्वाकांक्षी थे। अपने पराक्रम से उन्होंने अपने समकालीन वंशों से टक्कर ली और साम्राज्य का विस्तार किया। राजनीति के अतिरिक्त परमारों का सांस्कृतिक महत्व भी कम नहीं है। प्रारंभ में वे राष्ट्रकूटों के सामंत थे। इस वंश का सबसे शक्तिशाली एवं स्वतंत्र शासक श्रीयक हर्ष था। परमारों की अनेक शाखाओं के नाम मिलते हैं– लाट एवं मालवा के परमार, चंद्रावती एवं अर्बुद के परमार, बांसवाड़ा के परमार, जलोर के परमार, किरदु के परमार, बागड़ के परमार, मौनमाल के परमार, आबू के परमार, गायकवाड़ के परमार, मिनमाल के परमार।

प्रस्तुत इकाई में मध्य भारत के राजवंशों राजपूत, गुर्जर प्रतिहार, चंदेल, कलचुरी, व परमार राजवंश की उत्पत्ति, इतिहास आदि तथ्यों का विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

## 3.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- राजपूत एवं गुर्जर प्रतिहारों की उत्पत्ति एवं वंशावली को जान पाएंगे;
- चंदेल वंश के इतिहास और विकास को समझ पाएंगे;
- कलचुरी राजवंश की उत्पत्ति एवं इतिहास को जान पाएंगे;
- परमार शासकों की उपलब्धियों से परिचित हो पाएंगे।

## 3.2 राजपूतों, गुर्जर प्रतिहारों की उत्पत्ति

हर्ष के साम्राज्य के पतन के बाद, भारत एक अशांत और अस्थिर स्थिति से गुजरा। उस समय अरबों और तुर्कों के हमलों से यह और संकटग्रस्त हो गया था। इसलिए, जैसा कि प्राचीन भारत में कई बार हुआ था, ब्राह्मणों ने अपनी संस्कृति और धर्म की रक्षा के लिए हथियार उठाए और उन्हें क्षत्रिय–राजपूत और अंततः राजपूत कहा गया।

### भारत में राजपूतों का उदय

पुष्यभूति राजा हर्षवर्धन की मृत्यु के उपरांत देश के विभिन्न भागों में छोटे–छोटे राज्यों की स्थापना हुई। इन राज्यों के शासक राजपूत थे। इसलिए इस युग को 'राजपूत युग' कहा जाता है। इस युग का आरंभ 648 ई. में हर्ष की मृत्यु से होता है और इसका अंत 1206 ई. में भारत में मुस्लिम राज्य की स्थापना से होता है।

### राजपूत युग का महत्व

भारतीय इतिहास में राजपूत युग का बड़ा महत्व है। इस युग में भारत पर मुसलमानों के आक्रमण आरंभ हुए। लगभग साढ़े पांच शताब्दियों तक राजपूत योद्धाओं ने वीरता तथा साहस के साथ मुस्लिम आक्रांताओं का सामना किया और देश की स्वतंत्रता की

रक्षा करते रहे। यद्यपि वे अंत में विदेशी आक्रांताओं से परास्त हुए परन्तु लगभग छः शताब्दियों तक उनके द्वारा की गई देश सेवा भारत के इतिहास में अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान रखती है। राजपूत शासकों में कुछ ऐसे विशिष्ट गुण थे, जिनके कारण उनकी प्रजा उन्हें आदर की दृष्टि से देखती थी। राजपूत योद्धा अपने वचन का पक्का होता था और किसी के साथ विश्वासघात नहीं करता था। वह शत्रु को पीठ नहीं दिखाता था। वह रणक्षेत्र में वीरतापूर्वक युद्ध करते हुए वीरगति प्राप्त करना पसंद करता था। राजपूत योद्धा, निःशस्त्र शत्रु पर प्रहार करना महापाप और शरणागत की रक्षा करना परम धर्म समझता था। वह रणप्रिय होता था और रणक्षेत्र ही उसकी कर्मभूमि होती थी। वह देश की रक्षा का संपूर्ण भार वहन करता था।

टिप्पणी

राजपूत योद्धाओं के गुणों की प्रशंसा करते हुए कर्नल टॉड ने लिखा है– 'यह स्वीकार करना पड़ेगा कि राजपूतों में उच्च साहस, देशभक्ति, स्वामी–भक्ति, आत्म–सम्मान, अतिथि–सत्कार तथा सरलता के गुण विद्यमान थे।' डॉ. ईश्वरी प्रसाद ने राजपूतों के गुणों की प्रशंसा करते हुए लिखा है– 'राजपूत में आत्म–सम्मान की भावना उच्च कोटि की होती थी। वह सत्य को बड़े आदर की दृष्टि से देखता था। वह अपने शत्रुओं के प्रति भी उदार था और विजयी हो जाने पर उस प्रकार की बर्बरता नहीं करता था, जिनका किया जाना मुस्लिम–विजय के फलस्वरूप अवश्यम्भावी था। वह युद्ध में कभी बेईमानी या विश्वासघात नहीं करता था और गरीब तथा निरपराध व्यक्तियों को कभी क्षति नहीं पहुंचाता था।' राजपूत राजाओं ने देश को धन–धान्य से परिपूर्ण बनाने के अथक प्रयास किये।

सांस्कृतिक दृष्टि से भी राजपूत युग का बड़ा महत्व है। उनके शासन काल में साहित्य तथा कला की उन्नति हुई और धर्म की रक्षा का प्रयत्न किया गया। राजपूत राजाओं ने अपनी राजसभाओं में कवियों तथा कलाकारों को प्रश्रय, पुरस्कार तथा प्रोत्साहन दिया। इस काल में असंख्य मंदिरों एवं देव प्रतिमाओं का निर्माण हुआ और मंदिरों को दान–दक्षिणा से संपन्न बनाया गया।

## राजपूत शब्द की व्याख्या

राजपूत शब्द संस्कृत के 'राजपुत्र' का बिगड़ा हुआ स्वरूप है। प्राचीन काल में राजपुत्र शब्द का प्रयोग राजकुमारों तथा राजवंशों के लोगों के लिए होता था। प्रायः क्षत्रिय ही राजवंश के होते थे, इसलिए 'राजपूत' शब्द सामान्यतः क्षत्रियों के लिए प्रयुक्त होने लगा। जब मुसलमानों ने भारत में प्रवेश किया तब उन्हें राजपुत्र शब्द का उच्चारण करने में कठिनाई हुई, इसलिए वे राजपुत्र के स्थान पर राजपूत शब्द का प्रयोग करने लगे।

## राजपूतों की उत्पत्ति का इतिहास

राजपूतों की उत्पत्ति के बारे में विद्वानों में कोई सहमति नहीं है। कई विद्वानों द्वारा यह कहा गया है कि राजपूत विदेशी आक्रमणकारियों जैसे कि शक, कुषाण, श्वेत–हूण आदि के वंशज हैं। ये सभी विदेशी, जो स्थायी रूप से भारत में बस गए थे, हिंदू समाज के भीतर लीन थे और उन्हें क्षत्रियों का दर्जा दिया गया था।

इसके बाद ही उन्होंने प्राचीन क्षत्रिय परिवारों से अपने वंश का दावा किया। अन्य मत यह है कि राजपूत प्राचीन ब्राह्मण या क्षत्रिय परिवारों के वंशज हैं और यह केवल कुछ विशेष परिस्थितियों के कारण है कि उन्हें राजपूत कहा जाता है।

टिप्पणी

राजपूतों की उत्पत्ति के विषय में सबसे पहले और बहुत अधिक विवेचित राय यह है कि सभी राजपूत परिवार गुर्जर जाति के वंशज थे और गुर्जर विदेशी मूल के थे। इसलिए, सभी राजपूत परिवार विदेशी मूल के थे और केवल, बाद में, उन्हें भारतीय क्षत्रियों के बीच रखा गया था और उन्हें राजपूत कहा जाता था। इस दृष्टिकोण के अनुयायियों का तर्क है कि हम छठी शताब्दी के बाद के समय में ही भारत में घुसे थे, तब हम गिजारों के संदर्भ पाते हैं।

इसलिए, वे भारतीय मूल के नहीं बल्कि विदेशी थे। कनिंघम ने उन्हें कुषाणों के वंशज के रूप में वर्णित किया। ए.एम.टी. जैक्सन ने वर्णन किया कि खजरा नामक एक जाति चौथी शताब्दी में आर्मिनिया में रहती थी। जब हूणों ने भारत पर हमला किया, तो खजरस भी भारत में घुस आए और दोनों ने छठी शताब्दी की शुरुआत में खुद को यहां बसाया। भारतीयों द्वारा इन खजरस को गुर्जर कहा जाता था। कल्हण ने नौवीं शताब्दी में पंजाब में शासन करने वाले गुर्जर राजा, अलखाना के शासनकाल की घटनाओं का वर्णन किया है।

राजपुताना के एक भाग को नौवीं शताब्दी में गुर्जर–प्रदेश कहा जाता था, जबकि दसवीं शताब्दी में, गुजरात को गुर्जर कहा जाता था। इसलिए, कुछ विद्वानों ने वर्णन किया है कि गुर्जर अफगानिस्तान के माध्यम से भारत में प्रवेश करते थे, खुद को भारत के विभिन्न हिस्सों में बसाते थे और राजपूतों के पूर्वज थे। 959 ईस्वी के राजोरा में एक पत्थर के शिलालेख में विजयखंड के एक सामंती प्रमुख माथेन्दो को गुर्जर–प्रतिहार के रूप में वर्णित किया गया है।

इससे यह निष्कर्ष निकला कि प्रतिहार भी गुर्जर जाति की एक शाखा थे। चालुक्यों ने उस विशेष क्षेत्र को गुजरात का नाम दिया। इसका अर्थ था कि चालुक्य भी गुर्जर थे। पृथ्वीराज रासो ने यह भी वर्णन किया कि प्रतिहार, चालुक्य, परमारों और चौहानों की उत्पत्ति एक यज्ञीय अग्नि–कुंड से हुई, जिसने राजपूतों के विदेशी मूल के सिद्धांत का समर्थन किया।

इसलिए, कई विद्वानों ने वर्णन किया कि राजपूतों के सभी बत्तीस कुलों की उत्पत्ति गुर्जर से हुई जो विदेशी थे और इस प्रकार, सभी राजपूत विदेशी थे और उन्हें बाद में क्षत्रियों का दर्जा प्रदान किया गया था।

हालांकि, आधुनिक इतिहासकारों के बहुमत से इस दृष्टिकोण को स्वीकार नहीं किया गया है। यह निश्चित नहीं है कि खज्जरों को गुर्जर कहा जाता था। परमार को छोड़कर, बाकी तीन राजपूत कुल ने अपने बलिदान को अग्नि–कुंड से बाहर करने से इनकार कर दिया। इस बात का कोई प्रमाण नहीं है कि इन चार राजपूत वंशों के खून के रिश्ते थे, इसके विपरीत, यह अधिक विश्वसनीय माना गया है कि गुर्जर के भीतर परमार और चालुक्यों का कोई संबंध नहीं था।

किसी भी प्रारंभिक मुस्लिम रिकॉर्ड में उल्लेख नहीं किया गया है कि गुर्जर एक कबीले थे, बल्कि एक विशेष क्षेत्र को गुर्जर कहा जाता है। भारत में, कई परिवारों का नाम इस क्षेत्र के नाम पर रखा गया था। इसलिए, यह स्वीकार करना अधिक तर्कसंगत है कि प्रतिहार वह कबीला था जिसने गुर्जर–राज्य पर कब्जा कर लिया था।

अरब विद्वानों, सुलेमाना और अबू जैद ने जुरज को एक राज्य के रूप में वर्णित किया और उन्होंने गुर्जर–राज्य के लिए जुरज शब्द का इस्तेमाल किया। इसलिए,

आधुनिक इतिहासकारों ने इस दृष्टिकोण को स्वीकार करने से इनकार कर दिया कि सभी राजपूत कुल गुइजर के वंशज थे और चूंकि गुइजर विदेशी थे, इसलिए सभी राजपूतों का विदेशी मूल था।

टिप्पणी

टॉड ने, राजस्थान के अपने एनल्स एंड एंटीक्विटीज़ में, घोषणा की कि राजपूतों के मूल सिथियन थे। उन्होंने विदेशियों जैसे सकास, कुषाणों और हूणों आदि और राजपूतों के रिवाजों के बीच समानताएं व्यक्त कीं। उन्होंने कहा कि अश्वमेध–यज्ञ, घोड़े की पूजा और हथियारों और समाज में महिलाओं की स्थिति इन विदेशियों और राजपूतों के बीच समान थी और इसलिए, घोषित किया गया कि राजपूत इन विदेशियों के वंशज थे।

विलियम ब्रूक ने टॉड के दृष्टिकोण का समर्थन किया। उन्होंने कहा कि राजपूतों के कई पारिवारिक नामों का पता इन विदेशियों के आक्रमण की अवधि और विशेष रूप से हूणों के काल से लगाया जा सकता है और इस प्रकार विदेशियों से उनकी उत्पत्ति के सिद्धांत को सही ठहराया जाता है।

उन्होंने कहा कि यहां तक कि गुर्जर भी विदेशी थे, जो हूणों के आक्रमणों के समय भारत आए थे, हिंदू धर्म स्वीकार किया, भारतीयों के साथ विवाह संबंधों में प्रवेश किया और इस प्रकार, कई राजपूत परिवारों को जन्म दिया। बाद में, उन्होंने प्राचीन सौर या चंद्र क्षत्रिय राजवंशों से अपना वंश स्थापित करने की कोशिश की।

डॉ. वी.ए. स्मिथ ने उसी दृष्टिकोण का समर्थन किया। उन्होंने देखा कि हूणों के आक्रमणों ने भारतीय समाज को गंभीर रूप से प्रभावित किया जिसने कई सामाजिक परिवर्तन लाए और कई नए शासक राजवंशों की स्थापना की। इसलिए, राजपूत परिवारों में कई लोग विदेशियों के हैं, जबकि कई अन्य क्षत्रिय परिवारों के हैं।

डॉ. ईश्वरी प्रसाद और डॉ. भंडारकर ने भी राजपूतों के विदेशी मूल के इस सिद्धांत को स्वीकार किया है। डॉ. ईश्वरी प्रसाद राजपूतों को निम्न–जन्म के क्षत्रिय नहीं मानते। हालांकि, वह स्वीकार करता है कि हिंदू समाज के भीतर विदेशी आक्रमणकारियों के अवशोषण से राजपूतों की उत्पत्ति हुई।

पृथ्वीराज चौहान के दरबारी कवि, चंदबरदाई की कुछ विशेष मान्यताएं कहती हैं कि राजपूतों की उत्पत्ति एक अग्नि–कुंड से हुई थी। उनके अनुसार जब परशुराम ने सभी क्षत्रियों का विनाश किया तब प्राचीन ऋषियों ने वैदिक धर्म की रक्षा के लिए माउंट आबू में यज्ञ किया था।

उस यज्ञ में से चार वीर पैदा हुए थे और इन वीरों के वंशज चार राजपूत परिवारों के थे, चौहान, सोलंकी या चालुक्य, परमार और प्रतिहार। यह राजपूतों के विदेशी मूल के दृष्टिकोण का भी समर्थन करता है।

लेकिन पंडित गौरी शंकर ओझा ने उपरोक्त दृष्टिकोण का खंडन किया है अपनी पुस्तक 'द हिस्ट्री ऑफ राजपुताना' में। वे कहते हैं कि भारत में बसने वाले विदेशियों के रीति–रिवाजों के बीच कर्नल टॉड द्वारा खींची गई समानताएं राजपूतों के विदेशी होने के दृष्टिकोण को उचित नहीं ठहराती हैं। इन विदेशी आक्रमणकारियों के आने से पहले इन रिवाजों में से अधिकांश बड़े हो गए थे।

इसलिए, राजपूतों ने अपने विदेशी मूल के कारण इन रीति–रिवाजों का पालन नहीं किया। इसके विपरीत, इन विदेशियों ने भारतीय होने की प्रक्रिया में इन भारतीय

टिप्पणी

रीति–रिवाजों को स्वीकार किया। वह आगे कहता है कि राजपूतों को नस्ल या भौतिक सुविधाओं के आधार पर विदेशी मूल का होना स्वीकार नहीं किया जा सकता। इसलिए, वह राजपूतों को प्राचीन क्षत्रिय परिवारों के वंशज मानते हैं। डॉ. चिंतामणि भी इस दृष्टिकोण का समर्थन करते हैं।

डॉ. आर.सी. मजूमदार जैसे कुछ आधुनिक इतिहासकार डॉ. हरिराम और डॉ. दशरथ शर्मा कहते हैं कि अधिकांश राजपूत परिवार प्राचीन क्षत्रिय या ब्राह्मण परिवारों के वंशज हैं, हालांकि, कुछ परिवारों का वंश संदिग्ध है। डॉ. आर.सी. मजूमदार का तर्क है कि राजपूतों को उनकी जाति के विदेशियों के कुछ समानांतर रीति–रिवाजों के आधार पर विदेशी मूल का होना स्वीकार नहीं किया जा सकता।

बेशक, विदेशी लोगों को हिंदू समाज के भीतर स्वीकार किया गया और निचले क्षत्रियों का दर्जा दिया गया, लेकिन तथ्य हमें इस दृष्टिकोण को स्वीकार करने की अनुमति नहीं देते हैं कि भारत की राजनीतिक शक्ति हिंदू धर्म में इन नए धर्मान्तरित लोगों के हाथों में चली गई थी। हर्ष की मृत्यु के बाद, अधिकांश शासक राजवंश प्राचीन क्षत्रिय परिवारों के थे।

पुराणों और यहां तक कि बाणभट्ट के हर्ष–वर्ण में राजपूत शब्द का प्रयोग क्षत्रिय–राजाओं के पुत्रों के लिए किया गया है। बाद में, राजपूत शब्द का विरूपण राजपूत हो गया। इसलिए, राजपूत हिंदू क्षत्रिय परिवारों के वंशज थे। हालांकि, उन सभी क्षत्रिय राजकुमारों ने, जिन्होंने हर्ष की मृत्यु के बाद अपने स्वतंत्र राज्य स्थापित किए, खुद को राजपूत कहा।

बेशक, कुछ विदेशी लोगों ने भी उत्तर–पश्चिम और भारत के पश्चिमी हिस्से में अपने स्वतंत्र राज्य स्थापित किए और जब उन्हें हिंदू समाज के भीतर स्वीकार किया गया, तो वे शासक थे, खुद को राजपूत भी कहते थे और इस तरह स्वीकार किए जाते थे। इसलिए, इसमें कोई संदेह नहीं है कि अधिकांश राजपूत परिवार भारतीय मूल के हैं, लेकिन उनमें से कुछ विदेशियों के बीच से हैं।

उन्होंने कहा कि ज्यादातर राजपूत हिंदू क्षत्रिय या ब्राह्मण परिवारों के वंशज हैं। वे लिखते हैं कि मेवाड़ के गुहिलोट राजपूत परिवार के वास्तविक संस्थापक शासक बप्पा रावल, एक ब्राह्मण, गुर्जर–प्रतिहार वंश के संस्थापक, हरिसन, एक ब्राह्मण थे, जिनकी एक पत्नी क्षत्रिय थी और दूसरी एक ब्राह्मण थी, जो चंदेल–राजपूत थीं। ऋषि चंद्रत्रेय के वंशज हैं जो चंद्रमा से पैदा हुए थे; परमार–राजपूत क्षत्रिय राष्ट्रकूट–परिवार से अपनी उत्पत्ति का दावा करते हैं; और बादामी के चालुक्य क्षत्रिय थे।

डॉ. दशरथ शर्मा ने डॉ. मजूमदार के विचार का समर्थन किया है। उनकी पुस्तक 'अर्ली चौहान राजवंशों' में प्राचीन शिलालेखों और सिक्कों के आधार पर, उन्होंने टॉड द्वारा व्यक्त की गई राजपूतों के विदेशी मूल के दृश्य और बलिदान की कहानी को भी सही ठहराया है। वी.ए. स्मिथ, भंडारकर ने कहा कि चौहानों, गुहिलों, पल्लवों, कदंबों, प्रतिहारों और परमारों जैसे राजपूतों के सभी महत्वपूर्ण राजवंशों के संस्थापक ब्राह्मण थे।

इस प्रकार, यह विचार कि राजपूत ज्यादातर विदेशी जातियों से संबंधित थे, वर्तमान में नहीं है। बेशक, कुछ परिवारों की उत्पत्ति का पता विदेशियों से लगाया जा

सकता है, लेकिन अधिकांश राजपूत भारत के आदिवासियों के वंशज हैं और या तो वे ब्राह्मण थे या क्षत्रिय थे।

टिप्पणी

## राजपूत वंश के प्रमुख शासक

राजपूत वंश के प्रमुख शासकों का वर्णन इस प्रकार है–

### बप्पा रावल

यह राजपूत शासक अपने धर्म और संस्कृति की मजबूती और गौरव के लिए जाना जाता था। यह गहलोत राजवंश का आठवां शासक था। मेवाड़ राज्य की स्थापना उसी के द्वारा 734 ईस्वी में की गयी थी जोकि वर्तमान में राजस्थान है। आठवीं सदी में उसने अरब आक्रमणकारियों के खिलाफ युद्ध लड़ा था और उन्हें पराजित किया था।

### राणा कुम्भा

यह महाराणा कुम्भकर्ण के नाम से भी चर्चित था। वह सिसोदिया वंश से संबंधित था। उसके पिता का नाम राणा मोकल और माता का नाम सोभाग्या देवी था। उसे गुजरात और दिल्ली के शासकों के द्वारा हिन्दू–सुरत्न की उपाधि दी गयी थी।

### पृथ्वीराज चौहान

पृथ्वीराज चौहान (1168 ईस्वी–1192 ईस्वी) चौहान वंश का प्रमुख शासक था। उसने 12वीं सदी के दौरान उत्तरी भारत के अधिकांश भागों पर अपना राज्य स्थापित किया था और शासन कार्य किया था। वह कथित तौर पर दिल्ली की गद्दी पर बैठने वाला दूसरा अंतिम हिंदू राजा था। जब वह 1179 ईस्वी में सिंहासन पर बैठा तब वह पूरी तरह से नाबालिग था।

शहरों के शहर दिल्ली में स्थित किला राय पिथौरा का नामकरण उसी के नाम पर किया गया था। वह वास्तव में एक बहादुर योद्धा था। उसने संयोगिता (कन्नौज के राजा जयचंद की बेटी) के साथ विवाह किया था जैसा कि अनेक किताबों में

पृथ्वीराज चौहान और संयोगिता कथा का रोमांचक वर्णन किया गया है। इस कथा को भारत की सबसे रोमांचक कथाओं के रूप में वर्णित किया गया है।

टिप्पणी

### राव मालदेव राठौर

राजपूतों के सबसे लोकप्रिय शासकों में से एक, राव मालदेव राठौर वंश से संबंधित थे। शेरशाह सूरी के शासन के समय, मारवाड़ में राठौर एक प्रसिद्ध नाम था। राव मालदेव ने अपने क्षेत्र का विस्तार से दिल्ली से कुछ सौ किलोमीटर की दूरी तक किया था।

### राणा सांगा

इसे संग्राम सिंह के नाम से भी जाना जाता है। वह मेवाड़ का शासक था। उसकी सत्ता का उत्थान दिल्ली साम्राज्य के पतन के पश्चात शुरू हुआ। उसने गुजरात और मालवा के मुस्लिम राजाओं के साथ भी युद्ध किया था। राणा सांगा और लोदी शासकों के बीच संपन्न युद्ध अपने आप में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। उसे अपने राज्य मेवाड़ से बहुत प्यार था। उसने मेवाड़ को अत्यंत समृद्ध और संपन्न बनाया। साथ ही उत्कर्ष की चोटी तक पहुंचाया।

### महाराणा प्रताप

राजपूत शासकों में महाराणा प्रताप एक महत्वपूर्ण और शक्तिशाली शासक थे। वे बहादुर और महान राजपूत राजाओं में से एक थे। अपने कार्यों के कारण ही वे अविस्मरणीय थे। महाराणा प्रताप ने अधिकांश राजपूत शासकों को मुगल शासकों के पंजों से मुक्त करवाया और अनेक क्षेत्रों पर विजय प्राप्त की। उन्होंने राजपूतों की इस परंपरा को नकार दिया जिसमें अनेक राजपूत शासकों ने अपनी बेटियों को मुगल शासकों को सौंप दिया था और वैवाहिक संबंध स्थापित किया था। बाद के दिनों में उन्होंने उन लोगों से अपने वैवाहिक संबंधों को तोड़ लिया जिन्हें वे राजपूत नहीं मानते थे। उनकी मृत्यु के बाद उनके पुत्र अमर सिंह ने भी मुगलों से अनेक युद्ध किए। अमर सिंह ने मुगलों के अनेक आक्रमणों का सामना किया और उनके विरुद्ध 17–18 युद्ध लड़े।

### गुर्जर प्रतिहार

गुर्जरात्र (गुजरात) प्रदेश में निवास करने के कारण गुर्जर तथा 7 वीं से 11 वीं शताब्दी के मध्य विदेशी आक्रमणों से भारत की पश्चिमी सीमाओं की रक्षा करने के कारण प्रतिहार कहलाये।

कर्पूरमंजरी तथा काव्य मीमांसा के लेखक राजशेखर ने गुर्जर प्रतिहार वंश के बारे में जानकारी दी है

राजपूताने में पश्चिमी भूभाग पर गुर्जर प्रतिहार राजवंशों का एकाधिकार स्थापित हुआ। सर्वप्रथम 8 वीं शताब्दी में गुजरात राज्य में इस राजवंश की स्थापना हुई। यह राजवंश भगवान श्री राम के भाई लक्ष्मण का वंशज होना स्वीकार करता था। अनेक इतिहासकारों ने इन्हें सूर्यवंशी होना माना।

ग्वालियर के शिलालेख में इस वंश के शासक वत्सराज को क्षत्रिय बताया गया है। ठीक इसी प्रकार राजशेखर ने गुर्जर प्रतिहार वंश के राजा महेंद्र पाल को रघु कुल बताया गया है।

अनेक इतिहासकारों ने गुर्जर प्रतिहार राजवंश के राजाओं को सर्वप्रथम मारवाड़ होना बताया। मारवाड़ के पश्चात उन्होंने उज्जैन तथा कन्नौज पर अपना एकाधिकार

स्थापित किया। जोधपुर के शिलालेखों से ज्ञात होता है कि छठी शताब्दी में इस वंश के राजाओं ने अपना राज्य स्थापित किया जिसे 'गुर्जरत्रा' कहा जाता था।

चीनी यात्री ह्वेनसांग ने गुर्जर प्रतिहार वंश की राजधानी भीनमाल को पीली भोलो शब्द से संबोधित किया।

टिप्पणी

स्मिथ तथा स्टेन्फोलो ने भी भीनमाल व श्रीपाल शब्द का संबोधन किया।

**घटियाला का शिलालेख**– जोधपुर (समाचार पत्र) इसी प्रकार मुंबई गजेटियर (निक्सन) ने भी गुर्जर प्रतिहार वंश के राजाओं को एक विदेशी जाति के रूप में स्वीकार किया। जिनका राज्य राजपूताने में पश्चिमी भूभाग पर स्थापित था।

मुहणोत नेणसी ने गुर्जर प्रतिहार वंश की 26 शाखाओं का उल्लेख किया है।

गुर्जर प्रतिहार वंश के शासकों के लिए (जोधपुर) बाउक का शिलालेख महत्वपूर्ण माना जाता है। इस शिलालेख में एक ब्राह्मण पुरुष हरिश्चंद्र तथा क्षत्रिय रानी भद्रा की संतान माना गया है।

राजा हरिश्चंद्र गुर्जर प्रतिहार वंश के आदि पुरुष माने जाते हैं, जिन्होंने सर्वप्रथम माड़ल्यूपुर (मंडोर) को जीतकर गुर्जर प्रतिहार राजवंश की राजधानी को स्थापित किया। इसके पश्चात अनेक कमजोर शासकों की हमें जानकारी प्राप्त होती है।

अग्निकुल के राजपूतों में सर्वाधिक प्रसिद्ध प्रतिहार वंश था जो गुर्जरी की शाखा से संबधित होने के कारण इतिहास में गुर्जर प्रतिहार कहा जाता है। पुलेकेशिन द्वितीय के एहोल लेख में गुर्जर जाति का सर्वप्रथम उल्लेख हुआ है।

इस वंश की स्थापना हरिचन्द्र नामक राजा ने  की किन्तु इस वंश का वास्तविक प्रथम महत्वपूर्ण शासक नागभट्ट प्रथम था। वत्सराज के समय से ही कन्नौज के लिए त्रिपक्षीय संघर्ष शुरू हुआ।

अन्ततः शासक नागभट्ट प्रथम के समय गुजरात तक साम्राज्य विस्तार होने के कारण दोनों शाखाओं को सम्मिलित कर लिया गया और राजधानी (भीनमाल) जालौर कर दी गई।

## गुर्जर प्रतिहार राजवंश के ऐतिहासिक स्रोत

- मिहिरभोज का ग्वालियर अभिलेख
- समकालीन राष्ट्रकूटों के लेख
- प्रतिहारों के सामंतों के लेख

## साहित्यिक स्रोत

- महेंद्र पाल द्वारा रचित
- कर्पूरमंजरी
- बाल रामायण
- जननायक रचित पृथ्वीराज विजय
- कश्मीरी कवि कल्हण द्वारा रचित राजतरंगिणी

## मंडोर के प्रतिहार

प्रतिहारों की 26 शाखाओं में मंडोर के प्रतिहार सबसे प्राचीन एवं महत्वपूर्ण शाखा थी। इनके बारे में जोधपुर एवं घटियाले के शिलालेख से थोड़ी जानकारी मिलती है।

टिप्पणी

जोधपुर का शिलालेख 836 ई. का है। घटियाला से दो शिलालेख मिले हैं– 836 ई. का और दूसरा 861 ई. का। इनसे पता चलता है कि प्रतिहारों के गुरु हरिश्चंद्र नामक ब्राह्मण थे। उनकी दो पत्नियां थीं। एक ब्राह्मणी और दूसरी क्षत्राणी। ब्राह्मण पत्नी से उत्पन्न संतान ब्राह्मण प्रतिहार कहलाए और क्षत्राणी पत्नी भद्रा की संतान क्षत्रिय प्रतिहार कहलाए।

## भड़ौच के गुर्जर प्रतिहार

सातवीं और आठवीं सदी के कुछ दानपत्रों से पता चलता है कि भड़ौच और उसके आसपास के क्षेत्रों पर गुर्जर प्रतिहारों का शासन था।

जय भट्ट चतुर्थ इस शाखा का अंतिम शासक प्रतीत होता है। भड़ौच के गुर्जरों की राजधानी नांदीपुरी थी

## प्रतिहार वंश का महत्व

प्राचीन भारतीय इतिहास में गुर्जर प्रतिहार वंश का बड़ा महत्व है। हर्ष की मृत्य के पश्चात उत्तर भारत की जो राजनीतिक एकता छिन्न–भिन्न हो गयी थी, उसे पुनः स्थापित करने में भी इस वंश ने सफल प्रयत्न किया था।

इसके प्रतापी नरेशों ने उत्तरी भारत के अधिकांश भाग को बहुत समय तक अपने अधीन रखा। दीर्घकाल तक इसने सिंध प्रदेश से आगे बढ़ती हुई मुस्लिम शक्ति को रोके रखा और उत्तरी भारत में विस्तार न होने दिया। महान विजेता होने के साथ ही प्रतिहार नरेश महान साहित्यप्रेमी, कलाप्रेमी और धार्मिक शासक थे। परिणामस्वरूप इनके शासनकाल में भारतीय संस्कृति की बड़ी उन्नति हुई।

## गुर्जर प्रतिहारों की उत्पत्ति एवं वंश

गुर्जरों की उत्पत्ति के बारे में विद्वानों की एक राय नहीं है। कनेडी गुर्जर प्रतिहारों को ईरानी बताते हुए कहते हैं कि वे ईरानियों की भांति सूर्य पूजा करते थे, किंतु कुछ विद्वान इस मत से सहमत नहीं हैं क्योंकि सूर्य पूजा करना ईरानी पद्धति नहीं है। भंडारकर प्रतिहारों को विदेशी बताते हुए कहते हैं कि वे गुर्जरों की संतान हैं और वे विदेशी थे लेकिन बी.एन.पुरी गुर्जरों को विदेशी नहीं मानते हैं। ब्यूलर स्मिथ का मानना है कि विदेशी, हूणों और गुर्जरों ने मिलकर पंजाब पर अधिकार किया था, इन्हीं से कालांतर में गुर्जरों की उत्पत्ति हुई थी, परंतु भारतीय अभिलेख व साहित्यों में हूणों से किसी भी प्रकार के संबंधों को नहीं बताया गया है।

प्रतिहारकालीन ग्रंथ व अभिलेखों में प्रतिहारों को क्षत्रिय कहा गया है, इन्हें श्रीराम के अनुज लक्ष्मण का वंशज बताया गया है। ग्वालियर अभिलेख के अनुसार लक्ष्मण ने मेघनाथ की सेना का प्रतिहरण किया था, इसलिए इनका वंश प्रतिहार कहलाया।

टिप्पणी

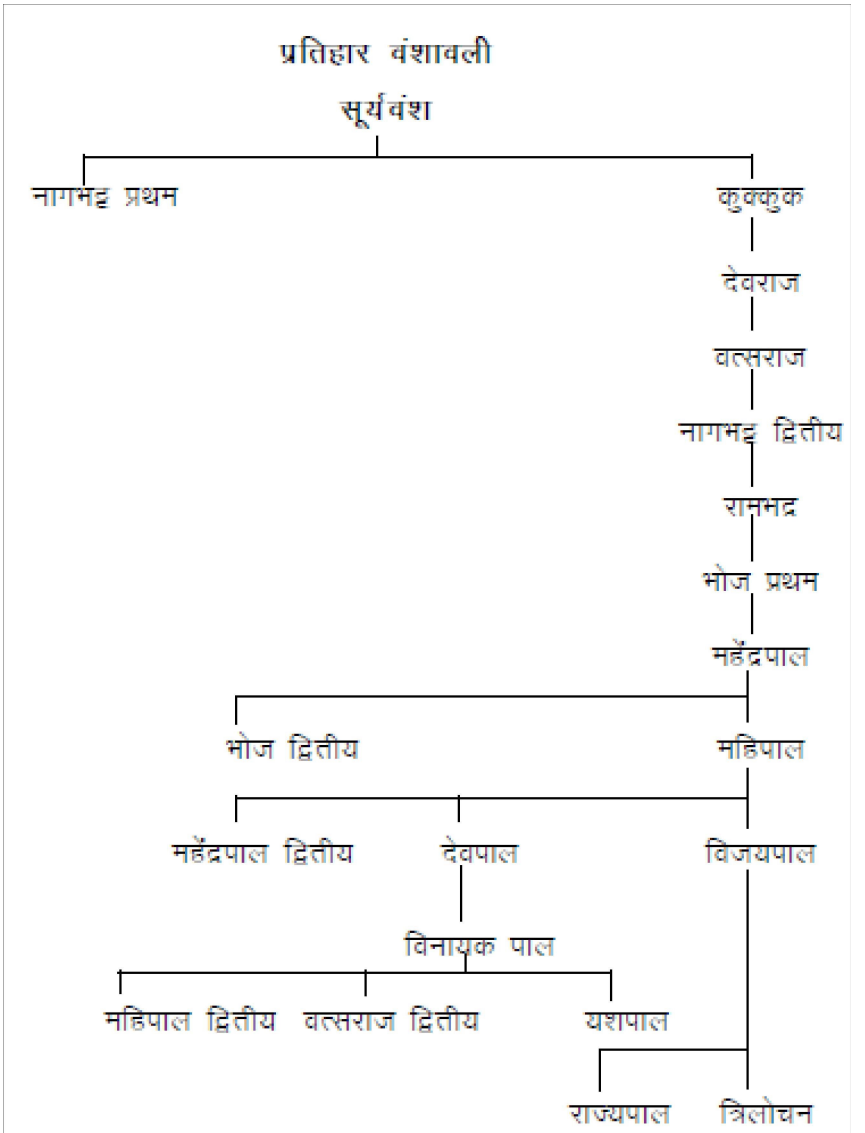


प्रतिहार शासक उज्जैन में शासन करते थे। इस वंश की स्थापना हरिश्चंद्र नामक एक राजा ने की, परंतु वास्तविक तथा प्रथम शासक नागभट्ट प्रथम था, उसने एक शक्तिशाली साम्राज्य की स्थापना के साथ अरबों से भी लोहा लिया था। सत्य तो यह है कि इस त्रिकोणीय संघर्ष में अंत विजयश्री भी गुर्जर प्रतिहारों की हुई थी।

## गुर्जर प्रतिहार वंश के शासक

गुर्जर प्रतिहार वंश के प्रमुख शासक निम्न हैं–

### नागभट्ट प्रथम (730–760)

यह शासक रज्जित का पोता था, जो इस वंश का सबसे योग्य तथा वास्तविक उल्लेखनीय शासक हुआ। इनके शासन काल में माड़ल्यपुर का विस्तार हुआ, लेकिन इस राजा ने मेड़ता को नई राजधानी बनाया

टिप्पणी

गुर्जर प्रतिहार वंश के वास्तविक संस्थापक, जालौर दुर्ग के निर्माता, मंडोर के बाद मेड़ता को द्वितीय तथा भीनमाल को तृतीय राजधानी बनाने का श्रेय नागभट्ट प्रथम को दिया जाता है। इन्होंने मेवाड़ नरेश बप्पा रावल की सहायता से अरब आक्रमणकारी "जुनैद" को पराजित किया था। ग्वालियर प्रशस्ति में उसे म्लेच्छों का नाशक बताया गया है। नागभट्ट प्रथम को ग्वालियर प्रशस्ति में नारायण की उपाधि से विभूषित किया गया है।

नागभट्ट प्रथम ने जीवन के अंतिम दिनों राजपाट को छोड़कर आध्यात्मिक जीवन अपना लिया तथा मंडोर में ही इनकी मृत्यु हो गई।

नागभट्ट के बाद उनका भतीजा कुक्कुक सिंहासन पर बैठा (760–783)। इसके बाद इसका छोटा भाई देवराज सिंहासन पर बैठा। देवराज के पश्चात उनका पुत्र वत्सराज (783–795) उज्जैन के सिंहासन पर बैठा।

राजा कुक्कुक के शासन काल में व्यापार में अपार वृद्धि हुई। इस राजा ने बाजारों की स्थिति को सुदृढ़ किया तथा इस राजा की जानकारी हमें घटियाला के शिलालेख से ज्ञात होती है, जिसमें इस राजा को न्यायप्रियता का रक्षक बताया गया है।

राजा बाउक ने मंडोर में विष्णु मंदिर बनवाया तथा मंडोर के परकोटे का पुनर्निर्माण करवाया।

### वत्सराज (783–795 ई.)

इस वंश का चौथा शासक वत्सराज था। वह एक शक्तिशाली शासक था, जिसे प्रतिहार साम्राज्य का वास्तविक संस्थापक माना जा सकता है। उसने पाल शासक धर्मपाल को पराजित किया किन्तु राष्ट्रकूट शासक ध्रुव से पराजित हुआ।

वत्सराज को कन्नौज पर अधिकार करने हेतु समकालीन पाल (बंगाल) व राष्ट्रकूटों (दक्षिण भारत) के साथ 150 वर्षों तक चलने वाले त्रिपक्षीय संघर्ष के शुभारंभकर्ता का श्रेय दिया जाता है।

वत्सराज का शासनकाल कला, संस्कृति के प्रोत्साहन के लिए महत्वपूर्ण माना जाता है। इसी के शासनकाल में उद्योतन सूरी ने कुबलेमाला ग्रंथ लिखा तथा आचार्य जिनदत्त सूरी ने हरिवंश पुराण की रचना की।

वत्सराज ने ओसिया में एक महावीर मंदिर का निर्माण कराया जो पश्चिमी राजस्थान का सबसे प्राचीन मंदिर माना जाता है। वत्सराज ने बंगाल के पाल राजाओं को पराजित किया, लेकिन दक्षिण की राष्ट्रकूट शक्ति के शासक राजा ध्रुव के हाथों यह पराजित हुआ।

इसने भंडी जाति को परास्त किया। इस बात की पुष्टि ओसिया अभिलेख और दौलतपुर अभिलेख से मिलती है। इन अभिलेखों के अनुसार इसने मध्य राजस्थान पर शासन किया।

वत्सराज की मृत्यु के पश्चात उसका पुत्र नागभट्ट द्वितीय गुर्जर प्रतिहार सिंहासन पर बैठा।

## नागभट्ट–द्वितीय (795–833 ई.)

वत्सराज के बाद उसका पुत्र नागभट्ट द्वितीय गद्दी पर बैठा। उसने कन्नौज पर अधिकार करके उसे प्रतिहार साम्राज्य की राजधानी बनाया। साथ ही अन्य बहुत से युद्ध जीते।

टिप्पणी

गुर्जर प्रतिहार वंश के शासकों में इसे साम्राज्यवादी नीति का परिचालक कहा जाता है। इसे परमभट्टारक, महाराजाधिराज, परमेश्वर आदि उपाधियां प्रदान की गईं। इसने 'वलीप्रबंध' नामक पुस्तक की रचना भी की। गंगा में जल समाधि द्वारा इसकी मृत्यु हुई।

## रामभद्र (833–836)

रामभद्र के 3 वर्ष के निर्बल शासन के पश्चात मिहिर भोज प्रथम शासक बना।

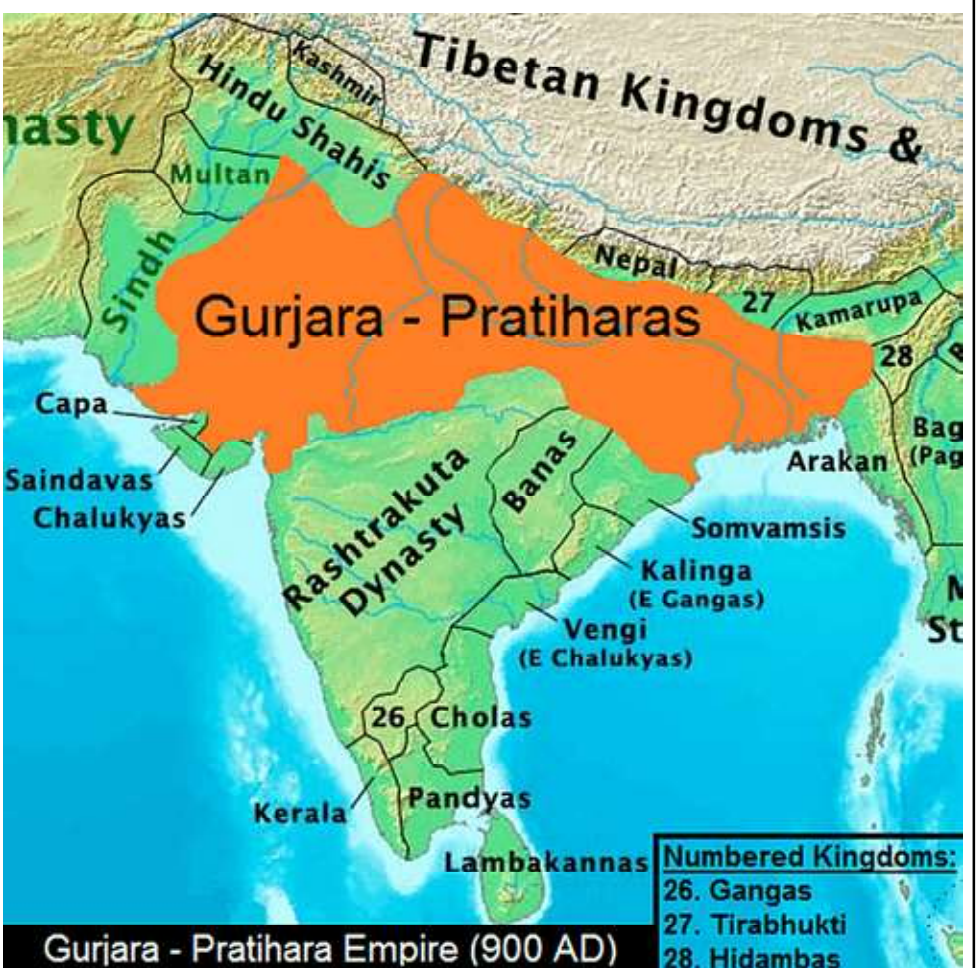


## मिहिरभोज (836–885)

अपने पिता रामदेव की हत्या कर मिहिर भोज प्रतिहार साम्राज्य का शासक बना। उसका मूल नाम मिहिर और भोज कुल नाम या उपनाम था। मिहिर भोज प्रथम इस वंश का सर्वाधिक महत्वपूर्ण शासक था।

टिप्पणी

उसने चंदेलों को परास्त करके बुंदेलखंड पर पुनः गुर्जर प्रतिहारों की सत्ता स्थापित की। रामभद्र के शासनकाल में मंडोर के प्रतिहारों ने गुर्जरत्रा भाग पर अपना अधिकार कर लिया था। परंतु भोज ने अवसर मिलते ही मंडोर के प्रतिहारों को पराजित करके राजपूताना पर पुनः अपना अधिकार कायम कर लिया। इसकी पुष्टि 846 ई. के दौलतपुर लेख तथा प्रतापगढ़ अभिलेख से भी होती है।

लेखों के अतिरिक्त कल्हण तथा अरब यात्री सुलेमान के विवरणों से भी उसके काल की घटनाओं की जानकारी मिलती है। भोज को अपने समय की दो प्रबल शक्तियों– पाल नरेश देवपाल तथा राष्ट्रकूट नरेश ध्रुव से पराजित होना पड़ा।

भोज प्रथम अपनी साहित्यिक अभिरुचि और वैष्णव धर्म के संरक्षण के लिए भी याद किया जाता है। उसके कुछ सिक्कों में विष्णु के अवतार वराह के चित्र तथा 'आदिवराह' की उपाधि मिलती है।

उसने राष्ट्रकूट शासक कृष्ण द्वितीय को हराकर मालवा प्राप्त किया। मालवा और गुजरात पर प्रभुत्व करना राष्ट्रकूटों का वास्तविक उद्देश्य था।

### महेंद्र पाल प्रथम (885–910)

भोज प्रथम के उत्तराधिकारी महेंद्रपाल प्रथम ने मगध तथा उत्तरी बंगाल तक अपने साम्राज्य का विस्तार किया। महेंद्रपाल कर्पूरमंजरी नाटक के रचयिता राजशेखर का शिष्य और संरक्षक था। राजशेखर ने महेंद्र पाल को निर्भयराज रघुकुल तिलक चुंडामणी आदि की संज्ञा दी!

893 ईसवी के एक प्रतिहार अभिलेख से दंडपाशिक नामक पुलिस अधिकारी का उल्लेख मिलता है। प्रतिहारों की अश्वसेना तत्कालीन भारत में सर्वश्रेष्ठ थी।

### महिपाल प्रथम (910–945)

महेंद्र पाल प्रथम के उत्तराधिकारी भोज द्वितीय (910–12 ईस्वी) को हराकर महिपाल प्रथम सिंहासनारूढ़ हुआ। राजशेखर महिपाल प्रथम का भी दरबारी रहा और उसने महिपाल को आर्याव्रत के महाराजाधिराज की संज्ञा दी। महिपाल प्रथम, राष्ट्रकूट नरेश इंद्र से बुरी तरह पराजित हुआ।

राष्ट्रकूटों ने कन्नौज पर अधिकार कर लिया किंतु शीघ्र ही महिपाल प्रथम ने उसे हथिया लिया। अरब यात्री अलमसूदी ने 915 ई. में महिपाल प्रथम के राज्यकाल में प्रतिहार राज्य की यात्रा की।

काव्यमीमांसा, हरविलास और भुवनकोष (ये तीनों काव्य ग्रंथ हैं) आदि ग्रंथों की रचना की। कर्पूरमंजरी प्राकृत भाषा में लिखा गया है। अन्य सभी रचनाएं संस्कृत में हैं।

महिपाल प्रथम के बाद गुर्जर प्रतिहार साम्राज्य का विघटन शुरू हो गया। 963 ईस्वी में कृष्ण तृतीय (राष्ट्रकूट शासक) ने प्रतिहार राजाओं को पराजित किया।

**महिपाल प्रथम के बाद महेंद्र पाल द्वितीय (945–948), देवपाल, महिपाल द्वितीय, विजय पाल (960 ई.) आदि क्रमानुसार शासक हुए। इनके बाद राज्यपाल शासक बना।**

टिप्पणी

### राज्यपाल

महमूद गजनवी के आक्रमण के समय 1018 ई. में प्रतिहार शासक राज्यपाल बिना लड़े भाग खड़ा हुआ, बाद में उसने महमूद गजनवी की अधीनता स्वीकार कर ली।

### त्रिलोचनपाल

1019 ईस्वी में राज्यपाल का पुत्र त्रिलोचन पाल शासक बना।

### यशपाल

इस वंश का अंतिम शासक यशपाल (1036 ईस्वी) था।

## अपनी प्रगति जांचिए

1. 'द हिस्ट्री ऑफ राजपुताना' पुस्तक के लेखक कौन हैं?
   (क) डॉ. आर.सी. मजूमदार (ख) पं. गौरीशंकर ओझा
   (ग) डॉ. दशरथ वर्मा (घ) इनमें से कोई नहीं
2. प्रतिहार कालीन ग्रंथ व अभिलेखों में प्रतिहारों को क्या कहा गया है?
   (क) ब्राह्मण (ख) वैश्य
   (ग) क्षत्रिय (घ) शूद्र

## 3.3 चंदेल

चंदेलों की उत्पत्ति के संबंध में हमें अधिक कुछ ज्ञात नहीं हो पाया है। इनकी उत्पत्ति के विषय में जानकारी हेतु हमें मात्र 3 साक्ष्य ही प्राप्त हो पाते हैं– स्मिथ कहते हैं कि चंदेल अनार्य थे, और अनार्यों में भी ये गोडो और भरो जाति से संबंधित थे। लेकिन अन्य विद्वान इस मत से सहमत नहीं हैं। जनश्रुति में इनकी उत्पत्ति के विषय में कहा गया है कि चंदेलों की उत्पत्ति एक ब्राह्मण और चंद्रमा के संयोग से हुई थी। अभिलेखों के वर्णन से ज्ञात होता है कि चंद्रवंश में चंद्रात्रेय से चंदेल उत्पन्न हुए थे। चंद्रात्रेय इनके आदिपुरुष होने के कारण इनको चंदेल कहा गया।

चंदेलों के निवास स्थान का विवरण हमें अभिलेखों से मिलता है, जिससे यह पता चलता है कि इनका मूलनिवास बुंदेलखंड था। इसके अतिरिक्त कालिंजर, खजुराहो, महोबा और अजयगढ़ से चंदेलों के अभिलेख मिलते हैं, अतः इससे भी यही ज्ञात होता है कि इनका निवास स्थान बुंदेलखंड था। इस वंश के एक राजा जयशक्ति, जेय या जेज्जक के नाम पर बुंदेलखंड को जैजभुक्ति भी कहा जाता है।

टिप्पणी

## चंदेल वंश के शासक

चंदेलों के प्रारंभिक शासकों में नन्नुक, वाकपति, जयशक्ति, विजयशक्ति, राहिल और हर्ष थे। ये प्रारंभ में प्रतिहारों के सामंत थे। नन्नुक इस वंश का प्रतापी शासक था। हर्ष के पश्चात यशोवर्मन राजा बना, जिसने अपने साम्राज्य का विस्तार किया। यह इस वंश का शक्तिशाली शासक था।

### यशोवर्मन (930–954 ई.)

यशोवर्मन ने अपने साम्राज्य का विस्तार किया। उसके पुत्र धंग के शिलालेख में हमें उसके द्वारा किए गए कृत्यों का उल्लेख मिलता है। यह अभिलेख हमें खजुराहो से प्राप्त होता है। खजुराहो, चंदेलों की राजधानी भी थी। इस अभिलेख में कहा गया है कि –

- यशोवर्मन के शासनकाल में कालिंजर राष्ट्रकूटों के अधीन था। उसने राष्ट्रकूटों को पराजित कर कालिंजर को अपने अधिकार में ले लिया।
- यशोवर्मन का समकालीन चेदि शासक युवराज प्रथम था, जिसे यशोवर्मन ने परास्त किया था।
- यशोवर्मन गुर्जरों के लिए अग्नि के समान था।
- चंदेलों ने ही खजुराहो में मंदिरों का निर्माण किया था, यशोवर्मन ने विष्णुमंदिर का निर्माण किया था और यहां पर स्थापित की गई बैकुंठ की विष्णुमूर्ति उसने प्रतिहार शासक देवपाल से बलपूर्वक प्राप्त की थी। इससे पता चलता है कि इस समय ये, प्रतिहारों को नाममात्र का ही स्वामी मानते थे।
- उसने कौशल नरेशों पर आक्रमण करके उनके कोषागार का हरण कर लिया था। इस समय कौन कौशल नरेश शासन कर रहा था? इसका उल्लेख अभिलेख में नहीं किया गया है।
- उसने पाल नरेश गोपाल द्वितीय को पराजित करके गौड़ तथा मिथिला के प्रदेश छीन लिए थे।
- इस समय कश्मीर पर खसों का अधिकार था, यशोवर्मन ने उन्हें भी परास्त किया था।
- इस समय मालवा पर परमार वंशीय शासक सीयक द्वितीय राज्य कर रहा था। यशोवर्मन ने उसे भी परास्त करके मालवा अपने अधीन कर लिया था।

उपरोक्त तथ्यों पर कुछ विद्वान पूर्णतः सहमत नहीं हैं। उनका मानना है कि ये तथ्य अभिलेखों में मात्र प्रशंसा के लिए लिखे गए थे किंतु ऐसा नहीं हो सकता, यह पूर्णरूप से काल्पनिक नहीं हो सकते, कुछ न कुछ सत्यता अवश्य रही होगी।

### धंग

यशोवर्मन के पश्चात धंग शासक बना। वह यशोवर्मन तथा पुष्पदेवी का पुत्र था। धंग अपने पिता की भांति महत्वाकांक्षी था। वह इस वंश का सबसे प्रसिद्ध शासक था। उसने

प्रतिहारों के विरुद्ध अपनी स्वतंत्रता घोषित करने के पश्चात महाराजाधिराज की उपाधि धारण की थी।

टिप्पणी

इस समय काशिका (वाराणसी) पर प्रतिहारों का अधिकार था। न्योर अभिलेख से ज्ञात होता है कि धंग ने वाराणसी में ग्राम–दान में दिया था, जिससे स्पष्ट होता है कि धंग ने वाराणसी को प्रतिहारों से छीन लिया था।

धंग ने खजुराहो में एक अभिलेख उत्कीर्ण कराया था। जिसमें धंग की प्रशंसा करते हुए लिखा है कि ''कौशल, क्रथ, सिंहल और कुंतल पर धंग का आधिपत्य था तथा कांची, आंध्र, राणा, आंग अंग राज्यों की रानियां उसकी काराओं में पड़ी थीं।"

यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि यह वर्णन अतिशयोक्तिपूर्ण है। धंग के शासनकाल में मुस्लिम आक्रमण होने के साक्ष्य मिलते हैं। यही कारण है कि जिस समय सुबुक्तगीन के विरुद्ध शाहीवंश के राजा जयपाल ने अन्य हिंदू राजाओं से सहायता मांगी तो कालिंजर के राजा ने उसे सहायता भेजी। तिथिक्रम से स्पष्ट होता है कि कालिंजर में धंग का शासन था। महोबा अभिलेख के अनुसार धंग मुस्लिम शासक हम्मीर के समान शक्तिशाली था।

### गण्ड

धंग का पुत्र गण्ड था, जो अपने पिता धंग के समान ही शक्तिशाली था। अपने पिता की मृत्यु के पश्चात 1002 ई. में वह शासक बना। शाही वंश के राजा आनंदपाल ने 1008 ई. में हिंदू राजाओं के एक संघ का निर्माण किया। इस संघ में उज्जैन, ग्वालियर, दिल्ली, अजमेर, कन्नौज तथा कालिंजर के राजाओं ने भाग लिया। गण्ड इस समय कालिंजर का ही शासक था। 1008 ई. में महमूद गजनवी ने आक्रमण किया। गजनवी का सामना इन शासकों की सम्मिलित सेनाओं द्वारा किया गया जिसमें यह सेना परास्त हुई। परिणामस्वरूप गण्ड के पुत्र विद्याधर को भी मुस्लिम आक्रमण का सामना करना पड़ा।

### विद्याधर

विद्याधर गण्ड का पुत्र था। गण्ड की मृत्यु के पश्चात विद्याधर 1017 ई. में चंदेल वंश का शासक बना। आनंदपाल द्वारा निर्मित राजाओं का संघ पराजित हो चुका था। प्रतिहार शासक जयपाल ने महमूद की अधीनता स्वीकार कर ली, तब विद्याधर ने बलपूर्वक जयपाल को सिंहासन से उतारकर त्रिलोचनपाल को कन्नौज का शासक बनाया था। अब विद्याधर का मुस्लिम शासक गजनवी से सीधा संघर्ष होना था। कच्छपात तथा महोबा के शिलालेखों से ज्ञात होता है कि विद्याधर ने महमूद का डटकर घोर विरोध किया था, किंतु बाद में विद्याधर को महमूद से मित्रता करनी पड़ी थी, महमूद बहुत सा धन लेकर लौट गया था। जयपाल द्वारा आत्मसमर्पण करने पर विद्याधर ने उसे दंडित किया था। अब भोज, परमार, कलचुरी विद्याधर से संघर्ष के लिए तैयार थे, किंतु इन्हें सफलता नहीं मिली थी। यह ध्यान देने योग्य तथ्य है कि जयपाल के समान

टिप्पणी

विद्याधर ने महमूद के समक्ष आत्मसमर्पण नहीं किया था। अतः महमूद उसे पराजित नहीं कर सका।

### विजयपाल

विजयपाल विद्याधर का पुत्र था, उसके पश्चात विजयपाल 1030ई. में शासक बना। इसके शासनकाल के साक्ष्य हमें उपलब्ध नहीं हो सके हैं, किंतु महोबा अभिलेख से यह सिद्ध होता है कि विजयपाल ने कल्चुरि शासक गांगेयदेव को परास्त किया। इसके अतिरिक्त हमें अन्य कोई जानकारी प्राप्त नहीं होती है।

### देववर्मन

देववर्मन विजयपाल का बड़ा पुत्र था, अतः ज्येष्ठ होने के कारण विजयपाल के पश्चात वह सिंहासन पर बैठा। इसका अनुज कीर्तिवर्मन था, जो देववर्मन के पश्चात शासक बना था। उसके 1051 ई. के चरखारी अभिलेख में यह वर्णन किया गया है कि ''संसार नश्वर और दुखपूर्ण है।'' इस कथन से यह अनुमान लगाया जाता है कि कल्चुरि नरेश लक्ष्मीकर्ण ने चंदेलों पर आक्रमण करके राज्य के कुछ भाग पर अधिकार कर लिया था। तब देववर्मन दुखी हो गया होगा। एक शासक के रूप में यह घटना तो स्वाभाविक ही है। इसके अतिरिक्त देववर्मन के विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं है।

### कीर्तिवर्मन

कीर्तिवर्मन, देववर्मन का अनुज था तथा विजयपाल का पुत्र था। देववर्मन के पश्चात वह शासक बना। साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि कल्चुरि शासक लक्ष्मीकर्ण ने अपने खाए हुए क्षेत्रों को अपने अधीन कर लिया था, चंदेलों की स्थिति को दृढ़ किया था। उसके दरबारी पंडित कृष्णमिश्र ने प्रबोधचंद्रोदय नाटक लिखा था।

कीर्तिवर्मन के पश्चात उसका पुत्र सल्लक्षणवर्मन (1100 ई.) शासक बना। मऊ अभिलेख से ज्ञात होता है कि वह कला तथा विद्या प्रेमी था। उसने मालवों तथा कल्चुरियों को पराजित किया था।

### मदनवर्मा

मदनवर्मा, पृथ्वीवर्मन का पुत्र था। मदन से पूर्व जयवर्मन और पृथ्वीवर्मन ने शासन किया था, किंतु इसके शासनकाल की घटनाएं प्रकाश में नहीं आ सकी हैं।

मदनवर्मा अपने समय का पराक्रमी शासक था। मऊ अभिलेख का कथन है कि मदनवर्मन ने चेदि–नरेश, काशी नरेश तथा मालवा व अन्य नरेशों को भी परास्त किया था। गुजरात के चालुक्य शासक सिद्धराज ने जयसिंह से युद्ध किया था, किंतु दोनों वंशों के अभिलेखों में दोनों की ही विजय का उल्लेख किया गया है, अतः यह कहा जा सकता है कि युद्ध निर्णायक नहीं रहा हो।

मदनवर्मन ने अनेक शत्रुओं को पराजित करके अपने साम्राज्य की रक्षा की। उसके अंतर्गत कालिंजर, अजयगढ़, महोबा, खजुराहो, छत्तरपुर, मऊ, भिलसा के भूखंड सम्मिलित थे।

टिप्पणी

## परमर्दी

मदनवर्मा के पश्चात उसका पौत्र परमर्दी 1163 ई. में शासक बना। यह समय मुस्लिम आक्रमण का था, अतः परमर्दी के शासन पर सदैव भय बना रहता था। इस समय चालुक्य का भिलसा पर अधिकार था, किंतु बाद में परमर्दी ने भिलसा पर अधिकार कर लिया था। वह अब दशार्णाधिपति कहलाया।

पृथ्वीराज रासो से ज्ञात होता है कि 1182 ई. में परमर्दी के राज्य पर पृथ्वीराज ने आक्रमण किया और परमर्दी को अधिक क्षति पहुंचाई। यह 'मदनपुर अभिलेख' से भी ज्ञात होता है। आल्हा और ऊदल नामक दो वीरों की सहायता से पृथ्वीराज पर आक्रमण किया, किंतु परमर्दी पराजित हो गया था।

1194 ई. में मुहम्मद गौरी ने जयचंद पर आक्रमण किया किंतु परमर्दी ने जयचंद की भी सहायता नहीं की। इसी तरह जब मुहम्मद गौरी ने प्रथम तथा द्वितीय तराइन युद्ध किया तब पृथ्वीराज द्वारा परमर्दी से सहायता मांगने पर परमर्दी ने सहायता नहीं पहुंचाई। इसी प्रकार की मानसिक संकीर्णता तत्कालीन समस्त हिंदू राजाओं में देखने को मिलती है। इसी कारण मुस्लिम आक्रमणकारी धीरे–धीरे सफल हो गए और बाद में सल्तनत युग की स्थापना हुई थी। परिणामस्वरूप परमर्दी को भी इसके दुष्परिणामों से गुजरना पड़ा।

अब 1202 ई. में कुतुबुद्दीन ने कालिंजर के दुर्ग को घेर लिया। 'फरिश्ता' के अनुसार परमर्दी ने कुछ दिनों तक सामना किया, बाद में संधि के लिए तैयार हो गया, किंतु उसकी मृत्यु हो गई। अब उसके मंत्री अजयदेव को किले में रसद के अभाव के कारण संधि करनी पड़ी। कुतुबुद्दीन ने वहां हिंदुओं को मुसलमान अथवा दास बनाया, और मंदिरों को लूटा।

इस प्रकार चंदेल शासकों का अब पतन हो गया। चंदेल शासकों का काल युद्धों से पूर्ण रहा। आंतरिक आक्रमण के साथ अब मुस्लिम आक्रमण भी होने लगे, अब शासकों को एकजुट होकर, अपने–अपने क्षेत्र के लिए नहीं बल्कि संपूर्ण क्षेत्र की विदेशी

आक्रमणों से रक्षा के लिए एकजुट रहना था, किंतु ऐसा नहीं हुआ और इसी कारण चंदेलों का पतन भी हुआ।

टिप्पणी

## चंदेल कला

चंदेल युग अपनी विशिष्ट कला के लिए ही जाना जाता है। चंदेल स्थापत्य तथा चंदेल वास्तु दोनों ही इस युग में अपना सर्वश्रेष्ठ स्थान रखते हैं। 'खजुराहो' चंदेल कला का केंद्र है। यहां के निर्मित मंदिर आज विस्मरणीय हैं। चंदेल कला से संबंधित लगभग 30 मंदिर यहां हैं, जिनका निर्माण लगभग 900 ई. से 1050 ई. के बीच हुआ।

ये समस्त मंदिर नागर शैली से प्रभावित हैं। इनमें कोई भी बौद्ध मंदिर नहीं है। शिव–विष्णु और जैन तीर्थंकरों का मंदिर है। मंदिर एक ऊंचे चबूतरे पर स्थित है। गर्भगृह के भीतर मूर्ति स्थापित की गई है, उसके आगे अंतराल तथा फिर महामंडप है फिर अर्धमंडप है और फिर मंडल है। मंदिर के शिखर पर छोटे–बड़े बहुसंख्यक शृंग होते हैं, इनके शिखर पर आमलक हैं, शृंग के कारण मंदिर पर्वतमाला के समान विशाल प्रतीत होते हैं।

इसके अतिरिक्त 'पंचायत शैली' के मंदिर भी हैं। इनके गर्भगृह में तो मुख्य देवता की मूर्ति होती है, इसके अतिरिक्त मंच के चारों कोनों में गर्भगृह होते हैं, जिनमें उप देवताओं की मूर्तियां प्रतिष्ठित की जाती थीं।

खजुराहो के मंदिरों में कंदरिया का शिव मंदिर है, गर्भगृह के भीतर संगमरमर का शिवलिंग है। शिव के अतिरिक्त ब्रह्मा, विष्णु, गणेश, सप्तमातृकाओं आदि की मूर्तियां हैं। तोरणद्वार, अर्धमंडप, महामंडप, एवं छतें सुंदर स्थापत्य में अलंकृत हैं। कनिंघम ने जब यह मंदिर देखा तो इसमें 872 मूर्तियां थीं।

एक अन्य मंदिर जगदंबिका का मंदिर है, वह विशिष्ट स्थापत्य के लिए प्रसिद्ध है। विष्णु मंदिरों में चतुर्भुज मंदिर प्रसिद्ध है। यह ईंटों का बना हुआ एक ऊंचे चबूतरे पर स्थित है। इसकी लंबाई 85 फीट तथा चौडाई 49 फीट है। विष्णु के तीन मुंह चार हाथ हैं। विष्णु के बीच का मुख मनुष्य का है और अन्य दो मुख सिंह के हैं। इसके अतिरिक्त पार्श्वनाथ का विशाल मंदिर है जो 62 फीट लंबा और 31 फीट चौड़ा है।

स्थापत्य कला के क्षेत्र में मंदिरों की मूर्तियां उल्लेखनीय हैं। खजुराहो के मंदिरों की बाहरी भित्ती पर देवी–देवताओं की मूर्तियां, दिग्पालों, अप्सराओं, और स्त्री–पुरुषों की मूर्तियां हैं। मंदिरों के स्तंभों पर यक्षियों के चरणों के नीचे दबे हुए वामनों की मूर्तियां हैं। इसके अतिरिक्त स्तंभ पुष्प, पादप और लताओं से भरे हैं।

प्रवेश–द्वारों पर मकरवाहिनी गंगा और कूर्मवाहिनी यमुना आदि की मूर्तियां हैं। इसके अतिरिक्त प्रसाधन करती हुई सुंदरी तथा दूसरी अलसनायिकाओं की मूर्तियां भी बड़ी आकर्षक हैं।

इस प्रकार खजुराहो की छटा देखते ही बनती है। यह अत्यधिक मनोरम है। चंदेल वंश अपनी स्थापत्य तथा वास्तुकला के लिए प्रसिद्ध रहा है।

टिप्पणी

### चंदेल वंश का पतन

चंदेल वंश के पतन के निम्न कारण रहे–

1. **अयोग्य एवं निर्बल उत्तराधिकारी**– परमर्दी, चंदेल वंश का अंतिम प्रतापी सम्राट था। उसके समय में चहमानों तथा अन्य शासकों द्वारा आक्रमण किए गए। निरंतर आक्रमण से चंदेल साम्राज्य निर्बल हो रहा था। अब परमर्दी इतना योग्य शासक नहीं था कि वह तुर्की आक्रमण का सामना कर सके।
2. **व्यक्तिगत स्वार्थ** – इस काल की सबसे प्रमुख बात यह थी कि समस्त शासक अपनी व्यक्तिगत शत्रुता को निभाते थे, यदि सभी ने व्यक्तिगत स्वार्थों को छोड़ कर एकता का परिचय दिया होता तो विदेशी आक्रमण प्रभावशाली नहीं होता। चंदेल वंश के पतन का यह भी मुख्य कारण था।
3. **तुर्की आक्रमण**– 1203 ई. में गहड़वालों की शक्ति नष्ट हो जाने पर कुतुबुद्दीन ने कालिंजर पर आक्रमण किया था। प्रारंभ में तो परमर्दी ने बड़ी कुशलता से तुर्की आक्रमण का सामना किया किंतु परिस्थितिवश परमर्दी को आत्मसमर्पण करना पड़ा, और इस प्रकार चंदेलों का पतन हो गया। तत्पश्चात कालिंजर तथा महोबा पर कुतुबुद्दीन ऐबक का अधिकार हो गया।

इस प्रकार राजाओं के आपसी द्वेष तथा बाद के निर्बल शासकों के कारण चंदेलों का पतन हो गया।

### अपनी प्रगति जांचिए

3. चंदेलों का मूल निवास कहां था?

   (क) बुंदेलखंड (ख) खजुराहो

   (ग) महोबा (घ) कालिंजर

4. चंदेल वंश के पतन का क्या कारण रहा?

   (क) अयोग्य एवं निर्बल उत्तराधिकारी (ख) व्यक्तिगत स्वार्थ

   (ग) तुर्की आक्रमण (घ) उपरोक्त सभी

## 3.4 कलचुरी

कलचुरी प्राचीन भारत का विख्यात राजवंश था। कलचुरी वंश की स्थापना कोकल्ल प्रथम ने लगभग 845 ई. में की थी। उसने त्रिपुरी को अपनी राजधानी बनाया था। कलचुरी सम्भवतः चन्द्रवंशी क्षत्रिय थे। कोकल्ल ने प्रतिहार शासक भोज एवं उसके सामन्तों को युद्ध में हराया था। उसने तुरुष्क, वंग एवं कोंकण पर भी अधिकार कर

टिप्पणी

लिया था। कोकल्ल के 18 पुत्रों में से उसका बड़ा पुत्र शंकरगण अगला कलचुरी शासक बना था। कर्णदेव ने 1060 ई. के लगभग मालवा के राजा भोज को पराजित कर दिया, परंतु बाद में कीर्तिवर्मन चंदेल ने उसे हरा दिया। इससे कलचुरियों की शक्ति क्षीण हो गई और 1181 तक अज्ञात कारणों से इस वंश का पतन हो गया। कलचुरी शासक 'त्रैकूटक संवत' का प्रयोग करते थे, जो 248–249 ई. में प्रचलित हुआ था।

चन्देल राज्य के दक्षिण में चेदि के कलचुरियों का राज्य स्थित था। उसकी राजधानी त्रिपुरी में थी जिसकी पहचान मध्य प्रदेश के जबलपुर जिले में स्थित तेवर नाम के ग्राम से की जाती है। चेदि पर शासन करने के कारण उन्हें चेदिवंश का भी कहा जाता है।

कलचुरी नरेश युवराज के दरवार में राजशेखर ने कुछ काल तक निवास किया तथा वहीं उसने अपने दो ग्रन्थों– काव्यमीमांसा तथा विद्धशालभंजिका की रचना की थी।

इन ग्रन्थों में राजशेखर युवराज की मालवा तथा कलिंग की विजय का उल्लेख करते हुए उसे चक्रवर्ती राजा बताता है। हेमचन्द्र के द्वाश्रयकाव्य से कर्ण तथा पाल शासक विग्रहपाल के बीच संघर्ष की सूचना मिलती है। विल्हण कृत विक्रमांकदेवचरित से कर्ण तथा चालुक्य नरेश सोमेश्वर प्रथम के सम्बन्धों पर प्रकाश पड़ता है।

पूर्व मध्यकालीन भारत में कलचुरी वंश की कई शाखाओं के अस्तित्व का प्रमाण मिलता है। कलचुरियों की प्राचीनतम शाखा छठीं शती में माहिष्मती में शासन करती थी। इसका संस्थापक कृष्णराज था। उसका पौत्र बुद्धराज कन्नौज नरेश हर्ष एवं बादामी के चालुक्य नरेश पुलकेशिन द्वितीय का समकालीन था।

उसके पूर्वजों कृष्णराज एवं शंकरगण का महाराष्ट्र, गुजरात, राजपूताना, कोंकण आदि पर अधिकार था। पुलकेशिन के सैनिक अभियान ने उन्हें उत्तर भारत की ओर विस्थापित कर दिया। इसके बाद कुछ समय तक कलचुरियों का इतिहास अंधकारपूर्ण हो गया।

चालुक्यों तथा प्रतिहारों के दबाव के कारण कलचुरी बुन्देलखण्ड तथा बघेलखण्ड की ओर बढ़े तथा कालिंजर के दुर्ग पर अधिकार कर लिया। किन्तु शीघ्र ही प्रतिहारों ने उन्हें वहां से भी हटा दिया। तत्पश्चात् कलचुरी गोरखपुर तथा देवरिया जिलों की भूमि पर पूर्वी उत्तर प्रदेश में फैल गये। यहां उनकी सत्ता का संस्थापक राजा राजपुत्र था।

कहला तथा कसिया लेखों से पता चलता है कि यहां दो कलचुरी वंश शासन कर रहे थे। गोरखपुर क्षेत्र में इस वंश के शासन का प्रारम्भ नवीं शती के प्रारम्भ में हुआ। राजपुत्र की दसवीं पीढ़ी में सोड़देव राजा हुआ। राजपुत्र के बाद शिवराज तथा शंकरगण प्रथम राजा बने।

इनकी किसी भी उपलब्धि के विषय में पता नहीं चलता। शंकरगण को ही संभवतः त्रिपुरी के कलचुरी नरेश कोक्कल प्रथम ने अभयदान दिया था। उसका

उत्तराधिकारी गुणाम्बोधि हुआ। बताया गया है कि उसने भोजदेव से कुछ भूमि प्राप्त की तथा युद्ध में गौड़ की लक्ष्मी का अपहरण कर लिया। ऐसा लगता है कि उसने प्रतिहार नरेश भोज की ओर से पाली के विरुद्ध संघर्ष में भाग लिया था।

टिप्पणी

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि गुणाम्बोधि तथा उसके उत्तराधिकारी गुर्जर प्रतिहारों के अधीन सामन्त थे। अगले राजा भामान ने प्रतिहारों के सामन्त रूप में धारा के परमार राजा से युद्ध कर ख्याति प्राप्त की। इस वंश का दसवां राजा सोढ़देव हुआ जिसका लेख मिलता है। वह एक स्वतंत्र शासक था जैसा कि उसकी राजकीय उपाधियों से प्रकट होता है।

इस समय तक गंगा–यमुना घाटी में तुर्क के आक्रमण तथा चन्देलों के विस्तार के कारण प्रतिहार साम्राज्य विनष्ट हो गया था जिससे सोढ़देव को स्वतंत्र राज्य स्थापित करने में सहायता मिली। उसने घाघरा तथा गण्डक के किनारे एक स्वाधीन राज्य कायम कर लिया। चरममाहेश्वर की उपाधि से उसका शैव होना सूचित होता है। सोढ़देव के उत्तराधिकारियों के विषय में हमें पता नहीं है।

संभवतः वह इस वंश का अन्तिम स्वतंत्र राजा रहा हो। ग्यारहवीं शती में कन्नौज के गहड़वालों के उत्कर्ष के साथ ही कलचुरी सत्ता का अन्त हो गया तथा बनारस तथा कन्नौज से लेकर अयोध्या तक का क्षेत्र गहड़वालों के अधीन आ गया। इस प्रकार सरयूपार में गोरखपुर एवं देवरिया के कलचुरियों की शाखाएं समाप्त हो गईं। अब त्रिपुरी अथवा डाहल का कलचुरी वंश शक्तिशाली हुआ।

कलचुरी वंशों में यह सबसे प्रसिद्ध एवं शक्तिशाली सिद्ध हुआ। इसने मध्य भारत पर तीन शताब्दियों तक शासन किया। इस कलचुरी वंश का पहला राजा कोक्कल प्रथम था जो संभवतः 845 ईस्वी में गद्दी पर बैठा। उसका अपना कोई लेख तो नहीं मिलता किन्तु उसकी उपलब्धियों के विषय में हम उसके उत्तराधिकारियों के लेखों से जानते हैं।

इनमें युवराजदेव का बिलहरी तथा कर्ण के बनारस लेख उल्लेखनीय हैं। ज्ञात होता है कि वह अपने समय का महान सेनानायक था। उसने कन्नौज के प्रतिहार शासक भोज तथा उसके सामन्तों को युद्ध में पराजित किया। बिल्हारी लेख में कहा गया है कि समस्त पृथ्वी को जीतकर उसने दक्षिण दिशा में कृष्णराज तथा उत्तर दिशा में भोज को अपने दो कीर्ति–स्तम्भों के रूप में स्थापित किया था।

बनारस लेख में कहा गया है कि उसने भोज, बल्लभराज, चित्रकूट भूपाल, हर्ष तथा शंकरगण नामक राजाओं को अभयदान दिया था। यहां भोज से तात्पर्य प्रतिहार भोज तथा कृष्णराज से तात्पर्य राष्ट्रकूट कृष्ण द्वितीय से है। हम निश्चित रूप से नहीं कह सकते कि इन दोनों राजाओं को उसने किसी युद्ध में जीता था अथवा वे उसका प्रभाव मात्र स्वीकार करते थे।

हर्ष, चित्रकूट भूपाल एवं शंकरगण की पहचान निश्चित नहीं है। संभवतः हर्ष प्रतिहार भोज प्रथम का गुहिल सामन्त था जो चित्तौड़ में शासन करता था। शंकरगण,

टिप्पणी

गोरखपुर की कलचुरी शाखा का सामन्त शासक था। तुम्माणवंशी पृथ्वीदेव के अमोदा लेख में वर्णित है कि कोक्कल ने कर्णाट, वंग, कोंकण, शाकम्भरी, तुरुष्क तथा रघुवंशी राजाओं को जीता था। लेकिन यह विवरण अतिशयोक्तिपूर्ण है जिसकी पुष्टि का कोई आधार नहीं है। इन सभी विजयों के फलस्वरूप वह अपने समय का एक शक्तिशाली शासक बन बैठा।

उसने चन्देल वंश की राजकुमारी नट्टादेवी के साथ अपना विवाह तथा राष्ट्रकूट वंश के कृष्ण द्वितीय के साथ अपनी एक पुत्री का विवाह किया था। इन सम्बन्धों के परिणामस्वरूप उसने अपने साम्राज्य की पश्चिमी तथा दक्षिणी–पश्चिमी सीमाओं को सुरक्षित कर लिया।

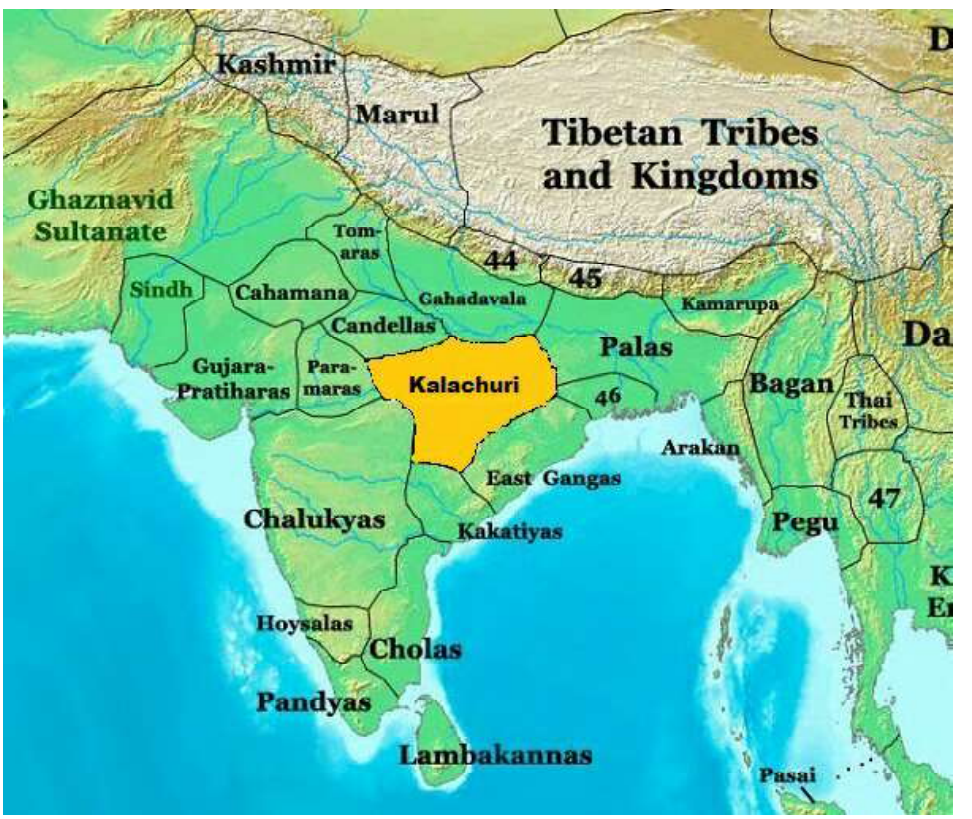


## कलचुरी राजवंश के प्रमुख शासक

कलचुरी राजवंश के प्रमुख शासक इस प्रकार हैं–

### शंकरगण

कोक्कल के 18 पुत्र थे। इनमें उसका ज्येष्ठ पुत्र शंकरगण उसकी मृत्यु के बाद (878 से 888 ईस्वी के बीच) चेदि वंश का राजा बना। उसने दक्षिणी कोशल के सोमवंशी शासक को हराकर पाली पर अधिकार कर लिया तथा अपने एक छोटे भाई को वहां का राज्यपाल नियुक्त किया।

टिप्पणी

इस समय राष्ट्रकूट नरेश कृष्ण द्वितीय देंगी के पूर्वी चालुक्य नरेश विजयादित्य तृतीय के साथ संघर्ष में उलझा हुआ था। शंकरगण एक सेना के साथ कृष्ण द्वितीय की सहायता के लिये गया परन्तु विजयादित्य ने दोनों की सम्मिलित सेनाओं को किरणपुर में परास्त कर दिया।

तत्पश्चात् चालुक्यों ने किरणपुर (बालाघाट, म. प्र.) को जला दिया। इस पराजय से शंकरगण को गहरा धक्का लगा। बिल्हारी अभिलेख शंकरगण को मलय देश पर आक्रमण करने का श्रेय प्रदान करता है परन्तु यह उल्लेख संदिग्ध है। उसने अपनी पुत्री लक्ष्मी का विवाह राष्ट्रकूट नरेश कृष्ण द्वितीय के पुत्र जगत्तुंग के साथ किया था।

### युवराज प्रथम

शंकरगण के दो पुत्र थे– बालहर्ष और युवराज प्रथम। बालहर्ष का शासन अल्पकालीन था और उसके विषय में हमें कुछ भी पता नहीं है। दसवीं शताब्दी के मध्य युवराज प्रथम शासक हुआ। वह एक विजेता था जिसने बंगाल के पाल तथा कलिंग के गंग शासकों को पराजित किया। परन्तु चन्देल नरेश यशोवर्मन से वह पराजित हो गया। इसके अतिरिक्त राष्ट्रकूट नरेश कृष्ण तृतीय ने उसके राज्य पर आक्रमण किया।

इसमें कलचुरियों की करारी हार हुई तथा उनके राज्य पर कुछ काल के लिये राष्ट्रकूटों का अधिकार हो गया। परंतु शीघ्र ही युवराज प्रथम ने इस पराजय का बदला लिया तथा एक सेना के साथ उसने राष्ट्रकूटों को परास्त कर अपने राज्य से बाहर भगा दिया। बिल्हारी अभिलेख से पता चलता है कि उसने कर्णाट तथा लाट को जीता था।

धंग के खजुराहो लेख में भी उसकी शक्ति की प्रशंसा करते हुए उसे 'प्रसिद्ध राजाओं के मस्तक पर पैर रखनेवाला' कहा गया है। राजशेखर के ग्रंथ 'विद्धशालभंजिका' में युवराज को 'उज्जयिनीभुजंग' कहा गया है जो इस बात का सूचक है कि उसने मालवा को जीता था। युवराज के शासन–काल में ही राजशेखर कन्नौज छोड़कर त्रिपुरी आया।

वहीं रहते हुए उसने काव्यमीमांसा तथा विद्वशालभंजिका की रचना की थी। युवराज शैव मतानुयायी था। उसने शैव सन्तों को दान दिया तथा उनके निवास के लिये गुर्गी में एक मन्दिर तथा मठ बनवाया था। एक लेख में कहा गया है कि उसने डाहलमण्डल के शैव सन्त सद्भावशम्भु को तीन लाख गांव भिक्षा में दिए थे।

उसकी पत्नी नोहला चालुक्य वंशीया कन्या थी जिसने बिल्हारी के निकट शिव का एक विशाल मन्दिर बनवाया तथा उसके लिये कई गांव दान में दिए। भारद्वाज वंशी ब्राह्मण भाकमिश्र युवराज का प्रधानमंत्री था। भेड़ाघाट (जबलपुर) का प्रसिद्ध 'चौसठ योगिनी मन्दिर' का निर्माण भी युवराज के समय में ही हुआ था।

### लक्ष्मणराज

युवराज प्रथम के बाद उसका पुत्र लक्ष्मणराज शासक बना। वह भी एक शक्तिशाली राजा था जिसने कलचुरी साम्राज्य का चतुर्दिक विस्तार किया। बिल्हारी तथा गोहरवा

टिप्पणी

के लेखों से उसकी विजयों के विषय में सूचना प्राप्त होती है। बिल्हारी लेख के अनुसार, 'युवराज ने कोशलराज को जीतते हुए आगे बढ़कर उड़ीसा के राजा से रत्न और स्वर्ण से जड़ित कलिय (नाग) की प्रतिमा प्राप्त की। इससे उसने सोमनाथ की पूजा की।'

इसी प्रकार बिल्हारी लेख में कहा गया है कि उसने बंगाल के राजा को पराजित किया, पाण्ड्यराज को पराभूत किया, लाट के राजा को लूटा, गुर्जर नरेश को जीता तथा कश्मीर के राजा ने मस्तक झुकाकर उसके चरणों की पूजा की। इन लेखों का विवरण यद्यपि प्रशस्ति प्रकार का है जिसमें अतिरंजना का पुट मिलता है तथापि इसमें ऐतिहासिक तथ्य निहित है।

उसका सोमनाथ तक अभियान तथ्य पर आधारित प्रतीत होता है। दसवीं शती के द्वितीयार्द्ध में गुर्जर तथा लाट भारी अव्यवस्था के शिकार थे। लाट प्रदेश पर राष्ट्रकूटों के सामन्त शिलाहार वंश तथा उत्तरी गुजरात पर कन्नौज के प्रतिहारों का अधिकार था।

इन दोनों शक्तियों के पतन के दिनों में इन प्रदेशों में अव्यवस्था फैल गई, जिसका लाभ उठाते हुए लक्ष्मणराज ने इन प्रदेशों से होते हुए सोमनाथ तक सफल अभियान किया होगा। कोशल से तात्पर्य दक्षिण कोशल से है। यहां संभवतः उड़ीसा के सोमवंशी राजा राज्य करते थे।

जहां तक बंगाल का प्रश्न है, हमें ज्ञात है कि दसवीं शती के द्वितीयार्द्ध से वहां शासन करने वाले पालवंश की स्थिति निर्बल पड़ गई थी। ग्यारहवीं शती के प्रथमार्द्ध में कलचुरी बंगाल के शासकों के घनिष्ठ सम्पर्क में थे।

संभव है, इसी का लाभ उठाते हुए लक्ष्मणराज ने वहां सैनिक अभियान कर सफलता प्राप्त की हो। यहां तक हम कुछ ठोस आधार पर हैं, लेकिन जहां तक कश्मीर तथा पाण्ड्य राज्य की विजय का प्रश्न है, यह शुद्ध रूप से काव्यात्मक प्रतीत होता है।

लक्ष्मणराज ने अपनी पुत्री का विवाह चालुक्य नरेश विक्रमदित्य चतुर्थ के साथ किया। अपने पिता के समान लक्ष्मणराज भी शैव मत का पोषक था तथा शैव मत को संरक्षण प्रदान किया तथा हृदयशिव के लिये बहुमूल्य उपहारों सहित वैद्यनाथ मठ का दान किया। उसका प्रधान सचिव सोमेश्वर था जिसने विष्णु का एक मन्दिर बनवाया था।

लक्ष्मणराज के बाद उसका पुत्र शंकरगण तृतीय राजा बना। उसकी कोई उपलब्धि नहीं है। उसके बाद उसका छोटा भाई युवराज द्वितीय राजा बना। गोहरवा लेख में उसे 'चेदीन्द्रचंद्र' अर्थात् 'चेदिवंश' के राजाओं में चन्द्र कहा गया है।

उसने परमेश्वर की उपाधि धारण की। किन्तु सैनिक दृष्टि से वह निर्बल शासक था जिसे वेंगी के चालुक्य नरेश तैल द्वितीय तथा परमार नरेश मुंज ने पराजित कर दिया। त्रिपुरी पर मुंज ने कुछ समय तक अधिकार बनाये रखा।

टिप्पणी

उसके हटने के बाद मंत्रियों ने युवराज द्वितीय को हटाकर पुत्र कोक्कल द्वितीय को राजा बना दिया। उसके समय में कलचुरियों ने अपनी शक्ति एवं मर्यादा को पुनः प्राप्त कर लिया। कोक्कल द्वितीय ने गुर्जरदेश (गुजरात) पर आक्रमण कर चौलुक्य नरेश चामुण्डराज को पराजित किया। उसने कुन्तल तथा गौड़ शासकों के विरुद्ध भी सफलता प्राप्त की। उसने 1019 ईस्वी तक राज्य किया।

**कलचुरी सत्ता का उत्कर्ष :**

**I. गांगेयदेव विक्रमादित्य**

कोक्कल द्वितीय के पश्चात् उसका पुत्र तथा उत्तराधिकारी गांगेयदेव विक्रमादित्य कलचुरी वंश का एक प्रतापी राजा हुआ। उसके राज्यारोहण के समय कलचुरी राज्य की स्थिति अत्यन्त निर्बल थी। परमार भोज तथा चन्देल विद्याधर उसके प्रबल प्रतिद्वन्द्वी थे। अतः उनके विरुद्ध अपने वंश की सत्ता सुदृढ़ बनाना गांगेयदेव का प्रमुख कर्तव्य था।

ऐसा लगता है कि अपने शासन के प्रारम्भ में वह चन्देल नरेश विद्याधर की अधीनता स्वीकार करता था। खजुराहो से प्राप्त एक चन्देल लेख से इसकी सूचना मिलती है जिसके अनुसार कलचुरी नरेश विद्याधर की गुरु के समान पूजा करता था। यहां कलचुरी नरेश से तात्पर्य गांगेयदेव से ही है।

मिराशी का विचार है कि गांगेयदेव ने राज्यपाल के विरुद्ध अभियान में विद्याधर की ओर से भाग लिया था। चूंकि परमार भोज भी विद्याधर से आतंकित था, अतः वह गांगेयदेव का स्वाभाविक मित्र बन गया। भोज ने कल्याणी के चालुक्य नरेश जयसिंह द्वितीय के विरुद्ध जो सैनिक अभियान किया था, गांगेयदेव भी उसमें शामिल हुआ था। किन्तु जयसिंह ने उसे पराजित कर दिया।

इसके साथ ही भोज के साथ उसकी मित्रता भी समाप्त हो गई। मध्य भारत पर प्रभुत्व के लिये दोनों के बीच एक युद्ध भी हुआ जिसमें गांगेयदेव पराजित हो गया। किन्तु इससे गांगेयदेव हताश नहीं हुआ। विद्याधर की मृत्यु के बाद उसने अपनी स्वतन्त्रता घोषित कर दी तथा इस अवधि में उत्तरी भारत का सार्वभौम शासक बनने के लिये उसने अनेक विजय प्राप्त कीं।

उसने अंग, उत्कल, काशी तथा प्रयाग को जीता तथा प्रयाग में उसने अपना एक निवास–स्थान बनाया। काशी का क्षेत्र संभवतः उसने पाल शासकों से छीना था। प्रयाग पर उसके अधिकार की पुष्टि खैरा और जबलपुर के लेखों से होती है, जहां बताया गया है कि गांगेयदेव ने वटवृक्ष के नीचे निवास करते हुए अपनी एक सौ रानियों के साथ प्राणोत्सर्ग कर मुक्ति प्राप्त की थी।

इससे तथा उत्तर भारत में प्राप्त उसके बहुसंख्यक सिक्कों से वहां उसका अधिकार प्रमाणित होता है। सम्पूर्ण कलचुरी वंश में सिक्के प्रवर्तित करने वाला

टिप्पणी

गांगेयदेव पहला और शायद अन्तिम राजा था। ये सिक्के लक्ष्मी शैली के हैं। राजपूत राजाओं में सर्वप्रथम उसी ने स्वर्ग सिक्के प्रचलित करवाये थे।

बनारस पर गांगेयदेव के अधिकार का परोक्ष रूप से समर्थन बैहकी के विवरण से भी होता है जिसमें बताया गया है कि 1033 ई. में अहमद नियाल्तगीन ने जब बनारस पर आक्रमण किया तो वहां का शासक गंग (गांगेयदेव) था। गांगेयदेव ने उत्तर–पश्चिम में पंजाब तथा दक्षिण में कुन्तल तक सैनिक अभियान किया।

एक नेपाली पाण्डुलिपि में उसे तीरभुक्ति (तिरहुत) का स्वामी बताया गया है। पूर्व की ओर उसने उड़ीसा तक अभियान कर विजय प्राप्त की थी। गोइखा लेख से सूचना मिलती है कि उसने उत्कल के राजा को जीतकर अपनी भुजाओं को एक विजयस्तम्भ बना दिया था।

इस प्रकार गांगेयदेव एक विस्तृत साम्राज्य का शासक बना तथा महाराजाधिराज, परमेश्वर, महामण्डलेश्वर जैसी उच्च सम्मानपरक उपाधियों को ग्रहण किया। खैरालेख से पता चलता है कि उसने 'विक्रमादित्य' की भी उपाधि ग्रहण की थी। अपने पूर्वजों की भांति गांगेयदेव भी शैवमतानुयायी था तथा उसने भी शैवमन्दिरों एवं मठों का निर्माण करवाया था।

### II. कर्ण अथवा लक्ष्मीकर्ण

गांगेयदेव के बाद उसका पुत्र कर्णदेव अथवा लक्ष्मीकर्ण शासक बना। वह अपने वंश का सर्वाधिक शक्तिशाली राजा था। उसके कुल आठ अभिलेख मिलते हैं जिनसे हम उसकी उपलब्धियों का गान प्राप्त करते हैं। उसने अनेक सैनिक अभियान किये।

गुजरात के नरेश भीम के साथ मिलकर उसने मालवा के परमारवंशी शासक भोज को पराजित किया। रासमाला से पता चलता है कि कर्ण ने धारा को ध्वस्त करने के बाद राजकोष पर अधिकार कर लिया। इस युद्ध में भोज मारा गया। प्रबन्धचिन्तामणि से भी इसका समर्थन होता है।

भेड़ाघाट अभिलेख में कहा गया है कि कर्ण की वीरता के सामने वंग तथा कलिंग के शासक कांपने लगे। बंगाल में इस समय जातवर्मन नामक कोई राजा शासन कर रहा था। कर्ण ने अपनी कन्या वीरश्री का विवाह उसके साथ कर दिया।

कर्ण ने कलिंग की विजय की तथा 'त्रिकलिंगाधिपति' की उपाधि धारण की। पूर्व की ओर गौड़ तथा मगध के पाल शासकों को उसने पराजित किया। तिब्बती परम्परा से पता चलता है कि मगध में उसने बहुसंख्यक बौद्ध मन्दिरों तथा मठों को नष्ट कर दिया था। पाल नरेश विग्रहपाल तृतीय को उसने युद्ध में पराजित किया।

कर्ण के पैकोर (वीरभूमि जिला) लेख से पता चलता है कि उसने वहां की देवी को स्तम्भ समर्पित किया था। हेमचन्द्र भी कर्ण द्वारा विग्रहपाल की पराजय का उल्लेख करता है। किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि कर्ण ने उसके साथ सन्धि कर ली तथा अपनी कन्या का विवाह कर उसे अपना मित्र बना लिया।

टिप्पणी

कर्ण का सबसे प्रसिद्ध संघर्ष बुन्देलखण्ड के चन्देल वंश के साथ हुआ। विद्याधर की मृत्यु के बाद वहां का शासन निर्बल राजाओं के हाथ में आ गया जो अपनी रक्षा करने में सक्षम नहीं थे। इसका लाभ उठाते हुए कर्ण ने चन्देल नरेश देववर्मन पर आक्रमण कर उसे परास्त कर उसके राज्य के कुछ भागों पर अधिकार कर लिया।

चन्देल लेखों से भी पता चलता है कि कुछ समय के लिये उनका राज्य कर्ण के आक्रमणों से पूर्णतया विनष्ट कर दिया गया था। बिल्हण कर्ण को कालिंजर गिरि के अधिपतियों का काल कहता है। इस प्रकार विविध स्रोतों से स्पष्ट होता है कि कर्ण तत्कालीन मध्य भारत का सर्वशक्तिमान सम्राट बन गया। परमार तथा चन्देल राजाओं का उन्मूलन करके उसने अपनी स्थिति सार्वभौम बना ली।

उसके लेखों की प्राप्ति स्थानों–पैकोर, बनारस, गोहरवा आदि से भी पता चलता है कि वह एक विस्तृत भूभाग का स्वामी था। कभी–कभी कुछ यूरोपीय इतिहासकार कर्ण की उपलब्धियों की तुलना फ्रांसीसी सेनानायक नेपोलियन से करते हैं।

किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि कर्ण अपनी अजेयता अधिक समय तक सुरक्षित नहीं रख सका तथा अपने शासन के अन्तिम दिनों में उसे पराभव उठाना पड़ा। चन्देल नरेश कीर्तिवर्मन द्वारा वह पराजित कर दिया गया। इससे कर्ण की शक्ति अत्यन्त निर्बल पड़ गई।

पूर्व में विग्रहपाल तृतीय के पुत्र नयपाल, पश्चिम में परमार नरेश उदयादित्य, उससे पश्चिम में अन्हिलवाड़ के चालुक्य भीम प्रथम तथा दक्षिण में कल्याणी के चालुक्य नरेश सोमेश्वर प्रथम ने भी कर्ण को कई युद्धों में पराजित कर उसकी प्रतिष्ठा को धूल में मिला दिया। 1073 ई. के लगभग उसका शासन समाप्त हो गया।

कर्ण भी अपने पिता के समान शैवमतानुयायी था तथा बनारस में उसने कर्णमेरु नामक शैवमन्दिर बनवाया था। उसने त्रिपुरी के निकट कर्णावती आधुनिक कर्णबेल नामक नगर की स्थापना भी करवाई थी। उसका विवाह हूणवंशीया कन्या आवल्लदेवी के साथ हुआ था। सारनाथ के बौद्ध भिक्षुओं को भी उसने सुविधाएं प्रदान की थीं। प्रयाग तथा काशी में वह दान वितरित करता था।

## कलचुरी सत्ता का विनाश

कर्ण की मृत्यु के बाद कलचुरियों की शक्ति क्रमशः क्षीण होने लगी। उसके बाद उसकी पत्नी आवल्लदेवी से उत्पन्न पुत्र यशःकर्ण राजा बना। उसके जबलपुर तथा खैरा लेखों से पता चलता है कि स्वयं लक्ष्मीकर्ण ने ही उसका राज्याभिषेक किया था। वह अपने पिता के समान शक्तिशाली नहीं था।

उसकी एकमात्र सफलता, जिसका उल्लेख उसके लेखों में किया गया है, यह थी कि वह आन्ध्र के राजा को जीतकर गोदावरी नदी तट तक पहुंच गया तथा वहां

टिप्पणी

भीमेश्वर मन्दिर में पूजा की। यह पराजित राजा देंगी का पूर्वी चालुक्य वंशी विजयादित्य सप्तम था।

किन्तु वह अधिक समय तक अपना राज्य सुरक्षित नहीं रख सका। उसे गम्भीर चुनौती काशी–कन्नौज क्षेत्र के गहड़वालों द्वारा मिली जिनका उत्कर्ष चन्द्रदेव के नेतृत्व में तेजी से हुआ। उसने काशी, कन्नौज तथा दिल्ली के समीपवर्ती सभी क्षेत्रों को जीतकर अपना स्वतंत्र राज्य स्थापित कर दिया।

इन स्थानों को उसने यशःकर्ण से ही जीता होगा। इसके अतिरिक्त परमार लक्ष्मदेव, कल्याणी के चालुक्य नरेश विक्रमादित्य षष्ठ, चन्देल नरेश सल्लक्षण वर्मा आदि ने भी कई युद्धों में यशःकर्ण को पराजित कर दिया। यशःकर्ण के बाद उसका पुत्र गयाकर्ण (1123–1151 ई॰) राजा बना।

वह भी एक निर्बल राजा था जो अपने वंश की प्रतिष्ठा एवं साम्राज्य को सुरक्षित नहीं रख सका। चन्देल नरेश मदनवर्मा ने उसे बुरी तरह पराजित किया। गयाकर्ण इतना भयाक्रान्त था कि उसका नाम सुनकर ही भाग खड़ा होता था। दक्षिणी कोशल के कलचुरी सामन्तों ने भी अपनी स्वतंत्रता घोषित कर दी तथा उनके शासक रत्नदेव द्वितीय ने भी गयाकर्ण को पराजित किया।

गयाकर्ण के बाद नरसिंह, जयसिंह तथा विजयसिंह के नाम मिलते हैं जिन्होंने बारी–बारी से शासन किया। वे भी अपने साम्राज्य को विघटन से बचा नहीं सके। बारहवीं शती के अन्त तक इस वंश ने महाकोशल में किसी न किसी प्रकार अपनी सत्ता कायम रखी।

अन्ततोगत्वा तेरहवीं शती के प्रारम्भ में इस वंश के अन्तिम शासक विजयसिंह को चन्देल शासक त्रैलोक्यवर्मन ने परास्त कर त्रिपुरी को जीतकर अपने राज्य में मिला लिया। इस प्रकार कलचुरी–चेदिवंश का अन्त हुआ।

## अपनी प्रगति जांचिए

5. कलचुरी राजवंश की स्थापना किसने की थी?

(क) शंकरगण (ख) कोकल्ल प्रथम

(ग) कृष्णराज (घ) युवराज प्रथम

6. लक्ष्मणराज के पिता का क्या नाम था?

(क) गांगेयदेव (ख) लक्ष्मीकर्ण

(ग) युवराज प्रथम (घ) शंकरगण

## 3.5 परमार

टिप्पणी

परमारों की उत्पत्ति के संबंध में विद्वानों में मतभेद हैं। इस तथ्य को समझने के लिए हमें विद्वानों द्वारा सुझाए विभिन्न तीन मतों का अध्ययन करना होगा, तभी हम निर्णय कर पाएंगे कि वास्तव में परमारों की उत्पत्ति किस प्रकार से हुई। वे तीन मत हैं–

1. गुर्जरों से उत्पत्ति का सिद्धांत
2. अग्निकुंड का सिद्धांत
3. राष्ट्रकूटों से उत्पत्ति का सिद्धांत।

### 1. गुर्जरों से उत्पत्ति का सिद्धांत

इस मत के पक्षधर डॉ. भण्डारकर, एस.सी.रे आदि विद्वान हैं। इनका मानना है कि 5वीं, 6वीं शताब्दी में गुर्जर, हूणों के साथ भारत में प्रविष्ट हुए थे। परमार भी विदेशी थे, अतः परमार गुर्जर थे। उनके तर्क हैं कि गुर्जर ओसवाल परमार वंशीय माने जाते हैं। इसलिए परमारों को गुर्जर माना जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त वे मत देते हैं कि प्रतिहारों, चहमानों तथा गुर्जरों की उत्पत्ति भी अग्निकुंड से हुई है, अतः परमार गुर्जर ही हैं।

परंतु भण्डारकर महोदय के इन मतों को स्वीकार नहीं किया जा सकता क्योंकि इनके मत पृथ्वीराजरासो के वर्णन पर आधारित हैं, जो ऐसिहासिक ग्रंथ नहीं है। किन्हीं भी तथ्यों को जानने के लिए हम ऐतिहासिक ग्रंथों के अतिरिक्त किसी अन्य ग्रंथ पर पूर्णतः निर्भर नहीं रह सकते। नौसारी अभिलेख से स्पष्ट हो गया है कि वे गुर्जरों से भिन्न थे। डा. भण्डारकर ने ऐसा कोई भी मत नहीं दिया है, जिससे सिद्ध हो सके कि गुर्जर परमार थे।

### 2. अग्निकुंड का सिद्धांत

इस सिद्धांत से एक कहानी जुड़ी है, जिसका उल्लेख परमार शासनकालीन साहित्यकार पद्मगुप्त ने अपनी रचना नवसाहसङ्क में किया है। कहानी इस प्रकार से है–

''ऋषि वशिष्ठ के पास एक कामधेनु थी, जिसे विश्वामित्र ने चुरा लिया था। इस गौ की विशेषता यह थी कि यह समस्त इच्छाओं की पूर्ति करती थी। अतः इस गौ की प्राप्ति हेतु वशिष्ठ ने आबू पर्वत पर यज्ञ किया। कुछ मंत्रों को पढ़कर अग्नि में एक आहुति दी। अग्नि से तत्काल एक योद्धा उत्पन्न हुआ, जिसने बलपूर्वक इस गौ को छीन कर ऋषि वशिष्ठ को दे दिया, प्रसन्न होकर ऋषि वशिष्ठ ने उसे परमार कहा जिसका अर्थ है शत्रुओं का नाश करने वाला। उसे भूतल का आदि राजा बनाया। इस वीर से

टिप्पणी

जो वंश चला, उसे ही इतिहास में परमार वंश कहा गया है।'' यह कहानी कितनी सत्य है इसका कोई प्रमाण नहीं है।

इसी शृंखला से कर्नल टॉड महोदय अपना मत देते हुए बताते हैं कि देवता असुरों के दुष्कृत्यों से परेशान थे, अतः उन्होंने भगवान शंकर से प्रार्थना की और भगवान शंकर ने अग्निकुंड से चार योद्धा उत्पन्न किए, जिनमें एक परमार था। इसी से परमार वंश की स्थापना हुई।

ओझा का मानना है कि परमार के बसन्तगढ़ अभिलेख, आबू पर्वत के अभिलेख, उदयपुर अभिलेखों में वशिष्ठ द्वारा अग्निकुंड से परमारों की उत्पत्ति का वर्णन किया गया है। शायद यह कथा इतनी प्रचलित हो गई होगी कि तत्कालीन प्रशस्तिकारों ने परमारों के पूर्वज का नाम धूमराज रख दिया, क्योंकि धूम का संबंध अग्नि से है।

इस मत को ऐतिहासिक नहीं माना जा सकता है। यह सिद्धांत पूर्णतः अनुमान परक है।

### 3. राष्ट्रकूटों से उत्पत्ति का सिद्धांत

राष्ट्रकूटों से उत्पत्ति के मत के पक्षधर डॉ. डी.सी. गांगुली हैं। वे अपने इस मत के पक्ष में कहते हैं कि हरसोल अभिलेख में परमारों को राष्ट्रकूटों से संबंधित कहा गया है। किंतु ऐसा इसलिए माना है, क्योंकि सीयक द्वितीय ने राष्ट्रकूटों को पराजित किया था, और मान्यखेत को लूटा था। वह राष्ट्रकूटों के ताम्रपत्रों को भी लेता आया था तथा उसी ताम्रपत्र पर उसने अपने द्वारा दिए गए दान का उल्लेख किया। इसी कारण प्रारंभिक भाग पर राष्ट्रकूटों और अन्य भाग पर परमार शासकों का उल्लेख है।

दूसरा मत देते हुए गांगुली महोदय कहते हैं कि परमार शासक मुंज ने 'श्री वल्लभ' तथा 'पृथ्वी वल्लभ' की उपाधियां धारण कीं, जो कि राष्ट्रकूटों की उपाधियां थीं। इस मत के खंडन में यह तर्क है कि राष्ट्रकूटों ने चालुक्यों को पराजित करके उनकी उपाधियां धारण की थीं। इसी प्रकार परमारों ने भी कीं।

तीसरा मत यह है कि आइने–अकबरी में दक्षिणी भारत के धन्नजय को परमार वंश का संस्थापक बताया है, जो मालवा में आकर अपना राज्य करने लगा था किंतु यह मत विश्वसनीय नहीं है, क्योंकि परमारों के किसी अभिलेख में इस तरह की बात नहीं कही गई है, और आइने–अकबरी परमारों के बहुत बाद की रचना है। अतः इस पर किस प्रकार से विश्वास किया जा सकता है।

इस प्रकार तीनों मतों के खंडन हो जाने पर एक ही तथ्य शेष रहता है, कि मुंज के राजकवि हलायुद्ध ने मुंज को ब्राह्मण क्षत्रिय बताया है। जिस प्रकार शत्रु और सातवाहन प्रारंभ में ब्राह्मण थे किंतु युद्ध कर्म होने के कारण बाद में वे क्षत्रिय कहे जाने

लगे। इसी प्रकार परमार भी ब्राह्मण थे किंतु युद्ध कर्म होने के कारण वे क्षत्रिय कहलाए। परमार स्वयं को वशिष्ठ गोत्र का बताते हैं। वशिष्ठ ब्राह्मण गोत्र के हैं। अतः परमार ब्राह्मणक्षत्र थे।

टिप्पणी

## परमारों का वंश वृक्ष

10वीं शताब्दी में उपेन्द्रकृष्णराज नामक व्यक्ति ने धारा नगरी में परमार वंश की स्थापना की थी। धारा नामक नगरी इनकी राजधानी थी। माना जाता है कि प्रारंभ में ये राष्ट्रकूट और प्रतिहारों के सामंत थे।

**परमारों का वंश वृक्ष**

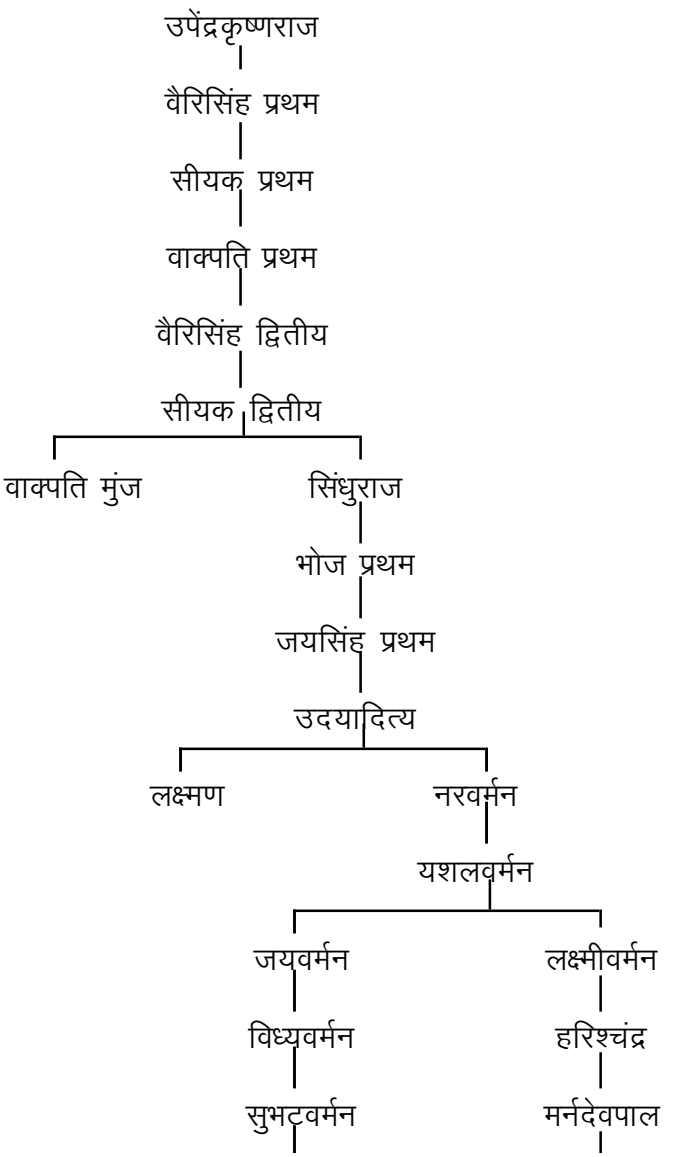

टिप्पणी

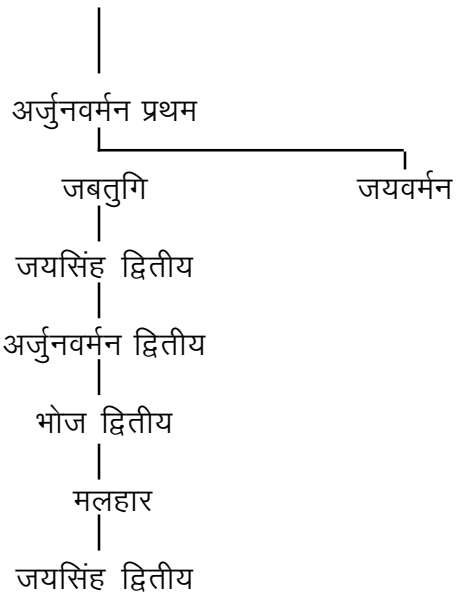


## प्रारंभिक शासक

जैसा कि उल्लेख किया जा चुका है कि उपेंद्रकृष्णराज ने परमार वंश की स्थापना की थी। ये ब्राह्मणक्षत्र थे। इस समय की राजनीति अशान्त थी, प्रतिहारों तथा राष्ट्रकूटों का युद्ध चल रहा था। गोविन्द III जब उत्तरी भारत के अभियान पर आया था, तब परमारों ने उनकी अधीनता स्वीकार की और जब प्रतिहार शक्तिशाली हुए तब परमार प्रतिहारों के अधीन हो गए थे। उदयपुर लेख से ज्ञात होता है कि इन्होंने स्वयं अपने पराक्रम से ही राजत्व में उच्च पद प्राप्त किया होगा। उपेंद्र के पश्चात अनेक छोटे–छोटे शासक हुए जैसा कि वंश वृक्ष में दिखाया गया है, जिन्होंने 790 से 945 ई. तक शासन किया। ये सभी राष्ट्रकूटों और प्रतिहारों के सामंत थे, अतः इनके विषय में जानकारी उपलब्ध नहीं है। परमार वंश का प्रथम शासक सीयक हर्ष था।

## परमार शासक सीयक की उपलब्धियां

सीयक द्वितीय परमार वंश का प्रथम स्वतंत्र व शक्तिशाली शासक था। वह 949 ई. में शासक बना। उसने लगभग 23 सालों तक शासन किया। जब वह सिंहासनारूढ़ हुआ तब वह राष्ट्रकूटों के अधीन सामंत था। इस समय कृष्ण तृतीय राष्ट्रकूट सम्राट था। इसकी 968 ई. में मृत्यु हो गई। सीयक ने स्वयं को स्वतंत्र शासक घोषित कर दिया किंतु नये राष्ट्रकूट शासक खोट्टिग ने सीयक को पुनः अपने अधीन करने का प्रयास किया और दोनों के बीच 972 ई. में युद्ध हुआ जिसमें सीयक द्वितीय विजयी रहा। इसका उल्लेख नागपुर अभिलेख में भी किया गया है। अब सीयक का राज्य ताप्ती नदी तक विस्तृत हो गया।

सीयक ने चालुक्य नरेश योगराज द्वितीय को भी पराजित किया था। 973 ई. में सीयक की मृत्यु हो गई।

## परमार शासक मुंज के शासनकाल की प्रमुख घटनाएं

टिप्पणी

मुंज सीयक का सगा पुत्र नहीं था, वरन सीयक का अपना कोई पुत्र न होने के कारण उसने मुंज को गोद लिया था। 'प्रबंध चिन्तामणि' में मुंज के विषय में उल्लेख किया गया है कि एक दिन सीयक को एक बालक घास पर पड़ा हुआ मिला, वह उसे अपने साथ घर ले आया और गोद ले लिया तथा अपने पुत्र की भांति उसका लालन–पालन किया। सीयक की अब तक अपनी कोई संतान न थी। किंतु बाद में उसे अपनी रानी से पुत्र प्राप्ति हुई, जिसका नाम सिंधुराज था। घास पर मिलने के कारण सीयक ने उसका नाम मुंज रखा तथा उसे अपना उत्तराधिकारी बनाया किंतु सटीक साक्ष्यों के अभाव में विद्वानों में इस कथानक को लेकर मतभेद है।

- मुंज अपने समय का पराक्रमी योद्धा था, मुंज ने हूणों को पराजित किया था, इसकी पुष्टि विक्रमादित्य पंचम के कांथेम दान पत्रों से होती है।
- मुंज ने कलचुरियों की राजधानी त्रिपुरी पर आक्रमण किया और अधिकार कर लिया। इस समय युवराज द्वितीय मुंज का समकालीन था। इस आक्रमण का उल्लेख उदयपुर अभिलेख में किया गया है।
- बलिराज चहमान इस समय नड्डुल में शासन कर रहा था। मुंज ने उस पर आक्रमण किया तथा किराटु और आबू पर्वत तक अपना अधिकार कर लिया, अब उसने नड्डुल पर अधिकार के उद्देश्य से आक्रमण किया, किंतु सफल न हो सका। सुंधा अभिलेख में बलिराज द्वारा मुंज की पराजय का उल्लेख किया गया है।
- मेवाड़ पर इस समय गुहिल शासक शक्तिकुमार शासन कर रहा था। मुंज ने उस पर आक्रमण किया तथा गुहिलों की राजधानी अघाट को खूब लूटा। तभी राष्ट्रकूट नरेश धवल ने शक्तिकुमार को सहायता दी, और उसने मुंज से अपना राज्य वापस ले लिया।
- मुंज ने चालुक्य नरेश मूलराज द्वितीय पर आक्रमण किया और उसे परास्त किया। मूलराज द्वितीय इस समय गुजरात का शासक था।
- अब मुंज ने तैल द्वितीय पर आक्रमण किया। तैल कल्याणी के चालुक्य शाखा से संबंधित था। मुंज ने उसे 6 बार शिकस्त दी थी। अब यह सातवां आक्रमण था, मुंज के सेनापति रूद्रादित्य ने उसे आक्रमण करने से रोका किंतु वह नहीं माना और आक्रमण किया। वह सफल होते हुए जब राज्य के भीतर घुसा तभी तैल II ने उसे घेर लिया तथा बंदी बना लिया। मुंज, तैल II की बहन का प्रेमी था। बंदी अवस्था में रहते समय मुंज ने वहां से भागने की योजना बनाई, तैल II की बहन को इस योजना का पता होना मुंज की मौत का कारण बना। उसने अपने भाई तैल II को इस योजना के विषय बता दिया। तभी तैल II ने मुंज की हत्या करा दी।

टिप्पणी

इसके विषय में अभिलेख आइने–ए–अकबरी तथा तत्कालीन अभिलेखों से पता चलता है।

मुंज पराक्रमी योद्धा होने के साथ–साथ कला प्रेमी भी था। उदयपुर के अभिलेख में उसकी प्रशंसा की गई है। नवसाहसांकचरित का रचयिता पदमगुप्त इसी के दरबार का रत्न था। इसके अतिरिक्त दशरूपक के धनंजय, यशोरूपावलोक के धनिष्क जैसे विद्वान भी इसी काल में हुए। मुंज ने धारा में मुंजसागर का निर्माण भी करवाया था, जो आज भी विद्यमान है। धनपाल का संस्कृति ग्रंथ तिलक मंजरी इसी काल की रचना है।

## परमार शासक सिंधुराज

सीयक द्वितीय का दूसरा पुत्र तथा मुंज का अनुज सिंधुराज शासक बना। मुंज का कोई पुत्र नहीं था। उसने साम्राज्य विस्तार के लिए अनेक युद्ध किए तथा उत्तराधिकार में प्राप्त साम्राज्य को अक्षुण्ण रखा। वह महान विजेता, कुशल साम्राज्य निर्माता था। शासक बनते ही उसने सबसे पहले उन क्षेत्रों पर अपना ध्यान केंद्रित किया जिन क्षेत्रों को तैल ने मुंज से प्राप्त किया था।

- इस समय तैल द्वितीय का पुत्र सत्याश्रय शासक था, सिंधुराज ने उस पर आक्रमण करके उसे पराजित किया और अपना राज्य वापस प्राप्त कर लिया।
- चालुक्य नरेश गोंगिराज इस समय लाट पर शासन कर रहा था। सिंधुराज ने उसे भी पराजित कर दिया।
- उदयपुर प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि सिंधुराज ने हूणों को भी पराजित किया था।
- सिंधुराज ने दक्षिणी कोसल पर भी आक्रमण किया, उस समय वहां सोमनाथ का शासन था। सिंधुराज ने उसे भी पराजित करके अपने राज्य में मिला लिया था।
- मूलराज उस समय अपने पुत्र चामुण्डराज के साथ गुजरात पर शासन कर रहा था। सिंधुराज ने उस पर आक्रमण करके उसे भी पराजित किया।
- नवसाहसांक चरित के विवरण के अनुसार–''नांगवंशीय राजा विद्याधरी दक्षिण में शासन कर रहा था। वह अपने पड़ोसी असुर ब्रजकुश से भयभीत था, तभी उसने सिंधुराज से सहायता मांगी। दोनों ने मिलकर उस पर आक्रमण कर उसकी हत्या कर दी। विद्याधरी ने अपनी पुत्री शशिप्रभा का विवाह सिंधुराज से कर दिया।

## परमार शासक भोजराज का साम्राज्य विस्तार

1000 ई. में सिंधुराज का पुत्र भोजराज शासक बना। वह अपने वंश का सर्वाधिक शक्तिशाली शासक था। भारत के प्रसिद्ध राजाओं में उसे गिना जाता है। उसने भी अपने पिता के समान अपने साम्राज्य विस्तार के लिए अनेक वंशों से युद्ध किया और सफलता प्राप्त की।

टिप्पणी

- मेहतुंग और भोजचरित से परमार तथा चालुक्यों के संघर्ष का वर्णन मिलता है। इस युद्ध में भोजराज का सामना चालुक्य नरेश जयसिंह द्वितीय से हुआ था। इस युद्ध में कलचुरी नरेश गांगेयदेव और चोल नरेश राजेन्द्र ने भोज को जयसिंह II के विरुद्ध सहायता की थी। इन सम्मिलित सेनाओं ने जयसिंह को परास्त किया। किंतु बेलगांव अभिलेख में लिखा है कि जयसिंह ने अपने सामंत वाचिराज से मिलकर आक्रमणकारियों को पराजित किया।
- राजेन्द्र चोल के अभिलेख विरूमलाई तथा तिरूवंवलगदु अभिलेख में उड़ीसा के शासक इन्द्ररथ का उल्लेख मिलता है, जिसकी राजधानी आदिनगर थी। उदयपुर प्रशस्ति से विदित होता है कि भोज ने इन्द्रप्रस्थ को भी पराजित किया था। डॉ. गांगुली का मानना है कि राजेन्द्र चोल की सहायतार्थ भोज ने इन्द्ररथ को परास्त किया था।
- मीराज लेख से ज्ञात हुआ है कि कोंकण नरेश काशिदेव राज्य कर रहा था, जिसे भोज ने परास्त किया था।
- इस समय तक मुस्लिम आक्रमण आरंभ हो चुके थे, इसलिए पहले के शासकों ने मुस्लिम आक्रमणों का सामना किया था। भोज को भी मुस्लिम आक्रमणों का सामना करना पड़ा। 1008 ई. में भोज के शासनकाल में महमूद गजनवी ने भटिण्डा के शाही नरेश आनंदपाल पर आक्रमण किया था। फरिश्ता लिखता है कि उज्जैन, ग्वालियर, कालिंजर, कन्नौज, दिल्ली, अजमेर के शासकों ने आनंदपाल को सहायता दी थी। ज्ञात है कि इस समय उज्जैन का शासक भोजराज था। फरिश्ता के अनुसार जब 1043 ई. में पुनः मुस्लिम आक्रमण हुआ था, तब हिंदू राजाओं ने एक सम्मिलित सेना के साथ मुस्लिम सेना के विरुद्ध सैनिक कार्यवाही की। संभव है कि इसमें भोज ने भी सहयोग दिया हो। इसी कारण से उदयपुर प्रशस्ति में भोज को तुरूष्कों को परास्त करने वाला कहा गया है।
- कच्छप वंश का शासक कीर्तिराज इस समय ग्वालियर में शासन कर रहा था। यह भोज का समकालीन था। चंदेल नरेश धंग ने ग्वालियर को प्रतिहारों से छीन कर अपने सामंत वजदामन को दिया था। ग्वालियर अभिलेख में यह लिखित है कि ग्वालियर पर प्रतिहारों का अधिकार था। ससबाहु अभिलेख से यह पता चलता है कि कीर्तिराज ने मालवा सेना को परास्त किया था। विद्वानों के अनुसार विद्याधर ने अपने सामंत की इस युद्ध में सहायता भी की थी। परिजातमंजरी से भोज द्वारा कलचुरियों को परास्त करने का विवरण मिलता है। इसके अतिरिक्त उदयपुर प्रशस्ति तथा कल्वन अभिलेख से पता चलता है कि भोज ने कल्चुरी नरेश गांगेयदेव पर आक्रमण किया और उसे परास्त किया।
- कन्नौज पर प्रतिहारों का शासन था। चंदेल नरेश विद्याधर ने प्रतिहारवंशीय शासक राज्यपाल से कन्नौज छीन लिया। भोज बुन्देलखंड पर अपना अधिकार करना चाहता था, परंतु विद्याधर ने उसे पराजित किया।

टिप्पणी

- मुंज द्वारा चित्तौड़ पर तो अधिकार कर लिया गया था। मेवाड़ पर इस समय गुहिलों का शासन था। चित्तौड़ में भोज ने त्रिभुवननारायण का मंदिर बनवाया था। विमलवसही अभिलेख से स्पष्ट होता है कि चित्तौड़ पर भोज ने अधिकार कर लिया था।
- कन्नौज पर प्रतिहार वंशीय यशपाल शासन कर रहा था। भोज ने कन्नौज पर आक्रमण करके प्रतिहार वंश का अंत कर दिया, किंतु फिर भी वह कन्नौज पर अधिकार नहीं कर सका, क्योंकि कलचुरी नरेश कर्ण ने कन्नौज पर अपना अधिकार कर लिया था।
- भोज ने शाकम्भरी तथा नड्डुल के चहमानों से भी युद्ध किया और उन्हें मौत के घाट उतार दिया। इसकी पुष्टि पृथ्वीराज विजय से भी होती है।
- भोज को 1043 ई. में पुनः कल्याणी के चालुक्यों से युद्ध करना पड़ा। पहले उसका सामना चालुक्य नरेश जयसिंह द्वितीय से फिर सोमेश्वर प्रथम से हुआ। चालुक्य नरेश सोमेश्वर प्रथम ने मालवा पर आक्रमण किया और भोज की राजधानी धारा पर अधिकार कर लिया। सामेश्वर के लौट जाने पर भोज ने आधे से अधिक भाग पर अपना अधिकार कर लिया था। सुदि अभिलेख से सोमेश्वर की विजय की पुष्टि होती है।

भोज ने अपने समकालीन समस्त वंशों से युद्ध किया और साम्राज्य का विस्तार किया। इस समय भोज वृद्धावस्था से गुजर रहा था किंतु अब उसके चारों ओर शत्रु खड़े थे। गुजरात के चालुक्यों और त्रिपुरी के कलचुरियों ने उसके विरुद्ध सेना सम्मिलित की और उस पर आक्रमण किया। वृद्धावस्था होने के बाद भी भोज ने उनका सामना किया, किंतु वह संघर्ष के दौरान ही बीमार पड़ गया और उसकी मृत्यु हो गई। अब परमार वंश कमजोर पड़ने लगा था। भोज के उत्तराधिकारी जयसिंह ने सम्मिलित सेना का नेतृत्व कर रहे चालुक्य भीम प्रथम तथा कर्ण कलचुरियों के सम्मुख आत्मसमर्पण कर दिया। इस प्रकार परमार वंश का अंत हो गया।

## भोज का व्यक्तित्व

भोज के पश्चात परमार वंश का अंत हो गया। भोज का अंत दुखद था, किंतु यह सत्य है कि भोज, परमार वंश का सबसे प्रतापी, पराक्रमी व महत्वांकाक्षी योद्धा था। उसने अपने भाई की पराजय का बदला भी लिया और अपने साम्राज्य को सर्वोच्चता के शिखर पर पहुंचा दिया। उसने अपने पराक्रम से मालवा, कोंकण, खानदेश, भिलसा, बांसवाड़ा, चितौड़ और गोदावरी की घाटी के भाग अपने अधिकार में किए थे। भोज के शासक

होने से पूर्व परमार राज्य की राजधानी उज्जैन थी। बाद में भोज ने धारा को अपनी राजधानी बनाया था। इसकी पुष्टि प्रबंधचिंतामणि से होती है।

टिप्पणी

साम्राज्य निर्माता होने के साथ–साथ वह कलाप्रेमी तथा उच्चकोटि का विद्वान भी था। इसलिए उदयपुर प्रशस्ति में उसे कविराज कहा गया है। उसने अनेक ग्रंथों की रचना की थी, जैसे– सरस्वती कण्ठाभरण, सिद्धांतसंग्रह, राजमार्तण्ड, योगसूत्रवृति, विद्याविनोद, युक्तिकल्पतरू, आदित्यप्रताप सिद्धांत, आयुर्वेद सर्वस्व। वह ज्योतिष, दर्शन, चिकित्साशास्त्र, कला, व्याकरण तथा राजनीति का प्रकाण्ड विद्वान था।

भोज स्थापत्य का भी प्रेमी था। उसने अपने नाम पर भोजपुर का निर्माण कराया था, जहां विशाल भोजसर की भी स्थापना की गई थी। यह भारत का प्रसिद्ध सर था। उदयपुर प्रशस्ति से विदित होता है कि उसने केदारेश्वर, रामेश्वर, सोमनाथ, सुडाल, रूद्र के अनेक मंदिरों का निर्माण करवाकर संसार को अलंकृत किया था। ये मंदिर अब उपलब्ध नहीं हैं।

स्थापत्य के अतिरिक्त भोज को साहित्य में भी अत्यधिक रुचि थी। भोज की पत्नी लीलावती विदुषी थी। भोज के समय में विद्वान कालिदास का नाम भी आता है, जो संभवतः कोई अन्य ही कालिदास रहा होगा। उसके शासनकाल के विद्वानों में धनपाल, त्रिविक्रम, भास्कर भट्ट थे। भास्कर भट्ट कवि त्रिविक्रम का पुत्र था, जिसे भोज ने विद्यापति की उपाधि दी थी। धनपाल ने तिलकमंजरी की रचना की। उसने धारा के सरस्वती मंदिर में एक प्रसिद्ध संस्कृत विद्यालय की स्थापना की थी। धारा में कमलमौल में इसी प्रकार का एक विद्यालय था। इसकी दीवारों पर वर्णमाला, व्याकरण के कुछ अंश आज भी देखे जा सकते हैं। इससे भोज का विद्या प्रेमी होने का पता चलता है।

इस प्रकार भोज महान साम्राज्य निर्माता के साथ–साथ कलाप्रेमी तथा साहित्य का मर्मज्ञ भी था।

## भोज के उत्तराधिकारी

भोज की मृत्यु के पश्चात उसका पुत्र जयसिंह परमार सिंहासन पर बैठा। जयसिंह ने कल्याणी के चालुक्यों की सहायता से कर्ण और भीम को पराजित किया और अपने राज्य पर पुनः अधिकार कर लिया। किंतु यह अधिकार अक्षुण्ण नहीं रह सका। कल्याणी के नये शासक सोमेश्वर तथा कर्ण ने मालवा पर आक्रमण कर अधिकार कर लिया, इस युद्ध में जयसिंह मारा गया। अब जयसिंह का उत्तराधिकारी उदयादित्य था, उसने शाकम्भरी के चौहान विग्रहराज द्वितीय से सहायता प्राप्त कर, पुनः अपना राज्य वापस ले लिया।

इसके पश्चात परमार वंश के अनेक शासक हुए किंतु कोई भी अपने राज्य को अक्षुण्ण नहीं रख सका और परमार वंश की अवनति हो गई।

## परमारों का शासन प्रबंध

परमारों के सफल साम्राज्य विस्तार और शासन का कारण उनका कुशल शासन प्रबंध था। उनका शासन राजतंत्रात्मक था, इसका तात्पर्य यह नहीं कि वे निरंकुश शासक

टिप्पणी

थे। वे प्रजा के हितकारी थे। उन्होंने महाराजाधिराज अथवा परमभट्टारक महाराजाधिराज की उपाधियां धारण की थीं। राजा, राज्य के समस्त पदों पर नियुक्तियां स्वयं करता था। राजा की इच्छा तक ही कोई इन पदों पर रह सकता था। राजा स्वयं राज्य का सर्वोच्च न्यायालय था। युद्ध में वह स्वयं सेना का संचालन करता था। राजा के प्रत्येक कार्यों की सूची तैयार होती थी। राजा ने कुशल संचालन के लिए अनेक अधिकारी नियुक्त किए थे जो निम्नलिखित हैं–

**युवराज**–राजा के पुत्र को युवराज कहा जाता था। पिता की मृत्यु के पश्चात पुत्र ही उत्तराधिकारी था, एक से अधिक पुत्र होने पर ज्येष्ठ पुत्र ही राजा बनता था। पुत्र न होने की स्थिति में भाई या भाई का पुत्र राजा बनता था परंतु विवादास्पद स्थिति में उत्तराधिकार युद्ध द्वारा ही प्राप्त किया जाता था, जैसे उदयादित्य ने किया था।

**अमात्य**–अमात्य मंत्रियों के समूह को कहा जाता था। मंत्री दो प्रकार के होते थे–

**बुद्धि सचिव**– यह नीतियों का निर्धारण करता था।

**कर्म सचिव**– यह बनी हुई नीतियों को कार्यान्वित करता था।

धनपाल द्वारा रचित तिलकमंजरी में इसका उल्लेख मिलता है। मंत्रीपद पर योग्य को ही नियुक्त किया जाता था।

**महासंधि विग्रहिक**–यह युद्ध के समय और शांति दोनों समय राजा को सहयोग प्रदान करता था। यह युद्ध व शांति विभाग का अधिकारी था।

**दौवारिक**–दौवारिक, एक प्रमुख मंत्री था, जिसका कार्य उन व्यक्तियों पर नजर रखना था, जो राजा के पास आते थे। इसे महाप्रतिहार भी कहा जाता था।

**महादंडनायक**–यह पुलिस विभाग का सर्वोच्च अधिकारी था। संभवतः वर्तमान समय जैसी ही पुलिस व्यवस्था रही होगी।

**महाधर्मस्थेय**–यह धार्मिक कृत्यों से संबंधित था और धर्म से जुड़े कार्यों में राजा को सलाह देता था। यह सर्वोच्च न्यायाधीश भी होता था किंतु राजा का निर्णय अंतिम निर्णय था।

**अक्षपटलिक**–इसका कार्य राज्य के समस्त विभागों का लेखा–जोखा रखना होता था।

**दूतक**–दूतक का कार्य था राजाज्ञा को एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुंचाना।

**कोषरक्षक**–राज्य के समस्त कोष की सुरक्षा के लिए एक पद था जिसे कोषरक्षक कहा जाता था।

**महावैध**–यह राजा का निजी चिकित्सक होता था।

**अंगरक्षक**– ये विशेष प्रकार के अंगरक्षक होते थे जो राजा की व्यक्तिगत रक्षा के लिए नियुक्त किए जाते थे।

टिप्पणी

इस प्रकार उपरोक्त मंत्रियों की सहायता से राजा शासन का संचालन करता था। परमार शासन काफी विस्तृत था और एक स्थान से राजा संपूर्ण साम्राज्य का संचालन नहीं कर सकता था। अतः संपूर्ण साम्राज्य को 'प्रांतों' में विभक्त किया गया था जिसे मण्डल कहा जाता था। यह एक सामंत की निगरानी में होता था। मण्डल को 'जिलों' में और जिले को 'भोग' में विभक्त किया गया था। जिलों को 'विषय' कहते थे जिसके अधिकारी को विषयपति कहा जाता था। प्रदेश की सबसे बड़ी इकाई भोग थी। उसके अधिकारी को 'भोगपति' कहा जाता था। इसके बाद 'ग्राम' आते थे। यह प्रशासन की सबसे छोटी इकाई थी। कभी–कभी ग्रामों को दान में भी दिया जाता था जिसे 'अग्रहार' कहते थे।

राज्य की आय का प्रमुख साधन उपज का 6 वां भाग होता था जो भूमिकर धन के रूप में लिया जाता था। उसे हिरण्य कहते थे।

इसके अतिरिक्त चुंगी कर लिया जाता था जिसे 'शुल्क' कहा गया है। यह क्रय विक्रय की सामग्री पर लिया जाता था।

एक अन्य कर था जिसे 'उट्टादाय' कहते थे जो जलमार्गों से लाए गए सामानों पर लिया जाता था। स्थलमार्ग से लाई गई सामग्री पर जो कर था उसे 'मार्गदाय' कहा जाता था।

इस काल में व्यापारी काफी समृद्ध हो चुके थे। उन्होंने अपना एक संघ बनाया था जिसे 'श्रेणी' कहा गया। श्रेणियों ने नयी वस्तुओं के उत्पादन के लिए कच्चे माल की प्राप्ति में तथा उनके क्रय–विक्रय में अत्यधिक योगदान दिया।

परमार सेना अत्यधिक शक्तिशाली रही होगी जिसके कारण परमारों ने विशाल साम्राज्य की स्थापना की। परमारों की सेना दो प्रकार की होती थी–

1. **माल**– इनकी जीविका के लिए राज्य की ओर से भूमि दी जाती थी। इनका पद वंशानुगत होता था।
2. **भृत्य**– ये वे सैनिक थे जो धन लेकर किसी भी राजा के पक्ष में आवश्यकता पड़ने पर ही लड़ते थे। इसलिए इन्हें भाड़े का सैनिक कहा जाता था।

परमार सेना अश्वारोहियों, हस्तियों व पैदल सैनिकों से सुसज्जित थी। युक्तिकल्पतरू में दो प्रकार की नौकाओं का वर्णन किया गया है– सामान्य तथा विशेष। जिससे अनुमान लगाया गया है कि परमारों के पास नौसेना भी रही होगी।

राजा युद्ध में स्वयं सेना का संचालन करता था। सेनापति बलधिकृत महापात्र राजा के सहयोगी थे। सेना तलवार, शूल, चक्र, परिधि जैसे घातक हथियारों से लैस थी। परमारों के पास यंत्र होने का भी प्रमाण मिलता है जो शत्रुओं पर मशीन से पत्थर की बौछार करता था। इस प्रकार परमारों के कुशल शासक के पास शक्तिशाली सेना भी उपलब्ध थी।

टिप्पणी

परमार शासन में सामंतों का भी महत्वपूर्ण स्थान था। सामंतों का उदय तो गुप्त काल में हो गया था तथा धीरे–धीरे इन्होंने अपनी महत्ता भी प्राप्त कर ली थी। इनके पास विशाल भूखंड होते थे।

आय का कुछ भाग केंद्रीय सरकार को दिया जाता था और शेष इनके अधीन था। ये सामंत छोटे राजाओं के रूप में शासन करते थे। ये किसी राजा के अंतर्गत होते थे और जब तक ये उनके प्रति स्वामिभक्ति रखते थे अथवा कर देते थे तब तक राजा उनके शासन में हस्तक्षेप नहीं करते थे। आवश्यकता पड़ने पर राजा की सहायता हेतु अपनी सेना भी देते थे। इनके पद पैतृक थे।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि परमारों की श्रेष्ठ शासन व्यवस्था व कुशल सेना के कारण साम्राज्य के प्रत्येक क्षेत्र में वृद्धि हुई।

## परमार कला एवं साहित्य

एक ओर जहां परमार शासक युद्ध नीति व कुशल प्रशासन के निर्माता थे वहीं दूसरी ओर वे कला व सहित्य के मर्मज्ञ तथा आश्रयदाता थे। उनकी कला के उदाहरण उनके संपूर्ण राज्य क्षेत्र में आज भी उपलब्ध हो जाते हैं। कला के क्षेत्र में वे वास्तु तथा स्थापत्य दोनों के कुशल जानकार थे।

**स्थापत्य कला**–स्थापत्य कला के क्षेत्र में भोज का शासन काल अपने चरम पर था। परमार वंश अपनी स्थापत्य कला के लिए सदैव प्रसिद्ध रहा है। उस काल के स्थापत्य के कुछ उदाहरण इस प्रकार से हैं–

- **शिवमूर्ति**–परमार काल के स्थापत्य में शिव मूर्ति विशेष उल्लेखनीय है जो नृत्य मुद्रा में सालरपटन में प्राप्त हुई है। दशभुजाओं वाली एक मूर्ति रामगढ़ से तथा उज्जैन में तांडव करती शिव की मूर्ति मिली है। इसमें भी शिव की दस भुजाएं दिखाई गई हैं। एक अन्य मूर्ति जिसमें शिव छः भुजाओं, अस्त्र शस्त्रों से सुसज्जित हैं तथा अपने बायें पैर से राक्षस को कुचलते हुए दिखाए गए हैं उदयपुर पहाड़ी से प्राप्त हुई है।
- **पार्वती की मूर्ति**–यह मूर्ति धारा से प्राप्त हुई है, जिसमें पार्वती पंच साधना में लीन हैं। यह उदयादित्य के शासनकाल की है।
- **विष्णु की मूर्ति**–विष्णु की एक मूर्ति हिरण्यकश्यप का वध करते हुए, विष्णु के नरसिंह अवतार की है जो आगरा से प्राप्त हुई है। कोहल मंदिर से वराह की मूर्ति भी प्राप्त हुई है। इस काल की विष्णु मूर्तियों में कई अवतारों को दिखाया गया है।
- **वाग्यदेव की मूर्ति**–यह मूर्ति कर्णफूल, कंठहार, मुकुट आदि आभूषणों से सुसज्जित की गई है। यह भोज के शासनकाल की है।
- **आदिनाथ की मूर्ति**–भोजपुर के एक जैन मंदिर से आदिनाथ की मूर्ति प्राप्त हुई है जिससे यह अनुमान किया गया है कि परमार शासक धर्मनिरपेक्ष थे।

टिप्पणी

## वास्तुकला

**मंदिर**—मंदिरों में उदयपुर का उदेश्वर मंदिर है, जिसे उदयादित्य ने बनवाया था। इसके गर्भगृह के भीतर शिवलिंग स्थित है और गर्भगृह के ऊपर भी छोटे शिखर स्थापित किए गए हैं। इसमें एक सभामंडप तथा तीन प्रवेश द्वार हैं। मंदिरों का संपूर्ण बहिर्भाग ब्रह्मा, शिव, गणेश, विष्णु, तथा दुर्गा आदि की आकृतियों से सुसज्जित है।

'निमर का सिद्धेश्वर मंदिर' परमार कला का उत्कृष्ट उदाहरण है। यह एक ऊंचे चबूतरे पर स्थित है। गर्भगृह के ऊपर एक विशाल शिखर है। इसके सम्मुख एक सभा मंडप है जो भजन कीर्तन के लिए प्रयोग किया जाता है। मंदिरों की छत तथा स्तंभ अनेक प्रकार के स्थापत्य से अलंकृत हैं।

'महाकालेश्वर का मंदिर' परमारों के नगरों से थोड़ा दूर स्थित है। इसका सभामंडप नष्ट हो चुका है किंतु शिखर अब भी सुरक्षित है।

इसके अतिरिक्त 'नीलकण्ठेश्वर का मंदिर', 'भोजेश्वर मंदिर', 'विमलवसाही' और 'तेजपाल मंदिर' विशेष उल्लेखनीय हैं।

परमार वास्तुकला के क्षेत्र में परमारों द्वारा निर्मित किए नगरों व सरों का उल्लेख करना आवश्यक है। मुंज ने मुंजनगर, भोज ने धारानगरी व भोजपुर, उदयादित्य ने उदयपुर, देवपाल ने देवपाल पुर की स्थापना की थी।

इसके अतिरिक्त मुंज ने मुंजसागर, भोज ने भोजसर का निर्माण करवाया। 35 वर्ग मील क्षेत्र में फैला भोज सागर निर्माण कला के क्षेत्र में प्रमुख है। इसके किनारे भोज नगर की स्थापना की गई थी। यह भारत का सबसे बडा सर था। उदयादित्य ने उदयसमुंद्र तथा तथा देवपाल ने देवपाल सागर का निर्माण करवाया था।

## साहित्य

**मुंज**—परमार शासक मुंज स्वयं एक महान विद्वान था। उदयपुर प्रशस्ति से इसकी पुष्टि होती है। मुंज ने मुंज प्रतिदेश व्यवस्था नामक ग्रंथ की रचना की थी जो एक भौगोलिक ग्रंथ था। उसे कवि वृश भी कहा जाता था।

**सीता**—यह एक कवयित्री थीं। इन्होंने उपेन्द्र पर एक प्रशस्ति लिखी थी। विद्वानों के अनुसार यह भोज की समकालीन थीं।

**देवसेन**—यह परमार नरेश वैरिसिंह के शासनकाल में हुआ था। इसने प्राकृत भाषा में दर्शनसार नामक ग्रंथ लिखा था।

**धनंजय**—धनंजय ने दशरूप नामक ग्रंथ लिखा था जो नाटयशास्त्र पर आधारित था।

**धनिक**—धनिक ने दशरूप पर एक टीका लिखी थी जो अक्लोक के नाम से प्रसिद्ध हुई। यह धनंजय का भाई था।

**धनपाल**—इसकी सतयपुरीय महावीर, उत्साह चतुर्विंशिकाटीका, ऋषि पंचारिका तथा महावीर स्तुति प्रमुख हैं। इसने सीयक द्वितीय के काल में पैयलच्छीनाममाला की

टिप्पणी

रचना की। यह एक प्राकृत कोष है। संस्कृत ग्रंथ तिलकमंजरी भोज के शासन काल में लिखी गई थी।

**अमितगति**–इसने धर्मपरीक्षा, उपासकाचार्य सामयिक पाठ, आराधना तथा सुभाषरत्न की रचना मुंज के शासन काल में की थी।

**पद्मगुप्त**–इसका प्रसिद्ध काव्य नवसाहसांक चरित सिंधुराज के शासन काल में लिखा गया था।

**प्रभाचंद**–प्रभाचंद भोज के समय का एक जैनाचार्य था। इसने प्रेमयक मलमार्तंड नामक ग्रंथ लिखा था।

**वीर**–एक अन्य जैन विद्वान वीर हुआ था। जम्बुस्वामीचरित्र इसी के द्वारा लिखा गया था।

इस प्रकार परमार शासन काल में अनेक विद्वान हुए। भोज ने 84 ग्रंथों की रचना की थी। ये ग्रंथ काव्य, व्याकरण, ज्योतिष, योग, चिकित्साशास्त्र तथा नाट्यशास्त्र पर आधारित थे। इसमें सरस्वतीकंठाभरण तथा शृंगारमंजरी विशेष महत्वपूर्ण ग्रंथ हैं।

निष्कर्ष रूप में यही कहा जा सकता है कि परमारों के शासनकाल में साहित्य की असीम उन्नति हुई थी।

### परमार वंश का पतन

भोज के बाद परमारों की सत्ता क्षीण होने लगी। भोज के उत्तराधिकारी जयसिंह ने सोमेश्वर प्रथम की सहायता से भीम और कर्ण की सेनाओं को मालवा से हटाया, फिर भी दक्षिण चालुक्यों और गुजरात के सोलंकियों से उनका बराबर युद्ध चलता रहा। परमार राजा दुर्बल होते गए। 13वीं. सदी तक किसी प्रकार उनका राज्य बना रहा। 1305 में अलाउद्दीन खिलजी के सेनानायक ऐनुल–मुल्क ने मालवा पर आक्रमण किया और परमार शासन का अंत हो गया।

### अपनी प्रगति जांचिए

7. परमार वंश का संस्थापक किसे माना जाता है?

(क) उपेंद्रकृष्णराज (ख) वैरिसिंह

(ग) सीयक (घ) वाक्पति

8. राजा भोज की पत्नी का क्या नाम था?

(क) अरुंधती (ख) लीलावती

(ग) कलावती (घ) इनमें से कोई नहीं

## 3.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (ख)
2. (ग)

3. (क)
4. (घ)
5. (ख)
6. (ग)
7. (क)
8. (ख)

टिप्पणी

## 3.7 सारांश

राजपूतों की उत्पत्ति के विषय में सबसे पहले और बहुत अधिक विवेचित राय यह है कि सभी राजपूत परिवार गुर्जर जाति के वंशज थे और गुर्जर विदेशी मूल के थे। इसलिए, सभी राजपूत परिवार विदेशी मूल के थे और केवल, बाद में, उन्हें भारतीय क्षत्रियों के बीच रखा गया था और उन्हें राजपूत कहा जाता था। इस दृष्टिकोण के अनुयायियों का तर्क है कि हम 6वीं शताब्दी के बाद के समय में ही भारत में घुसे थे, तब हम गिजारों के संदर्भ पाते हैं।

राजपूताने में पश्चिमी भूभाग पर गुर्जर प्रतिहार राजवंशों का एकाधिकार स्थापित हुआ। सर्वप्रथम 8 वीं शताब्दी में गुजरात राज्य में इस राजवंश की स्थापना हुई। यह राजवंश भगवान श्री राम के भाई लक्ष्मण का वंशज होना स्वीकार करता था। अनेक इतिहासकारों ने इन्हें सूर्यवंशी होना माना।

प्राचीन भारतीय इतिहास में गुर्जर प्रतिहार वंश का बड़ा महत्व है। हर्ष की मृत्य के पश्चात उत्तर भारत की जो राजनीतिक एकता छिन्न–भिन्न हो गयी थी, उसे पुनः स्थापित करने में भी इस वंश ने सफल प्रयत्न किया था।

इसके प्रतापी नरेशों ने उत्तरी भारत के अधिकांश भाग को बहुत समय तक अपने अधीन रखा। दीर्घकाल तक इसने सिंध प्रदेश से आगे बढ़ती हुई मुस्लिम शक्ति को रोके रखा और उत्तरी भारत में विस्तार न होने दिया। महान विजेता होने के साथ ही प्रतिहार नरेश महान साहित्य प्रेमी, कला प्रेमी औऱ धार्मिक शासक थे। परिणामस्वरूप इनके शासनकाल में भारतीय संस्कृति की बड़ी उन्नति हुई।

चंदेलों की उत्पत्ति के संबंध में हमें अधिक कुछ ज्ञात नहीं हो पाया है। इनकी उत्पत्ति के विषय में जानकारी हेतु हमें मात्र 3 साक्ष्य ही प्राप्त हो पाते हैं– स्मिथ कहते हैं कि चंदेल अनार्य थे, और अनार्यों में भी ये गोडो और भरो जाति से संबंधित थे। लेकिन अन्य विद्वान इस मत से सहमत नहीं हैं। जनश्रुति में इनकी उत्पत्ति के विषय में कहा गया है कि चंदेलों की उत्पत्ति एक ब्राह्मण और चंद्रमा के संयोग से हुई थी। अभिलेखों के वर्णन से ज्ञात होता है कि चंद्रावंश में चंद्रात्रेय से चंदेल उत्पन्न हुए थे। चंद्रात्रेय इनके आदिपुरुष होने के कारण इनको चंदेल कहा गया।

चंदेलों के प्रारंभिक शासकों में नन्नुक, वाकपति, जयशक्ति, विजयशक्ति, राहिल और हर्ष थे। ये प्रारंभ में प्रतिहारों के सामंत थे। नन्नुक इस वंश का प्रतापी शासक था।

टिप्पणी

हर्ष के पश्चात यशोवर्मन राजा बना, जिसने अपने साम्राज्य का विस्तार किया। यह इस वंश का शक्तिशाली शासक था।

कलचुरी प्राचीन भारत का विख्यात राजवंश था। कलचुरी वंश की स्थापना कोकल्ल प्रथम ने लगभग 845 ई. में की थी। उसने त्रिपुरी को अपनी राजधानी बनाया था। कलचुरी सम्भवतः चन्द्रवंशी क्षत्रिय थे। कोकल्ल ने प्रतिहार शासक भोज एवं उसके सामन्तों को युद्ध में हराया था। उसने तुरुष्क, वंग एवं कोंकण पर भी अधिकार कर लिया था। कोकल्ल के 18 पुत्रों में से उसका बड़ा पुत्र शंकरगण अगला कलचुरी शासक बना था।

उपेंद्रकृष्णराज ने परमार वंश की स्थापना की थी। ये ब्राह्मणक्षत्र थे। इस समय की राजनीति अशान्त थी, प्रतिहारों तथा राष्ट्रकूटों का युद्ध चल रहा था। गोविन्द III जब उत्तरी भारत के अभियान पर आया था, तब परमारों ने उनकी अधीनता स्वीकार की और जब प्रतिहार शक्तिशाली हुए तब परमार प्रतिहारों के अधीन हो गए थे। उदयपुर लेख से ज्ञात होता है कि इन्होंने स्वयं अपने पराक्रम से ही राजत्व में उच्च पद प्राप्त किया होगा। उपेंद्र के पश्चात अनेक छोटे–छोटे शासक हुए जैसा कि वंश वृक्ष में दिखाया गया है, जिन्होंने 790 से 945 ई. तक शासन किया। ये सभी राष्ट्रकूटों और प्रतिहारों के सामंत थे, अतः इनके विषय में जानकारी उपलब्ध नहीं है। परमार वंश का प्रथम शासक सीयक हर्ष था।

भोज के पश्चात परमार वंश का अंत हो गया। भोज का अंत दुखद था, किंतु यह सत्य है कि भोज, परमार वंश का सबसे प्रतापी, पराक्रमी व महत्वांकाक्षी योद्धा था। उसने अपने भाई की पराजय का बदला भी लिया और अपने साम्राज्य को सर्वोच्चता के शिखर पर पहुंचा दिया। उसने अपने पराक्रम से मालवा, कोंकण, खानदेश, भिलसा, बांसवाड़ा, चितौड़ और गोदावरी की घाटी के भाग अपने अधिकार में किए थे। भोज के शासक होने से पूर्व परमार राज्य की राजधानी उज्जैन थी। बाद में भोज ने धारा को अपनी राजधानी बनाया था। इसकी पुष्टि प्रबंधचिंतामणि से होती है।

परमारों के सफल साम्राज्य विस्तार और शासन का कारण उनका कुशल शासन प्रबंध था। उनका शासन राजतंत्रात्मक था, इसका तात्पर्य यह नहीं कि वे निरंकुश शासक थे। वे प्रजा के हितकारी थे। उन्होंने महाराजाधिराज अथवा परमभट्टारक महाराजाधिराज की उपाधियां धारण की थीं। राजा, राज्य के समस्त पदों पर नियुक्तियां स्वयं करता था। राजा की इच्छा तक ही कोई इन पदों पर रह सकता था। राजा स्वयं राज्य का सर्वोच्च न्यायालय था। युद्ध में वह स्वयं सेना का संचालन करता था। राजा के प्रत्येक कार्यों की सूची तैयार होती थी।

## 3.8 मुख्य शब्दावली

- **विदुषी** : महिला विद्वान
- **मान्यखेत** : दक्षिण में एक स्थान
- **साक्ष्य** : प्रमाण

टिप्पणी

- **विश्वविख्यात** : संपूर्ण संसार में प्रसिद्ध
- **उत्पत्ति** : जन्म, पैदा होना
- **दृष्टिकोण** : देखने का ढंग
- **जनश्रुति** : वह बात जिसे लोग परंपरा से सुनते रहे हैं
- **अधीनता** : गुलामी
- **उत्कीर्ण** : खुदवाना या लिखना
- **कारा** : जेल
- **उपलब्धि** : प्राप्ति
- **परास्त** : हराना
- **तात्पर्य** : मतलब, अर्थ
- **पैतृक** : पिता से संबंधित
- **दुर्बल** : कमजोर
- **आक्रमण** : हमला करना

## 3.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

### लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. राजपूतों की उत्पत्ति किससे हुई? स्पष्ट कीजिए।
2. गुर्जर प्रतिहार वंश के शासकों के नाम बताइए।
3. चंदेल वंश के पतन के कारण बताइए।
4. कलचुरी सत्ता का उत्कर्ष किसके शासन काल में हुआ? बताइए।
5. परमार वंश के प्रारंभिक शासकों का वर्णन कीजिए।

### दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. राजपूतों के इतिहास का विस्तारपूर्वक उल्लेख कीजिए।
2. गुर्जर प्रतिहारों की उत्पत्ति और वंशावली का वर्णन कीजिए।
3. चंदेलों की ऐतिहासिक स्थापत्य कला का विवेचन कीजिए।
4. कलचुरी राजवंश की उत्पत्ति एवं इतिहास का वर्णन कीजिए।
5. परमारों के शासन प्रबंध एवं उनके शासनकाल की प्रमुख घटनाओं का ब्योरा दीजिए।

## 3.10 सहायक पाठ्य सामग्री

1. बी. चटोपाध्यायः एज ऑफ कुषान।
2. चौधरी, राधाकृष्णनः प्राचीन भारत का राजनैतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, भारती भवन, पटना, 2003।

टिप्पणी

3. झा एंड श्रीमालीः प्राचीन भारत का इतिहास, हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 2002।
4. झा, डी. एन.ः प्राचीन भारत; एक रूपरेखा, पीपल्स पब्लिशर्स हाउस, नई दिल्ली, 2005।
5. मजूमदार, ए. के.ः द हिस्ट्री एंड कल्चर ऑफ द इंडियन पीपल, ''द क्लासिकल एज'' वाल्यूम–III, भारतीय विद्या भवन, मुंबई।
6. पुरी, बी. एन.ः इंडिया अंडर द कुषान।
7. मजूमदार, आर. सी.ः (''द हिस्ट्री एंड कल्चर ऑफ इंडियन पीपल, वाल्यूम III,ः द क्लासिक एज भारतीय विद्या भवन, मुंबई, 1954'')।
8. श्रीवास्तव, के. सी.ः प्राचीन भारत का इतिहास द संस्कृति, इलाहाबाद, 2005।
9. शर्मा, रीताः ''प्राचीन भारत का इतिहास'', मोतीलाल बनारसी दास, 1998।
10. पाण्डेय, विमल चंदः ''प्राचीन भारत का राजनैतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास'', (वाल्यूम–II) सैंट्रल बुक डिपो, इलाहाबाद, 1980।

# इकाई 4 उत्तर और पूर्व भारत के राजवंश

टिप्पणी

## संरचना

4.0 परिचय
4.1 उद्देश्य
4.2 पाल
4.3 सेन
4.4 गहड़वाल
4.5 चहमानस
4.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
4.7 सारांश
4.8 मुख्य शब्दावली
4.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
4.10 सहायक पाठ्य सामग्री

## 4.0 परिचय

प्राचीन भारत का इतिहास बहुत व्यापक है, जो कई राजवंशों के उत्थान और पतन का गवाह रहा है। प्राचीन काल में भारत पर कई राजवंशों ने शासन किया था। उत्तर और पूर्व भारत के राजवंशों में पाल, सेन, गहड़वाल, चहमानस आदि प्रमुख राजवंश माने जाते हैं। पाल साम्राज्य मध्यकालीन उत्तर भारत का सबसे शक्तिशाली और महत्वपूर्ण साम्राज्य माना जाता है। पाल राजवंश को पाल क्षत्रिय राजवंश, गुप्त राजवंश भी कहा गया है। सेन राजवंश भी भारत का प्रमुख राजवंश रहा है, जिसने 12वीं शताब्दी के मध्य से बंगाल पर अपना प्रभुत्व स्थापित किया था। सेन राजवंश ने बंगाल पर 160 वर्ष राज किया।

प्रतिहारों के पश्चात कन्नौज पर कुछ समय के लिए राष्ट्रकूटों का अधिकार हो गया था किंतु 1085 ई. में कन्नौज पर महमूद ने अधिकार कर लिया था। इस समय गहड़वाल मात्र सामंत शासक थे और वह चंद्रदेव था जिसने स्वतंत्र होकर शासन प्रारंभ किया और एक बार फिर भारतीय नरेश का शासन प्रारंभ हुआ। जयचंद से पूर्व यशोविग्रह तथा महीचंद्र सामंत शासक हुए। महीचंद्र का रहन दानपत्र मिलता है जिसमें कहा गया है कि उसने अनेक शत्रुओं को परास्त किया था। इनकी उपाधि 'नृप' मिलती है जिससे यह स्पष्ट होता है कि ये सामंत शासक रहे होंगे।

गहड़वाल इतिहास के विषय में अधिक जानकारी प्राप्त नहीं हो सकी है लेकिन यह वंश इतिहास में अपनी महत्ता सिद्ध करता है। गहड़वालों द्वारा कन्नौज पर अधिकार किए जाने से एक बार फिर कन्नौज का महत्व बढ़ गया। एक सबसे महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि गहड़वालों के पतन पश्चात कन्नौज पर चंदेलों का अधिकार हो गया तथा वाराणसी पर मुसलमानों का अधिकार हो गया।

टिप्पणी

शाकम्भरी के चहमानों का आविर्भाव प्रतिहारों के बाद हुआ था। 12वीं शताब्दी में सर्वाधिक शक्तिशाली साम्राज्य चहमानों का था। इनकी राजधानी अहिछत्र थी। यहां के सबसे पहले राजा का नाम वासुदेव था, जिसने साम्भर क्षेत्र/शाकम्भरी (अजमेर के उत्तर में) पर अधिकार किया। विद्वानों का मत है कि चहमान नामक व्यक्ति इस वंश का संस्थापक था, इसलिए ये चहमान कहलाए। शाकम्भरी एक देवी थी, जिसके चहमान उपासक थे, एक और धारणा थी कि इसी देवी की कृपा से वासुदेव ने साम्भर क्षेत्र प्राप्त किया था। इसलिए यह शाकम्भरी के चहमान कहलाए।

प्रस्तुत इकाई में उत्तर और पूर्व भारत के प्रमुख राजवंशों– पाल, सेन, गहड़वाल एवं चहमानस आदि राजवंशों की उत्पत्ति, इतिहास, उनके विकास एवं उनके उत्थान व पतन आदि का विस्तृत अध्ययन किया गया है।

## 4.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- उत्तर और पूर्व के राजवंशों के बारे में जान पाएंगे;
- पाल वंश के प्रमुख शासकों के विषय में जान पाएंगे;
- सेन राजवंश के इतिहास को समझ पाएंगे;
- गहड़वाल वंश की उत्पत्ति एवं उपलब्धियों के बारे में जान पाएंगे;
- चहमान वंश के उत्कर्ष एवं पतन के कारणों को समझ पाएंगे।

## 4.2 पाल

पाल वंश उत्तरी भारत का प्रमुख राजवंश था। पाल वंश का संस्थापक गोपाल था। महिपाल प्रथम को पाल वंश का द्वितीय संस्थापक कहा जाता था। समस्त पाल शासक बौद्ध धर्म के अनुयायी थे। पाल वंश के शासकों का साम्राज्य विस्तार समस्त बंगाल, बिहार से लेकर कन्नौज तक था। धर्मपाल के लखीमपुर अभिलेख में वर्णित है कि जनता ने शोषण से दुखी होकर गोपाल नामक सेनापति को बंगाल के समूचे राज्य का शासक चुना।

### पालों की उत्पत्ति एवं वंश

जैसा कि उपरोक्त वर्णन किया जा चुका है कि पाल वंश की स्थापना गोपाल नामक एक व्यक्ति द्वारा की गई थी। गोपाल ने 750 से 770 ई. तक राज्य किया। गोपाल के पिता एक सैनिक थे। गोपाल एक क्षत्रिय था और इसका राज्य पूर्वी बंगाल था। उसके राज्य में शांति व्याप्त थी, इसके अतिरिक्त गोपाल के व्यक्तिगत जीवन तथा शासन से जुड़े तथ्यों की जानकारी का अभाव है। गोपाल के पश्चात उसका पुत्र धर्मपाल शासक बना, जो पाल वंश का प्रतापी शासक था।

## पाल वंश

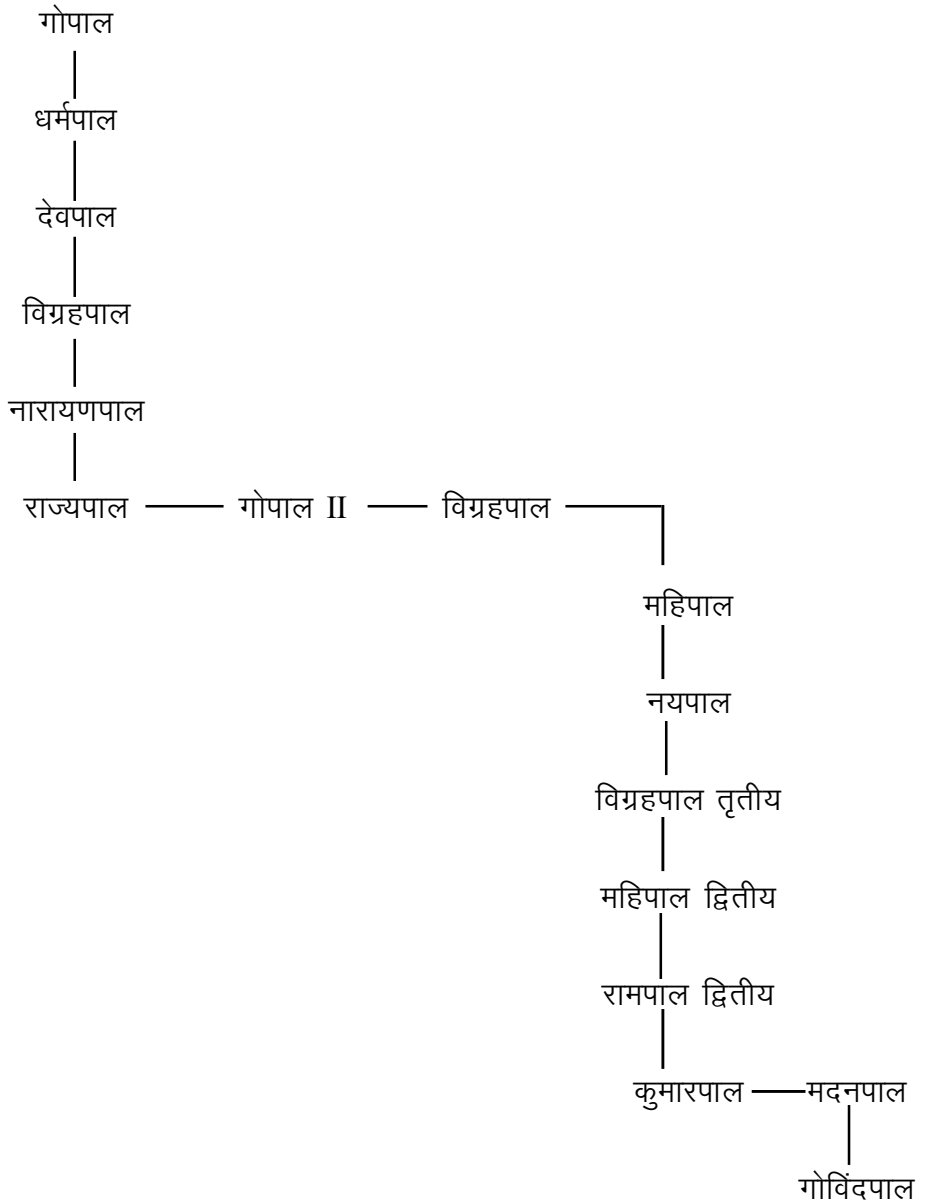


टिप्पणी

### पाल वंश के मुख्य शासक

पाल वंश के मुख्य शासकों का वर्णन इस प्रकार है–

### गोपाल (750–770 ई.)

अराजकतापूर्ण स्थिति में बंगाल के मुख्य लोगों ने गोपाल को समूचे राज्य का शासक चुना। गोपाल ने एक वंश की स्थापना की, जिसने बंगाल में चार शताब्दी तक शासन किया। उसका जन्म पुंडरवर्धन (बोगरा जिला) में हुआ था। गोपाल की वास्तविक शासन सीमा को तय करना कठिन है, लेकिन संभवतः उसने संपूर्ण बंगाल पर अपना नियंत्रण स्थापित कर लिया था। गोपाल बौद्ध धर्म का प्रबल अनुयायी था और ओदंतपुरी (आधुनिक बिहार शरीफ) का बौद्ध विहार संभवतः उसी ने बनवाया था।

टिप्पणी

## धर्मपाल (770–810 ई.)

गोपाल का उत्तराधिकारी उसका पुत्र धर्मपाल था, जिसने पाल राज्य को महानता प्रदान की। इसने बंगाल को उत्तर भारत के प्रमुख राज्यों की श्रेणी में स्थापित किया। यह कन्नौज के त्रिकोणीय संघर्ष में उलझा रहा। इसने कन्नौज के शासक इंद्रायुध को परास्त कर चक्रायुध को अपने संरक्षण में कन्नौज का शासक बनाया।

राज्यारोहण के तुरंत बाद ही धर्मपाल को उस काल की दो मुख्य शक्तियों – प्रतिहार और राष्ट्रकूट के साथ संघर्ष में उलझना पड़ा। प्रतिहार शासक वत्सराज ने धर्मपाल को एक युद्ध में हरा दिया, जो गंगा के दोआब क्षेत्र में कहीं लड़ा गया था, लेकिन वत्सराज के अपनी विजय का सुख भोगने से पहले ही राष्ट्रकूट राजा ध्रुव ने उसे पराजित कर दिया। उसके बाद उसने धर्मपाल को पराजित किया तथा कुछ समय के बाद दक्कन की ओर प्रस्थान किया। इसने बंगाल को उत्तर भारत के प्रमुख राज्यों की श्रेणी में स्थापित किया।

धर्मपाल के अधीन पाल साम्राज्य काफी विस्तृत था। बिहार और बंगाल सीधे उसके शासन के अधीन आते थे। इसके अलावा कन्नौज का राज्य धर्मपाल पर आश्रित था तथा वहां के शासक को धर्मपाल ने नामजद किया था। कन्नौज से आगे पंजाब, राजपूताना, मालवा तथा बरार के कई छोटे–छोटे राज्यों ने भी धर्मपाल की अधीनता स्वीकार की।

धर्मपाल के विजय अभियान को उसके प्रतिहार प्रतिद्वंद्वी नागभट्ट द्वितीय ने चुनौती दी तथा कन्नौज से उसके आश्रित चक्रयुद्ध को खदेड़ दिया। इन दोनों शासकों के बीच अब श्रेष्ठता की लड़ाई अवश्यंभावी हो गई। प्रतिहार शासक मुंगेर तक चला गया तथा एक घमासान युद्ध में धर्मपाल को पराजित किया। लेकिन धर्मपाल को समय रहते राष्ट्रकूट राजा गोविन्द तृतीय ने बीच–बचाव कर बचा लिया, जिससे शायद धर्मपाल ने सहायता मांगी थी। लगभग 32 वर्षों के शासन काल के बाद धर्मपाल की मृत्यु हो गई तथा उसके विशाल राज्य का स्वामी उसका बेटा देवपाल बना।

## देवपाल (810–850 ई.)

धर्मपाल का उत्तराधिकारी देवपाल बना, जिसे सर्वाधिक शक्तिशाली पाल शासक माना जाता है। यह पाल वंश का सबसे प्रतापी शासक था। इसका सेनापति इसका चचेरा भाई जयपाल था। गद्दी पर बैठने के बाद इसने अपने पिता की तरह विस्तारवादी नीति का अनुसरण किया। इसने मुंगेर को अपनी राजधानी बनाया।

शिलालेखों से प्राप्त जानकारी के अनुसार उसे हिमालय से विंध्य तक तथा पूर्वी से पश्चिमी समुद्र तक के क्षेत्रों को जीतने का श्रेय दिया जाता है। कहा जाता है, कि उसने गुर्जरों तथा हूणों को पराजित किया और उत्कल तथा कामरूप पर अधिकार कर लिया। जिन हूण तथा कंबोज शासकों को देवपाल ने पराजित किया,उनकी पहचान कभी स्थापित नहीं हो पाई है। गुर्जर प्रतिद्वन्द्वी मिहिरभोज को माना जा सकता है, जिसने अपने राज्य का विस्तार पूर्व की ओर करना चाहा था, किन्तु देवपाल ने उसे पराजित कर दिया।

अपने पिता की तरह देवपाल भी बौद्ध था तथा इस रूप में उसकी ख्याति भारत के बाहर कई बौद्ध देशों में फैली। जावा के शैलेन्द्र शासक बलपुत्र देव ने देवपाल के

टिप्पणी

पास अपना राजदूत भेजकर उससे नालंदा के एक बौद्ध विहार को पांच गांव दान में देने का आग्रह किया। देवपाल ने आग्रह स्वीकार कर लिया। बौद्ध कवि वज्रदत्त देवपाल के दरबार में रहता था, जिसने लोकेश्वर शतक की रचना की। एक अरब व्यापारी सुलेमान, जो भारत आया था और जिसने अपनी यात्रा का विवरण 85 ई. में लिखा, पाल राज्य का नाम रूमी बताता है। उसके अनुसार पाल शासक का गुर्जर एवं राष्ट्रकूटों से युद्ध चलता था तथा उसके पास अपने प्रतिद्वन्द्वियों से अधिक सेना थी।

इसके बाद कुछ अन्य शासक भी हुए जिनका कार्यकाल बहुत कम समय तक रहा। ये शासक हैं–

- **विग्रहपाल,**
- **नारायणपाल,**
- **राज्यपाल,**
- **गोपाल द्वितीय,**
- **विग्रहपाल द्वितीय**

टिप्पणी

### महिपाल प्रथम (978–1038 ई.)

महिपाल को पाल वंश का द्वितीय संस्थापक कहा जाता है। इसके समय राजेंद्र चोल ने विक्रम चोल के नेतृत्व में बंगाल पर आक्रमण किया तथा पाल शासक को पराजित किया।

इसके बाद निम्न शासक हुए–

- **नयपाल**
- **विग्रहपाल तृतीय**

### महिपाल द्वितीय

इसके समय कैवर्त जाति के दिव्येक का विद्रोह हुआ। इन्होंने महिपाल की हत्या कर दी। इन्होंने वारेन्द्री में स्वतंत्र राज्य की स्थापना की।

### रामपाल (1075–1120 ई.)

रामपाल पाल वंश का अंतिम शक्तिशाली शासक माना जाता है। इसके शासनकाल में भी कैवर्त्तों का विद्रोह हुआ और रामपाल ने इस जाति के भीम से वारेन्द्री जीत लिया जिसका उल्लेख संध्याकरनंदी के रामचरित में मिलता है। इसी के समय गहड़वालों ने बिहार के शाहाबाद और गया तक अपने राज्य का विस्तार किया। अंत में इसने मुंगेर में गंगा नदी में डूबकर आत्महत्या कर ली।

इसके बाद **कुमारपाल, गोपाल तृतीय, मदनपाल** ने लगभग 30 वर्षों तक शासन किया।

### परवर्ती पाल शासक–

देवपाल की मृत्यु के साथ ही पाल साम्राज्य का गौरव समाप्त हो गया तथा वह फिर से प्राप्त नहीं किया जा सका। उसके उत्तराधिकारियों के काल में राज्य का विघटन धीरे–धीरे होता रहा। देवपाल का उत्तराधिकारी विग्रहपाल था। तीन या चार साल के छोटे शासन काल के बाद विग्रहपाल ने गद्दी त्याग दी।

विग्रहपाल के पुत्र और उत्तराधिकारी नारायण पाल का शासन काल बड़ा था। राष्ट्रकूट राजा अमोघवर्ष ने पाल शासक को पराजित किया। प्रतिहारों ने धीरे–धीरे पूर्व की ओर अपनी शक्ति का विस्तार आरंभ किया। नारायणपाल को न सिर्फ मगध से हाथ धोना पड़ा अपितु पाल राज्य का मुख्य भाग उत्तरी बंगाल भी उसके हाथ से निकल गया। यद्यपि अपने शासन के अंतिम चरणों में उसके प्रतिहारों से उत्तरी बंगाल और दक्षिणी बिहार को छीन लिया, क्योंकि प्रतिहार राष्ट्रकूटों के आक्रमण के कारण कमजोर हो गये थे।

नारायणपाल का उत्तराधिकारी उसका पुत्र राज्यपाल बना तथा राज्यपाल का उत्तराधिकारी उसका पुत्र गोपाल द्वितीय था। इन दो शासकों का शासन पाल शक्ति के लिए अनर्थकारी सिद्ध हुआ। चंदेल तथा कलचुरी आक्रमणों के कारण पाल साम्राज्य चरमरा गया।

टिप्पणी

पालों की गिरती हुई साख को कुछ हद तक महिपाल प्रथम ने संभाला। महिपाल के शासन काल की सबसे महत्त्वपूर्ण घटना बंगाल पर राजेन्द्र चोल का आक्रमण है। राजेन्द्र चोल के उत्तरी अभियान का विवरण उसके तिरुमलाई शिलालेख में मिलता है। यद्यपि चोल आक्रमण द्वारा बंगाल में उसकी संप्रभुता स्थापित नहीं हो सकी। उत्तरी और पूर्वी बंगाल के अलावा महिपाल बर्दवान प्रभाग के उत्तरी भाग को भी वापस पाल राज्य में मिलाने में सफल रहा। महिपाल की सफलता उत्तरी तथा दक्षिणी बिहार में ज्यादा प्रभावशाली रही। वह बंगाल के एक बड़े भाग पर दोबारा अपना अधिकार जमाने में सफल रहा। उसकी सफलता का एक बड़ा कारण महमूद का लगातार आक्रमण था, जिसके कारण शायद उत्तरी भारत के राजपूतों की शक्ति तथा स्रोत क्षीण हो गये थे। मदनपाल इस वंश का अंतिम शासक था। इस वंश के बाद बंगाल में सेन वंश की स्थापना हुई।

### अपनी प्रगति जांचिए

1. पाल वंश का संस्थापक किसे माना जाता है?
   (क) धर्मपाल (ख) गोपाल
   (ग) देवपाल (घ) महिपाल
2. पाल वंश का शासन कहां था?
   (क) मध्यप्रदेश (ख) गुजरात
   (ग) बंगाल (घ) इनमें से कोई नहीं

## 4.3 सेन

सेन वंश की स्थापना सामंत सेन ने की थी। इस वंश का आदि पुरुष वीरसेन को माना जाता है। ये अपनी उत्पत्ति ब्रह्मक्षत्र परंपरा से मानते हैं। पाल वंश के पतन के बाद बंगाल में सेन वंश की स्थापना हुई। सेन वंश एक प्राचीन भारतीय राजवंश का नाम था, जिसने 12वीं शताब्दी के मध्य से बंगाल पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया। सेन राजवंश ने बंगाल पर 160 वर्ष राज किया। इस वंश का मूलस्थान कर्णाटक था तथा ये सैन (नाई )जाति के थे। इन्हें सैन नंद मौर्य वंश भी कहा जाता था। इस काल में अनेक मन्दिर बने। धारणा है कि बल्लाल सेन ने ढाकेश्वरी मन्दिर बनवाया। कवि जयदेव (गीत–गोविन्द का रचयिता) लक्ष्मण सेन के पंचरत्न थे। यह चक्रवर्ती सम्राट महापदम नंद की संतान थी। यह एक क्षत्रिय राजवंश है। इस राजवंश में अनेक वीर हुए। चक्रवर्ती सम्राट महापदम नंद के डर से विश्वविजेता सिकंदर भारत छोड़कर भाग गया। यह चंद्रवंशी शाखा है। नंदों का साम्राज्य सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक संपन्नता एवं सैन्य संगठन का चरम बिंदु था।

टिप्पणी

## सेन वंश का इतिहास

इस वंश के राजा, जो अपने को कर्णाट क्षत्रिय, ब्रह्म क्षत्रिय और क्षत्रिय मानते हैं, अपनी उत्पत्ति पौराणिक नायकों से मानते हैं, जो दक्षिणापथ या दक्षिण के शासक माने जाते हैं। 9वीं, 10वीं और 11वीं शताब्दी में मैसूर राज्य के धारवाड़ जिले में कुछ जैन उपदेशक रहते थे, जो सेन वंश से संबंधित थे। यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि बंगाल के सेनों का इन जैन उपदेशकों के परिवार से संबंध था। फिर भी इस बात पर विश्वास करने के लिए समुचित प्रमाण हैं कि बंगाल के सेनों का मूल वासस्थान दक्षिण था। देवपाल के समय से पाल सम्राटों ने विदेशी साहसी वीरों को अधिकारी पदों पर नियुक्त किया। उनमें से कुछ कर्णाटक देश से संबंध रखते थे। कालांतर में ये अधिकारी, जो दक्षिण से आए थे, शासक बन गए और स्वयं को राजपुत्र कहने लगे। राजपुत्रों के इस परिवार में बंगाल के सेन राजवंश का प्रथम शासक सामंत सेन उत्पन्न हुआ था। सामंतसेन ने दक्षिण के एक शासक, संभवतः द्रविड़ देश के राजेंद्रचोल, को परास्त कर अपनी प्रतिष्ठा में वृद्धि की।

सेन वंश के शासकों की उत्पत्ति कर्नाटक के दक्षिण भारतीय क्षेत्र में हुई।

## सेन वंश के प्रमुख शासक

सेन वंश के प्रमुख शासकों का वर्णन इस प्रकार है–

### विजय सेन (1095–1158 ई.)

सामन्त सेन का उत्तराधिकारी हेमन्त सेन था। वंश के संस्थापक सामन्त सेन के पौत्र विजय सेन ने अपने वंश के गौरव को बढ़ाया। उसने 64 वर्षों तक राज्य किया। उत्तरी बंगाल से मदनपाल को निर्वासित करने वाला भी विजय सेन ही था। उसने बंग के वर्मन शासन का अंत किया, विक्रमपुर में अपनी राजधानी स्थापित की। विजय सेन को सेन राजवंश का वास्तविक संस्थापक माना जाता है। यह अपने वंश का पहला महत्वपूर्ण शासक था। यह शैव मत का अनुयायी था। सेन वंश के लोग सम्भवतः ब्राह्मण थे किन्तु अपने सैनिक–कर्म के कारण वे बाद में क्षत्रिय कहे जाने लगे। इसलिए उन्हें ब्रह्म क्षत्रिय भी कहा गया है। पाल साम्राज्य के केन्द्रीय भग्नावशेष पर ही सेनों के राज्य की भित्ति खड़ी हुई।

### बल्लाल सेन (1158–1178)

बल्लाल सेन एक विचित्र शासक था। बंगाल के ब्राह्मणों और अन्य ऊंची जातियों में उसे इस बात का श्रेय दिया गया है कि आधुनिक विभाजन उसी ने कराये थे। बल्लाल सेन ने वर्ण–धर्म की रक्षा के लिए उस वैवाहिक प्रथा का प्रचार किया जिसे कुलीन प्रथा कहा जाता है। प्रत्येक जाति में उप–विभाजन, उत्पत्ति की विशुद्धता और ज्ञान पर निर्भर करता था। आगे चलकर यह उप–विभाजन बड़ा कठोर और जटिल हो गया।

यह भी शैव मत का अनुयायी था। इसने पाल शासकों की गौड़ेश्वर की उपाधि को धारण किया। यह स्वयं विद्वान् व विद्वानों का संरक्षक था। इसने दानसागर नामक

ग्रन्थ की रचना की। इसके बाद अद्‌भुत सागर नाम से एक खगोल शास्त्र की रचना प्रारंभ की परन्तु उसे पूरा नहीं कर पाया। बाद में लक्ष्मणसेन ने इसे पूरा किया। इसने कुलीनवाद नाम से आंदोलन शुरू किया। इसका उद्देश्य कुलीन जातियों की श्रेष्ठता व सत्ता की शुद्धता बनाये रखना था। सर्वप्रथम इसी ने कन्नौज से ब्राह्मणों को बुलाकर बंगाल में बसाया था। इसकी मृत्यु के बाद इसका पुत्र शासक बना।

टिप्पणी

### लक्ष्मण सेन (1178–1205 ई.)

लक्ष्मण सेन अपने वंश का एक प्रसिद्ध शासक था, साथ ही साथ भारत के सबसे कायर नरेशों में भी उसकी गणना की जानी चाहिए। अभिलेखों में उसके लिए कहा गया है कि उसने कलिंग, आसाम, बनारस और इलाहाबाद पर विजय प्राप्त की और इन स्थानों पर उसने अपने विजय–स्तम्भ गाड़े थे।

लक्ष्मण सेन ने परमभागवत की उपाधि धारण की। यह अपने पूर्वजों के विपरीत वैष्णव धर्म का अनुयायी था। इसके लेखों की शुरुआत विष्णु की स्तुति से होती है। इसने अपनी पूर्व राजधानी के निकट एक अन्य राजधानी लक्ष्मणवती (लखनौती) में स्थापित की। लायुध इसके प्रमुख न्यायाधीश एवं मुख्यमंत्री थे। लक्ष्मण सेन ने लक्ष्मण संवत की शुरुआत की थी। इसने जयचंद गहड़वाल से काशी और प्रयाग जीत लिया था। इसने काशी, पुरी व प्रयाग में विजय स्तंभ स्थापित करवाए। 1202 ई. में बख्तियार खिलजी ने इस पर आक्रमण किया और इसकी राजधानी नदिया को जीत लिया।

लक्ष्मण सेन का शासन संस्कृत साहित्य के विकास की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। इसकी राजसभा में पांच रत्न रहते थे, जिनके नाम थे– जयदेव (गीतगोविन्द के रचयिता), उमापति, धोयी (पवनदूत के रचयिता), हलायुध और श्रीधरदास। लक्ष्मण सेन ने स्वयं अपने पिता के अपूर्ण ग्रन्थ अद्‌भुतसागर को पूरा किया। लक्ष्मण सेन के राज्य पर मुसलमानों का आक्रमण 1199 ई. में हुआ था। इसके बाद सेन राजवंश का अन्त हो गया, यद्यपि पूर्वी बंगाल पर उसके बाद तक इस वंश के राजा राज्य करते रहे।

टिप्पणी

### अपनी प्रगति जांचिए

3. सेन वंश का आदि पुरुष किसे माना जाता है?

(क) वीर सेन (ख) हेमन्त सेन

(ग) बल्लाल सेन (घ) विजय सेन

4. सेन वंश के शासकों की उत्पत्ति कहां से हुई?

(क) बंगाल (ख) गुजरात

(ग) तमिलनाडु (घ) कर्नाटक

## 4.4 गहड़वाल

गहड़वाल राजवंश भारतीय उपमहाद्वीप की एक शक्ति थी, जिसने 11वीं और 12वीं शताब्दी के दौरान उत्तर प्रदेश और बिहार के वर्तमान भारतीय राज्यों के कुछ हिस्सों पर शासन किया था। गहड़वाल शासकों को 'काशी नरेश' के रूप में भी जाना जाता था, क्योंकि बनारस इनके राज्य की पूर्वी सीमा के अधिक निकट था।

### गहड़वाल इतिहास के स्रोत

गहड़वालों के इतिहास के विषय में हमारे पास अल्प जानकारी ही है। इनके इतिहास की जानकारी हमें साहित्य तथा तत्कालीन अभिलेखों से मिलती है।

### साहित्यिक स्रोत

साहित्यिक स्रोतों में सर्वप्रथम चंदबरदायी कृत **पृथ्वीराजरासो** है। इससे गहड़वाल शासक जयचंद तथा चहमान शासक पृथ्वीराज चौहान के संबंधों पर प्रकाश पड़ता है किंतु अनेक विद्वान इसके अधिकांश विवरणों को काल्पनिक मानते हैं लेकिन इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि यह समकालीन रचना होने के कारण कुछ जानकारी अवश्य देती है।

**लक्ष्मीधर** कृत **कृत्यकल्पतरू** से तत्कालीन राजनीति, समाज तथा संस्कृति पर प्रकाश पड़ता है। लक्ष्मीधर गोविंदचंद्र गहड़वाल का मंत्री था। मेरूतुंग कृत प्रबंध चिंतामणि से हमें गहड़वाल शासक जयचंद के विषय में जानकारी मिलती है।

इस काल में मुस्लिम आक्रमण जारी रहने के कारण तत्कालीन मुस्लिम लेखकों के विवरण भी हमें महत्वपूर्ण जानकारी देते हैं। हसन निजामी जयचंद तथा मुहम्मद गौरी के बीच संघर्ष की जानकारी देते हैं। जिसमें मुहम्मद गौरी की विजय की बात कही गई। 'फरिश्ता' हमें जयचंद की सैनिक शक्ति का विवरण देता है।

साहित्य के अतिरिक्त कुछ लेख भी प्रकाश में आए हैं जो तत्कालीन इतिहास बताते हैं।

टिप्पणी

## अभिलेख

अभिलेखों में दानपत्रों की प्रमुखता मिलती है। चंद्रदेव के चंद्रवली दानपत्र लेख (वाराणसी) में चंद्रदेव द्वारा विजित क्षेत्रों का उल्लेख किया गया है। मदनपाल के राहन तथा बसही अभिलेख में उसकी वीरता का वर्णन किया गया है। गोविंदचंद्र का वाराणसी तथा कमौली ताम्र पत्र लेख इसमें उसकी वीरता तथा उपलब्धियों का वर्णन किया गया है। गोविंदचंद्र का अन्य अभिलेख जिससे उसके द्वारा किए गए दान का उल्लेख मिलता है।

इस प्रकार उपरोक्त लेखों से गहड़वाल वंश के विषय में हमे जानकारी मिलती है, किंतु यह लेख मुख्यतः दान संबंधी जानकारी देते हैं।

## गहड़वाल की उत्पत्ति

गहड़वालों की उत्पत्ति के विषय में अधिक कुछ ज्ञात नहीं है। विद्वानों का मत है कि गहड़वाल राष्ट्रकूटों से संबंधित थे। किंतु इस मत के खंडन में हमें सारनाथ से लेख प्राप्त होता है जिसमें राष्ट्रकूट तथा गहड़वालों का पृथक वर्णन मिलता है। विद्वानों के अनुसार गहड़वाल शब्द की उत्पत्ति ग्रहवार शब्द से हुई है, जिसका अर्थ है 'ग्रह का विजेता'। ययाति के पुत्र देवदास ने शानि ग्रह पर विजय प्राप्त की थी अतः इन्हें ग्रहवार कहा गया। विद्वान इस मत से सहमत नहीं हैं क्योंकि इसकी प्रामाणिकता सिद्ध नहीं हो सकी है किंतु साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि गहड़वाल शासक हिंदू धर्म व संस्कृति के उद्धारक थे।

## गहड़वाल शासक एवं उनकी उपलब्धियां

गहड़वाल कन्नौज के प्रसिद्ध शासक जयचंद के वंशज हैं। इनका मूल स्थान प्राचीन काशी (वाराणसी) था। कुछ इतिहासकार इन्हें राठौर वंश से जोड़ते हैं तो कुछ इस वंश को राठौड़ वंश से अलग मानते हैं। इस वंश के प्रमुख शासकों का वर्णन इस प्रकार है–

## यशोविग्रह

गहड़वाल वंश का प्रथम शासक यशोविग्रह था। इसकी पुष्टि चंद्रावती अभिलेख से हो चुकी है। अभिलेखों से ही हमें यह ज्ञात हुआ है कि उसके द्वारा कुछ युद्ध लड़े गए, जिसमें उसने विजय प्राप्त की थी किंतु इसके संबंध में अधिक कुछ भी ज्ञात नहीं हो सका है। यह प्रारंभ में निश्चित रूप से कल्चुरियों के अधीन सामंत शासक रहे होंगे। इसकी पुष्टि इस बात से होती है कि प्रारंभ के लेखों में इनकी किसी विरूद या उपाधि का उल्लेख नहीं किया गया।

## महीचंद

महीचंद यशोविग्रह का पुत्र था और अपने पिता के पश्चात शासक बना था। चंद्रवती अभिलेख में लिखा गया है कि उसकी कीर्ति समुद्र पार चली गई थी। राहन दानपत्र से विदित होता है कि उसने अनेक शत्रुओं को परास्त किया था। लेकिन लेखों में उसकी उपाधि नृप ही मिलती है, जिससे यह अनुमान किया जा सकता है कि यह भी एक सामंत शासक ही रहा होगा।

टिप्पणी

## चंद्रदेव

चंद्रदेव यशोविग्रह का पुत्र था जो यशोविग्रह के पश्चात शासक बना। वही गहड़वाल वंश का पहला स्वतंत्र शासक था। उसके शासक बनने की जानकारी हमें बसही अभिलेख से मिलती है जिसमें कहा गया है कि भोज की मृत्यु हो जाने पर तथा मात्र कर्ण के शेष रह जाने पर विपत्तिग्रस्त पृथ्वी ने चंद्रदेव राजा को अपना रक्षक चुना। इससे यह स्पष्ट होता है कि कर्ण के पश्चात चंद्रदेव ने कन्नौज पर अधिकार किया होगा। यहां पर विपत्ति से तात्पर्य तुर्क आक्रमण से है क्योंकि दोआब में अब कोई भी शक्ति शेष नहीं थी जो तुर्कों का सामना कर सके। अतः इस स्थिति का चंद्रदेव ने लाभ उठाया और कन्नौज, कौशल, काशी तथा इंद्रप्रस्थ पर अपना अधिकार कर लिया। दिल्ली पर इस समय तोमर वंश का शासक था। संभवतः तोमर वंश के राजाओं ने चंद्रदेव की अधीनता स्वीकार कर ली होगी।

अभिलेखों से ही ज्ञात होता है कि उसने 'परभट्टारक', 'महाराजाधिराज', 'परमेश्वर' आदि उपाधियां धारण की थीं। 1103 ई. तक शासन करते हुए उसने अपने वंशजों के लिए एक विशाल साम्राज्य की स्थापना की।

## मदनपाल

मदनपाल चंद्रदेव का पुत्र और उत्तराधिकारी था। उसके शासनकाल में मुस्लिम आक्रांता पंजाब से आगे बढ़कर अब उत्तर भारत पर अपना अधिकार करना चाहते थे। इस समय मुस्लिम आक्रांता सुल्तान मसूद तृतीय था। इस आक्रमण की पुष्टि मिनहाज–उस–सिराज तथा मसूद–इब्न–साद–इब्न–सल्मन के व्याख्यानों से होती है।

ऐसा वर्णन मिलता है कि तुर्कों द्वारा कन्नौज पर आक्रमण किया गया और तुर्कों ने उसे बंदी बना लिया था। तब उसके पुत्र युवराज गोविंदचंद्र गहड़वाल ने कड़े संघर्ष के बाद उसे मुक्त कराया था। राहन अभिलेख से ज्ञात होता है कि गोविंदचंद्र की वीरता तथा युद्ध कौशल ने हम्मीर को शत्रुता त्यागने के लिए विवश किया। हम्मीर, मसूद तृतीय का कोई सरदार रहा होगा।

मदनपाल एक निर्बल शासक था और विद्वानों का मत तो यहां तक है कि वह नाममात्र का शासक था तथा वास्तविक सत्ता एक संरक्षक द्वारा संचालित की जा रही थी।

## गोविंदचंद्र

अपने पिता मदनपाल की मृत्यु के पश्चात गोविंदचंद्र शासक बना। उसकी वीरता का साक्ष्य उसने अपने पिता के काल में तुर्कों से सफलता प्राप्त करके सिद्ध कर दिया। उसकी पत्नी के सारनाथ अभिलेख में लिखा है कि गोविंदचंद्र, हरि के अवतार थे और तुरूष्कों से वाराणसी की रक्षा के लिए स्वयं हरि ने उसे नियुक्त किया था। गोविंदचंद्र ने अपने गौरव को पुनः स्थापित करते हुए विशाल साम्राज्य की स्थापना की जिसके कारण उसे अनेक युद्ध करने पड़े।

टिप्पणी

## कल्चुरियों की पराजय

गोविंदचंद्र ने अश्वपति, गजपति, राजग्याधिपति की उपाधियां धारण की थीं। इन उपाधियों को धारण करने वाला वह प्रथम गहड़वाल शासक था। इन उपाधियों से यह सिद्ध होता है कि उसने कल्चुरियों, प्रतिहारों, कलिंग के नरेशों को परास्त किया था, क्योंकि प्रतिहार अपनी अश्वसेना तथा कलिंग अपनी गजसेना के लिए प्रसिद्ध थे।

## पालों से युद्ध

गोविंदचंद्र ने पालों को भी पराजित किया था और मगध के कुछ प्रदेशों पर अधिकार कर लिया था। यह पाल नरेश मदनपाल था किंतु इसके बाद भी उसके विहार में कुछ अभिलेख मिलते हैं जिससे यह अनुमान लगाया गया है कि मदनपाल ने कुछ ही समय पश्चात पुनः राज्य प्राप्त कर लिया था और गोविंदचंद्र ने उससे मित्रता कर ली थी क्योंकि उसकी पत्नी कुमारदेवी पालवंशीय राजकुमारी थी।

## चंदेलों से संघर्ष

कानपुर के समीप छत्तरपुर पर चंदेलों का अधिकार था। 1120 के अभिलेख से ज्ञात होता है कि गोविंदचंद्र ने छत्तरपुर पर अधिकार कर लिया था लेकिन 1147 ई. के अभिलेख में पुनः चंदेलों द्वारा छत्तरपुर पर अधिकार का उल्लेख किया गया है।

## मालवा पर अधिकार

मालवा का प्राचीन नाम 'दर्शाण' था। रंभामंजरी नाटक से विदित होता है कि गोविंदचंद्र ने मालवा पर अधिकार कर लिया था। इस समय यहां का शासक यशोवर्मन था। इसी विजय के समय में गोविंदचंद्र को पुत्र प्राप्ति हई।

## चोल एवं चालुक्यों से मित्रता

गंगैकोडचोलपुरम के अभिलेखों में गोविंदचंद्र और चोलों की मित्रता का उल्लेख मिलता है। इसी प्रकार गोविंदचंद्र ने चालुक्यों से भी मित्रता कर ली थी।

## जयसिंह से मित्रता

राजतंरगिनी से विदित होता है कि जयसिंह से गोविंदचंद्र ने मित्रता कर ली थी। यह कश्मीर का शासक था। इस प्रकार अब गोविंदचंद्र ने अपनी स्थिति मजबूत कर ली थी।

इस प्रकार गोविंदचंद्र का साम्राज्य उत्तर प्रदेश में गोंड़ा तक था। अब दिल्ली पर भी गोविंदचंद्र का अधिकार हो गया था। दक्षिण में भी अब गहड़वालों ने चहल–पहल शुरू कर दी। विभिन्न राजनयिक और कूटनीतिक संबंधों के साथ गोविंदचंद्र ने अपनी स्थिति सुदृढ़ कर ली थी। इसके अनेक दानपत्र तथा सिक्कों से ज्ञात होता है कि इस समय कन्नौज ने पुनः अपना गौरव प्राप्त कर लिया था । एक महान विजेता के साथ वह विद्वानों का आश्रयदाता भी था। उसके लेखों में उसे विविधविद्याविचारवाचस्पति कहा गया, जिसके अनुसार वह स्वयं एक महान विद्वान था। उसका मंत्री लक्ष्मीधर शास्त्रों का प्रकांड विद्वान था। इसने कल्पतरू की रचना की थी।

टिप्पणी

## विजयचंद्र

गोविंदचंद्र के पश्चात उसका पुत्र 1155 ई. में शासक बना। गोविंद के दो अन्य पुत्र अस्फोटचंद्र, राज्यपालदेव थे, जिनके नाम लेखों में मिलते हैं किंतु इनका जीवन वृत स्पष्ट ज्ञात नहीं है। संभव है उनकी मृत्यु गोविंदचंद्र के समय में ही हो गई थी या विजयचंद्र ने उत्तराधिकार के युद्ध में परास्त कर उसकी हत्या कर दी। बनारस लेख से ज्ञात होता है कि उसने तुर्क शासक खुसवो शाह के किसी अधिकारी को परास्त किया था। अवसर पाते ही बंगाल के सेन वंश ने विजयचंद्र पर आक्रमण किया किंतु वह विजय प्राप्त नहीं कर सका। गोविंदचंद्र ने दिल्ली में तोमरों को अपने अधीन कर लिया था अतः अब तोमर गहड़वालों के सामंत थे किंतु दिल्ली पर अब चहमानों का अधिकार हो गया था। चहमान शासक बीसलदेव ने हासी तथा दिल्ली पर अधिकार कर लिया। कमौली लेख के अनुसार काशी पर भी गहड़वालों का शासन था। निष्कर्षतः विजयचंद्र के समय में गहड़वालों का शासन थोड़ा सीमित हो गया था।

टिप्पणी

## जयचंद

विजयचंद्र के पश्चात जयचंद उसका पुत्र 1170 ई. में शासक बना। जयचंद को विरासत में विशाल साम्राज्य मिला था। उसे अक्षुण्ण बनाए रखना अब उसका कर्तव्य था। दिल्ली तथा अजमेर में इस समय पृथ्वीराज चौहान का शासन था जो जयचंद का समकालीन था तथा घोर शत्रु भी था। इस शत्रुता का प्रथम कारण यह था कि जब मुहम्मद गौरी ने पृथ्वीराज तृतीय पर आक्रमण किया था तब सहायता मांगने पर भी जयचंद तटस्थ रहा। दूसरा कारण पृथ्वीराज का जयचंद की पुत्री से प्रेम करना तथा स्वयंवर की भरी सभा से जयचंद की पुत्री का हरण करना था इस प्रेम प्रसंग का वर्णन चंदबरदायी भी अपनी रचना पृथ्वीराज रासो में किया है किंतु इसकी सत्यता में संदेह प्रतीत होता है फिर भी दोनों की शत्रुता का पता चलता है।

1194 ई. में मुहम्मद गौरी ने जयचंद पर आक्रमण किया। इसके पहले जब मुहम्मद गौरी ने जयचंद पर आक्रमण किए तो गौरी को हर बार मुंह की खानी पड़ी। इसकी पुष्टि विद्यापति कृत पुरुष परीक्षा, नयचंद्र कृत रंभाभंजरी से होती है। दोनों की अंतिम मुठभेड़ चंदावर के मैदान में हुई जहां कुतुबुद्दीन के नेतृत्व वाली सेना ने जयचंद पर आक्रमण किया और इसी बीच एक तीर जयचंद की आंख में लगने से उसकी मृत्यु हो गई। इस युद्ध में मुहम्मद गौरी की विजय हुई। मुस्लिम सेना ने मंदिरों को ध्वस्त करके उनके स्थान पर मस्जिद बनवाई और खूब लूटपाट की। इस प्रकार वह अंतिम वीर शासक था।

## हरिश्चंद्र

चंदावर के युद्ध के पश्चात गहड़वाल वंश का अंत हो गया था किंतु जयचंद के पश्चात उसके पुत्र हरिश्चंद्र द्वारा शासन करने का उल्लेख मिलता है। मछलीशहर जौनपुर से प्राप्त लेख में उसे परमभट्टारक महाराजाधिराज, परमेश्वराश्वपति, गजपति राजत्रयाधिपति, विधिविद्याविचारवाचस्पति श्री हरिश्चंद्र देव कहा गया है। विद्वानों के अनुसार इस उपाधि से यह स्पष्ट है कि हरिश्चंद्र ने स्वतंत्र रूप से शासन किया था। हरिश्चंद्र इस वंश का अंतिम शासक था अतः इसके बाद गहड़वाल वंश का पतन हो गया तथा कन्नौज पर चंदेलों का अधिकार हो गया।

## गहड़वाल वंश का पतन

गहड़वाल वंश के पतन के मुख्य कारण इस प्रकार हैं–

1. **विदेशी शक्ति पर निर्भरता**– 1170 ई. में विजयचंद्र का पुत्र जयचंद्र गहड़वाल कन्नौज का शासक बना। जयचंद की पुत्री संयोगिता का प्रेम प्रसंग चहमान वंश के पृथ्वीराज से था। अतः इस कारण दोनों के मध्य शत्रुता थी। पृथ्वीराज ने संयोगिता का अपहरण कर लिया। उसी समय 1193 ई. में शाहबुद्दीन गौरी ने भारत पर चढ़ाई कर दी। जयचंद ने चहमानों के विरुद्ध तुर्कों का साथ दिया। चहमानों पर विजय के पश्चात तुर्कों ने कन्नौज पर भी आक्रमण

टिप्पणी

किया और चंदावर के युद्ध में 1194 ई. में जयचंद परास्त हुआ और मारा गया। तुर्कों ने कन्नौज पर अधिकार के साथ कन्नौज तथा वाराणसी को खूब लूटा तथा बहुत सा धन अपने साथ ले गए। इस प्रकार गहड़वाल वंश पतन के द्वार पर प्रवेश कर चुका था।

2. **अयोग्य उत्तराधिकारी** – जयचंद के पश्चात उसका पुत्र हरिश्चंद्र गद्दी पर बैठा। वह जयचंद व अन्य गहड़वाल शासकों की भांति साहसी नहीं था। अतः 1125 ई. में इल्तुतमिश ने कन्नौज पर अधिकार कर लिया, और इस प्रकार गहड़वाल वंश का पतन हो गया था।

### अपनी प्रगति जांचिए

5. गहड़वाल शासकों को किस रूप में जाना जाता था?

(क) अयोध्या नरेश (ख) काशी नरेश

(ग) कन्नौज नरेश (घ) इनमें से कोई नहीं

6. गहड़वाल वंश का अंतिम शासक कौन था?

(क) विजयचंद्र (ख) जयचंद्र

(ग) हरिश्चंद्र (घ) गोविंदचंद्र

## 4.5 चहमानस

चहमानों की उत्पत्ति के संबंध में विभिन्न मत हैं। डा. भण्डारकर चहमानों को गुर्जर मानते हैं, किंतु इसके लिए कोई भी सटीक साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया है। अन्य विद्वान इस मत का खंडन करते हैं। हम्मीर काव्य और पृथ्वीराज विजय के अनुसार सूर्य के पुत्र चहमान के वंशज चौहान कहलाए। अभिलेख और साहित्यिक साक्ष्य चहमानों को सूर्यवंशी क्षत्रिय सिद्ध करते हैं।

इस काल की अधिकांश जानकारी हमें साहित्य व अभिलेखों से मिलती है। इस काल के साहित्य से न केवल राजनीतिक बल्कि सांस्कृतिक इतिहास के विषय में भी जानकारी मिलती है। **'पृथ्वीराज विजय'** एक महाकाव्य है, इसकी रचना पृथ्वीराज तृतीय के समय में जयनायक भट्ट द्वारा की गई थी। इसका वर्णन विश्वासयोग्य है, क्योंकि इसमें लिखित घटनाओं की जानकारी हमें तत्कालीन अभिलेखों से भी मिलती है। **'हम्मीर–महाकाव्य'** की रचना जयचंद द्वारा की गई थी। यह उतना प्रामाणिक सिद्ध नहीं हो सका है जितना 'पृथ्वीराज विजय'। **'बीसलदेव रासो'** इस काल की सांस्कृतिक जानकारी देता है। एक अन्य महत्वपूर्ण ग्रंथ **'पृथ्वीराज रासो'** है जो चंदबरदायी द्वारा लिखित अतिरंजित आख्यानों से पूर्ण है।

इस काल में मुस्लिम आक्रमण होने के कारण हमें मुस्लिम साहित्य से भी कुछ विशेष जानकारियां प्राप्त होती हैं। इनमें मुख्य रूप से हसन निज़ामी, अलबरूनी, उत्वी, फरिश्ता, मिनहाजुद्दीन उल्लेखनीय हैं। इन लेखकों द्वारा चहमान–तुर्क संघर्ष की विस्तृत जानकारी के अतिरिक्त तत्कालीन सामाजिक स्थिति व संस्कृति का भी वर्णन देखने को मिलता है।

टिप्पणी

**चहमानों का वंश वृक्ष**

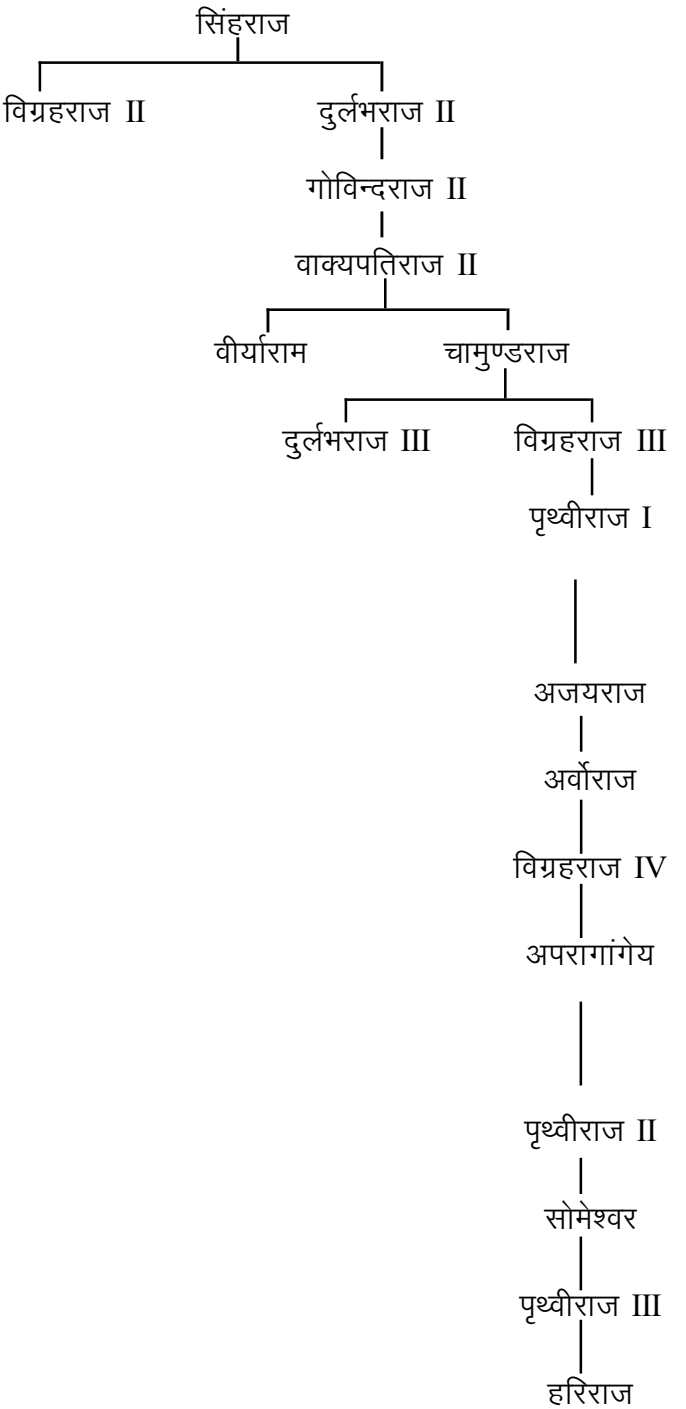

टिप्पणी

## चहमान वंश का उत्कर्ष

चहमानों की अनेक शाखाएं थीं। इनमें शाकम्भरी सबसे प्रमुख शाखा थी। शाकम्भरी के चौहान पूर्व में प्रतिहारों के सामंत थे। इन्होंने ही सर्वप्रथम सामंत प्रथा से ऊपर उठकर अपना अलग अस्तित्व बनाया था। इस श्रृंखला में जो पहला नाम मिलता है वह है वासुदेव का। उसके बाद 'सामंतराज' शासक बना। सामंतराज का वंशज चंदराज का पुत्र वाक्यपति अपने पिता के बाद सामंतराज शासक बना। इसी समय राष्ट्रकूटों के शक्तिशाली आक्रमणों से प्रतिहार निर्बल पड़ चुके थे तभी वाक्यपति ने तंत्रपाल को पराजित किया। पृथ्वीराजविजय द्वारा उसे 188 विजयों का श्रेय प्राप्त है। अब वाक्यपति सामंत शासक से मुक्त होकर स्वतंत्र शासक बनने का प्रयास करने लगा। इसी उद्देश्य से उसने चंदेल नरेश हर्ष से वैवाहिक संबंध स्थापित किए। उसने बिजौलिया पर विजय प्राप्त की थी, जो मेवाड़ के समीप स्थित था, इसे विंध्यावती भी कहा जाता है। सर्वप्रथम उसी ने 'महाराज' की उपाधि धारण की थी। चहमान वंश अब पहले से अधिक शक्तिशाली हो गया था।

वाक्यपति के पश्चात **'सिंहराज'** ने प्रतिहारों से मुक्त होने का प्रयास किया। उसे युद्ध का सामना करना पड़ा और उसे सफलता भी प्राप्त हुई। हर्ष प्रस्तर लेख में यह तथ्य वर्णित है। प्रतिहारों को अनेक कोशिशों के बाद भी सफलता नहीं मिली। सिंहराज ने महाराजाधिराज की उपाधि धारण की और अब चहमान वंश पूर्णतः प्रतिहारों की सामंती व्यवस्था से मुक्त हो गया था।

### विग्रहराज द्वितीय

विग्रहराज द्वितीय, चहमान वंश का प्रथम स्वतंत्र शासक था। वह सिंहराज का पुत्र और उत्तराधिकारी था। साहित्यिक साक्ष्य पृथ्वीराज विजय तथा प्रबंधचिन्तामणि से ज्ञात होता है कि विग्रहराज ने गुजरात में शासन कर रहे मूलराज प्रथम पर आक्रमण किया था। उसे भाग कर कन्थादुर्ग में शरण लेनी पड़ी। मूलराज ने विग्रहराज के समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया और इसके बाद दोनों ने मिलकर लाट पर शासन कर रहे वारप्प पर आक्रमण करके उसे मार दिया। इसी विजय के उपलक्ष्य में उसने भृगुकच्छ में भव्य मंदिर का निर्माण कराया। हर्षलेख में उसे राजलक्ष्मी का उद्धारक कहा गया है।

### दुर्लभराज द्वितीय

विग्रहराज को कोई पुत्र न होने के कारण उसका छोटा भाई दुर्लभराज शासक बना। किंसरिया लेख में वर्णन किया गया है कि उसने **'रसोशित्तन'** मण्डल को अपने राज्य में मिलाया था। इसने महमूद का सामना करने के लिए हिंदू राजाओं के संघ में भाग लिया किंतु ये महमूद को रोक नहीं सके।

### गोविन्दराज द्वितीय

यह दुर्लभराज द्वितीय का पुत्र था, जिसे 'वैरिधरट्ट अर्थात शत्रुओं का नाश करने वाला कहा गया है। इसकी किसी विजय की या अन्य कोई सूचना ज्ञात नहीं है।

टिप्पणी

### वाक्यपतिराज द्वितीय

यह गोविन्दराज द्वितीय का पुत्र था, जो अपने पिता के पश्चात शासक बना। उसने उदयपुर के समीप अघाट में शासन कर रहे गुहिलवंशीय शासक अम्बा को पराजित किया था। इसकी पुष्टि पृथ्वीराज विजय से होती है।

### वीर्याराज

यह वाक्यपतिराज द्वितीय का उत्तराधिकारी था। इसके शासनकाल में परमार वंशीय राजा भोज ने आक्रमण किया तथा कुछ समय के लिए भोज ने शाकम्भरी पर अधिकार कर लिया था।

### चामुण्डराज

चामुण्डराज, वीर्याराज का भाई था और उसके बाद शासक बना। उसने सर्वप्रथम परमारों द्वारा छीने गए अपने राज्य क्षेत्र को वापस प्राप्त किया। हम्मीर–महाकाव्य से विदित होता है कि उसने हाजीमुइद्दीन नामक मुस्लिम शासक को पराजित करके उसकी हत्या कर दी थी। यह व्यक्ति महमूद गजनवी का कोई उत्तराधिकारी रहा होगा। इस तथ्य की पुष्टि सुरजनचरित्र से भी की जा चुकी है।

### दुर्लभराज तृतीय

दुर्लभराज तृतीय, चामुण्डराज का पुत्र था, जिसे इतिहास में 'वीर' भी कहा जाता है। ऐसा विवरण प्रबंधकोश में मिलता है कि उसने गुजरात में शासन कर रहे चालुक्य कर्ण को पराजित किया था। साहित्य में तो यहां तक वर्णन किया गया है कि वह गुर्जर नरेश को जंजीरों से बांध कर अजमेर ले गया तथा बाजार में दही बेचने को विवश किया। यह तथ्य कितना सत्य है, यह नहीं कहा जा सकता।

### विग्रहराज तृतीय

विग्रहराज तृतीय, दुर्लभराज तृतीय का भाई था, जो उसके बाद शासक बना था। विग्रहराज ने मालवनरेश उदयादित्य की सहायता की थी, और इसी सहायता के कारण परमार उदयादित्य ने गुर्जर नरेश कर्ण को परास्त करने में सहायता प्रदान की थी। इस प्रकार विग्रहराज के समय में दोनों राजवंशों में मैत्री, हुई। मैत्री संबंध आगे बढ़ाते हुए परमार नरेश की कन्या राजदेवी का विवाह विग्रहराज के साथ हुआ।

### पृथ्वीराज प्रथम

यह विग्रहराज तृतीय का पुत्र और उत्तराधिकारी था। तुर्की सेना द्वारा बुगलीशाह के नेतृत्व में पृथ्वीराज प्रथम के राज्य पर आक्रमण किया गया था। पृथ्वीराज अत्यंत पराक्रमी योद्धा था। उसने तुर्की सेना को पराजित किया था। इस विजय की पुष्टि राजशेखर के प्रबंधकोश से भी होती है। पृथ्वीराज के समय में ही पुष्कर तीर्थ पर तीर्थ यात्रियों को लूटने की घटना के कारण उसने उन सभी चालुक्यों की हत्या कर दी थी। पृथ्वीराज विजय के अनुसार उसने 700 चालुक्यों को पराजित कर मार डाला था, जो ब्राह्मणों को लूटने की नीयत से पुष्कर तीर्थ में घुसे थे। उसने सोमनाथ मंदिर जाने वाले

मार्ग पर यात्रियों के लिए धर्मशालाएं बनवायी थीं। रणथम्भौर पर अधिकार करने के पश्चात उसने वहां के जैन मंदिरों पर स्वर्णकलश चढ़ाए थे।

टिप्पणी

### अजयराज

पृथ्वीराज प्रथम के पश्चात उसका पुत्र अजयराज शासक बना। वह अपने पिता से भी अधिक महान और वीर योद्धा था। उसकी विजयों में तीन प्रमुख शासकों के नाम आते हैं जो संभवतः कोई स्वतंत्र शासक तो नहीं रहे होंगे, अवश्य ही वे किसी के अधीन सामंत शासक रहे होंगे। इन तीनों पर विजय के पश्चात उसकी प्रतिष्ठा में वृद्धि हो गई थी। वे तीनों शासक चच्चिंग, सिंहाल तथा यशोराज थे।

इसके अतिरिक्त उसके शासनकाल में मुस्लिम शासक सुल्तान शहाबुद्दीन तथा सुल्तान बहराम शाह ने आक्रमण किए थे। प्रबंधकोश के अनुसार, अजयराज ने शहाबुद्दीन तथा मिनहाज–उस–सिराज के अनुसार बहराम शाह को पराजित किया था।

राजनीतिक पृष्ठभूमि के विपरीत उसने अजमेर नगर की स्थापना की तथा उसे भव्य भवनों से अलंकृत किया और उसे अपनी राजधानी बनाया। उसके पास विशाल टकसाल गृह भी था, जहां विभिन्न प्रकार की रजत मुद्राएं ढाली जाती थीं। ऐसा वर्णन किया गया है कि अजयराज ने स्वयं ही अपना पद त्याग कर पुष्कर तीर्थ में तपस्या करते हुए अपने अंतिम दिन व्यतीत किए।

### अर्णोराज

अजयराज ने अपने पुत्र के लिए स्वयं ही अपना पद त्याग दिया था। उसके बाद अर्णोराज शासक बना। उसने 'महाराजाधिराज' परमेश्वर परमभट्टारक की उपाधि धारण की थी। उसने अपने शासनकाल में किए गए तुर्क आक्रमणकारियों को परास्त किया था, इस विजय पर भारी उत्साह मनाया गया। कहा जाता है कि जिस स्थान पर तुर्क सेनानियों को मारा गया था, वहां पर चंद्रा नदी का जल लाकर एक झील का निर्माण करवाया गया था। उसने मालव नरेश नरवर्मा को भी पराजित किया था।

अर्णोराज के चार पुत्र थे, जिनमें विग्रहराज चतुर्थ सर्वाधिक शक्तिशाली था। बड़े पुत्र जगदेव ने अर्णोराज को वृद्धावस्था में मार दिया था।

### चहमान वंश का चरमोत्कर्ष

विग्रहराज चतुर्थ से चहमान वंश के चरमोत्कर्ष का युग आरंभ होता है। विग्रहराज के बड़े भाई जगदेव द्वारा अर्णोराज की हत्या करने के पश्चात विग्रहराज अपने भाइयों से संघर्ष करके चहमान शासक बना था।

### विग्रहराज चतुर्थ

यह चौहान वंश का अब तक का सबसे प्रतापी सम्राट था। इसके समय में चहमान वंश की प्रतिष्ठा में वृद्धि हुई तथा चहमान वंश के साम्राज्य का विस्तार हुआ। विग्रहराज चतुर्थ की राजनीतिक उपलब्धियां इस प्रकार हैं–

1. विग्रहराज चतुर्थ के समय से पूर्व ही परमार वंश का अंत हो चुका था और पश्चिमी सीमा खाली पड़ी थी। जिसकी रक्षा का दायित्व अब चहमानों पर था।

टिप्पणी

2. दिल्ली के तोमर वंश का चहमानों से बहुत समय पूर्व से ही संघर्ष चल रहा था, किंतु अब विग्रहराज चतुर्थ ने इस संघर्ष में सफलता दिलायी। अब तोमर वंश चहमानों के अधीन सामंत हो गए थे।
3. उसने बारंबार हो रहे यवन आक्रमण से देश को बचाया तथा उन्हें परास्त किया।
4. उसने अपने समकालीन शासक जो इस समय मेवाड़ तथा मारवाड़ पर शासन कर रहे थे, को परास्त कर दिया।
5. नड्डुल तथा जालौर पर आक्रमण कर उसे तहस–नहस कर दिया।
6. मथुरा तथा भरतपुर के बीच स्थित भदनायक राज्य पर भी विग्रहराज ने अधिकार कर लिया था। इसकी पुष्टि बिजौलिया लेख में की गई है।
7. उसके समय में लाहौर के तुर्क शासक खुसरोशाह ने आक्रमण किया था, किंतु विग्रहराज के भीषण संघर्ष के आगे वे ठहर नहीं सके और वापस लौट गए।
8. विग्रहराज ने मित्रों, ब्राह्मणों, तीर्थों तथा देवालयों की रक्षा हेतु भी तुर्कों से युद्ध किया था।
9. दिल्ली लेख में ऐसा वर्णन किया गया है कि उसने म्लेच्छों (तुर्कों) को समूल नष्ट कर दिया था। उसने अपने उत्तराधिकारियों को भी यही करने को कहा था।
10. अब उसके साम्राज्य में सतलुज तथा यमुना नदियों के बीच स्थित पंजाब का बड़ा भू–भाग, उत्तर पूर्व में उत्तरी गंगा घाटी का सम्मिलित क्षेत्र था। वास्तव में विग्रहराज ने ही अपने साम्राज्य को सर्वोच्चता के शिखर पर पहुंचाया था। विग्रहराज राजनीतिज्ञ के अतिरिक्त विद्वानों का आश्रय दाता भी था। उसके समय की सांस्कृतिक उपलब्धियां इस प्रकार हैं– 1. विग्रहराज ने 'हरिकेलि' नामक नाटक की रचना की थी, जिसकी कुछ विशेष पंक्तियां 'ढाई दिन का झोपड़ा' की सीढ़ियों पर अंकित हैं। 2. विग्रहराज सोमदेव नामक विद्वान का आश्रयदाता था, उसने 'ललितविग्रहराज' नामक ग्रंथ की रचना की। इसकी विशेष पंक्तियां पाषाण पर उत्कीर्ण करके उसे सरस्वती के मंदिर में रखा गया था, जिसे बाद में आक्रांताओं ने ध्वस्त कर दिया। 3. वर्तमान समय में 'विलासिया झील' के नाम से प्रसिद्ध झील 'वीसलसर' का निर्माण विग्रहराज ने ही करवाया था, जो पुष्कर झील के ही सम्मुख है।

विद्वानों का आश्रयदाता होने के कारण जयनायक उसे कवि–बान्धव कहता है।

सोमदेव ने उसे 'विद्वानों में सर्वप्रथम' कहा है। विग्रहराज स्वयं शैव था, किंतु संप्रदायों के प्रति सहिष्णु था।

### पृथ्वीराज द्वितीय

विग्रहराज के पश्चात उसका पुत्र अपरगांगेय शासक बना था, किंतु पृथ्वीराज उसकी हत्या करके स्वयं शासक बन गया था। यह अर्णोराज के बड़े पुत्र और विग्रह चतुर्थ के बड़े भाई जगदेव का पुत्र था। उसने तुर्की आक्रमण से देश की रक्षा की थी।

### सोमेश्वर

पृथ्वीराज मात्र 5 वर्षों तक ही शासन कर सका था, उसका कोई पुत्र नहीं था, अतः उसके चाचा सोमेश्वर ने सत्ता संभाली। उसका विवाह त्रिपुरा की राजकुमारी कर्पूरदेवी

टिप्पणी

से हुआ था। पृथ्वीराज तथा हरिराज इन्हीं के पुत्र थे। राजा बनने के समय ही वह वृद्ध हो चुका था। चालुक्य नरेश अजयपाल ने सोमेश्वर को परास्त किया था। सामेश्वर के विषय में अधिक जानकारी नहीं है। ज्ञात होता है कि चालुक्य नरेश भीम द्वितीय ने सोमेश्वर पर आक्रमण कर उसकी हत्या कर दी थी।

## पृथ्वीराज तृतीय

सोमेश्वर के पश्चात उसकी पत्नी कर्पूरदेवी ने योग्य मंत्री 'कैमबास' की सहायता से कुछ समय संरक्षिका के रूप में शासन किया, क्योंकि जब सोमेश्वर की मृत्यु हुई तब पृथ्वीराज अवस्यक था, उसके चाचा भवेकमल्ल ने भी कर्पूरदेवी की सराहनीय सहायता की। इस समय पृथ्वीराज को अत्यंत निपुणता के साथ समस्त विद्याओं तथा कलाओं, धुनर्विद्या में शिक्षित किया गया। 1180 ई. में पृथ्वीराज वयस्क होकर शासक बना और पृथ्वीराज तृतीय के नाम से प्रसिद्ध हुआ। सुप्रसिद्ध कवि चंदबरदायी उसी की राजसभा का विद्वान था।

उसने शासन संभालते ही सर्वप्रथम अपने चाचा नागार्जुन से संघर्ष किया। वे इस समय डुगपुर के शासक थे। पृथ्वीराज ने डुगपुर को घेर लिया। नागार्जुन जान बचाकर भाग गया, किंतु उसका सेनापति देवभट्ट लड़ता रहा। पृथ्वीराज ने उन सबको मौत के घाट उतार दिया। जब पृथ्वीराज अवयस्क था तब नागार्जुन सत्ता हथियाने के लिए प्रयासरत था, इसी कारण पृथ्वीराज ने नागार्जुन से संघर्ष किया। इसके बाद पृथ्वीराज ने मदानक पर भी अधिकार कर लिया।

चंदेल नरेश परमर्दी को परास्त करके उसकी राजधानी महोबा पर अधिकार किया और इसमें गहड़वाल नरेश जयचंद तथा आल्हा–ऊदल नामक सरदारों ने सहायता की। पृथ्वीराज ने सभी की हत्या कर दी और महोबा पर अधिकार कर लिया।

पृथ्वीराज और जयचंद का संघर्ष भी हुआ था। इस संघर्ष का कारण दिल्ली के भू–भाग पर अधिकार करना था। दोनों शासक महत्वाकांक्षी थे, अतः युद्ध अवश्यंभावी था। कुछ ही समय में पृथ्वीराज जयचंद का कट्टर शत्रु बन गया था जिसका कारण जयचंद की पुत्री संयोगिता थी। इससे पृथ्वीराज प्रेम करता था। अतः पृथ्वीराज को पकड़ने के उद्देश्य से संयोगिता का स्वयंवर रचा गया, पर भरी सभा में से पृथ्वीराज संयोगिता को उठाकर भाग गया। इस घटना से जयचंद अत्यंत क्रुद्ध हो गया था। इस घटना पर विश्वास नहीं किया जा सकता किंतु मुस्लिम लेखक इस घटना की ओर संकेत करते हैं। कहा जाता है कि जयचंद ने मुहम्मद गौरी को पृथ्वीराज पर आक्रमण करने तथा सहायता पाने लिए निमंत्रण भेजा था, किंतु यह कथन प्रामाणिक नहीं है क्योंकि गौरी के हाथों पृथ्वीराज की पराजय की बात सुनी, तो जयचंद अत्यंत प्रसन्न हो गया था।

पृथ्वीराज तृतीय के शासन की सबसे महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना है, मुहम्मद गौरी का आक्रमण और तराइन का द्वितीय युद्ध। मुहम्मद गौरी ने पृथ्वीराज को यह संदेश दिया कि वह इस्लाम स्वीकार करे अन्यथा युद्ध के लिए तैयार रहे। पृथ्वीराज

टिप्पणी

ने युद्ध स्वीकार किया। अब गौरी ने सबसे पहले तबरहिंद पर अधिकार किया और षड्यन्त्र करते हुए कहा कि वह अपने भाई के अधीन है और उसकी मंशा जानने आया है। तब राजपूत सेना निश्चिन्त हो गई। गौरी ने अपने खेमों में रात भर आग जलने दी जिससे ऐसा प्रतीत हो कि सेना खेमों में है, किंतु दिन होते ही गौरी की सेना ने पृथ्वीराज की असावधान सेना पर आक्रमण कर दिया। अतः फिर भी पृथ्वीराज और सेना ने परम साहस का परिचय देते हुए गौरी की सेना को खदेड़ दिया।

इस पराजय से गौरी ने हार नहीं मानी और एक अन्य योजना को कार्यान्वित किया। उसने सेना को पांच भागों में बांट दिया। गौरी की सेना ने राजपूतों पर चारों ओर से आक्रमण किया, अपराह्न तक युद्ध चलता रहा। राजपूत सेना थक चुकी थी, तभी गौरी ने अपनी पांचवीं सेना के साथ धावा बोल दिया। अब राजपूत सेना सिमटने लगी थी। तभी मौका देखकर पृथ्वीराज ने भागने का प्रयास किया, किंतु सैनिकों ने उसका पीछा किया, और गौरी ने उसकी हत्या कर दी।

इस प्रकार एक महान हिंदू सम्राट का अंत हो गया।

## चहमानों का पतन

चहमानों के पतन के मुख्य कारण इस प्रकार रहे–

1. **आंतरिक पतन**–जिस समय तुर्क धीरे–धीरे कुशलता से भारत के अंदर प्रवेश कर रहे थे, उस समय भारतीय राजा जैसे– गहड़वाल, चहमानों से, चहमान चालुक्यों से युद्ध कर रहे थे जिसका लाभ तुर्कों ने उठाया, और इसी के परिणामस्वरूप गहड़वालों और चहमानों का पतन हुआ। राजवंशों के युद्ध का कारण आंतरिक युद्ध था।
2. **शत्रु पर विश्वास**– पृथ्वीराज के शासनकाल में शाहबुद्दीन गौरी ने कई आक्रमण किए। पृथ्वीराज ने कई बार उसे युद्ध में परास्त करके छोड़ दिया। दोबारा जब उसने आक्रमण किया तब पृथ्वीराज ने उत्तर भारत में एक संघ बनाया। तुर्की सेना तथा भारतीय संयुक्त सेना का आमना–सामना तलाखरी के मैदान में हुआ। इस युद्ध में तुर्क बुरी तरह हार गए। शाहबुद्दीन बुरी तरह घायल होकर भाग गया, और शाहबुद्दीन ने पूर्ण तैयारी के साथ आक्रमण किया और इस

टिप्पणी

बार भारतीय संघ में गहड़वाल शासक शामिल नहीं हुआ और अंत में इस युद्ध में पृथ्वीराज मारा गया। पृथ्वीराज इस वंश का अंतिम प्रतापी सम्राट था।

3. **उत्तराधिकारियों के मध्य कलह**– पृथ्वीराज की मृत्यु के पश्चात शाहबुद्दीन ने उसके पुत्र को वार्षिक कर निश्चित करके राज्य वापस लौटा दिया। इसी समय सत्ता प्राप्ति की लालसा में पृथ्वीराज के भाई हरिराज ने उसके पुत्र से गद्दी छीन ली और स्वयं को स्वतंत्र शासक घोषित कर दिया। इसकी सूचना मिलने पर शाहबुद्दीन ने अजमेर पर आक्रमण किया, और चहमान सत्ता को ही समाप्त कर दिया।

इस प्रकार आंतरिक कलह, आपसी द्वेष व युद्ध तथा उत्तराधिकार के कारण इतिहास में एक और वंश की समाप्ति हो गई।

### अपनी प्रगति जांचिए

7. चहमान वंश का प्रथम स्वतंत्र शासक किसे माना जाता है?

   (क) दुर्लभराज द्वितीय (ख) विग्रहराज द्वितीय

   (ग) गोविन्दराज द्वितीय (घ) चामुंडराज

8. चहमान वंश के किस राजा से मोहम्मद गौरी का युद्ध हुआ था?

   (क) पृथ्वीराज तृतीय (ख) पृथ्वीराज द्वितीय

   (ग) विग्रहराज चतुर्थ (घ) इनमें से कोई नहीं

## 4.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (ख)
2. (ग)
3. (क)
4. (घ)
5. (ख)
6. (ग)
7. (ख)
8. (क)

## 4.7 सारांश

पाल वंश उत्तरी भारत का प्रमुख राजवंश था। पाल वंश का संस्थापक गोपाल था। महिपाल प्रथम को पाल वंश का द्वितीय संस्थापक कहा जाता था। समस्त पाल शासक बौद्ध धर्म के अनुयायी थे। पाल वंश के शासकों का साम्राज्य विस्तार समस्त बंगाल,

बिहार से लेकर कन्नौज तक था। धर्मपाल के लखीमपुर अभिलेख में वर्णित है कि जनता ने शोषण से दुखी होकर गोपाल नामक सेनापति को बंगाल के समूचे राज्य का शासक चुना।

टिप्पणी

पालों की गिरती हुई साख को कुछ हद तक महिपाल प्रथम ने संभाला। महिपाल के शासन काल की सबसे महत्त्वपूर्ण घटना बंगाल पर राजेन्द्र चोल का आक्रमण है। राजेन्द्र चोल के उत्तरी अभियान का विवरण उसके तिरुमलाई शिलालेख में मिलता है। यद्यपि चोल आक्रमण द्वारा बंगाल में उसकी संप्रभुता स्थापित नहीं हो सकी। उत्तरी और पूर्वी बंगाल के अलावा महिपाल बर्दवान प्रभाग के उत्तरी भाग को भी वापस पाल राज्य में मिलाने में सफल रहा। महिपाल की सफलता उत्तरी तथा दक्षिणी बिहार में ज्यादा प्रभावशाली रही। वह बंगाल के एक बड़े भाग पर दोबारा अपना अधिकार जमाने में सफल रहा। उसकी सफलता का एक बड़ा कारण महमूद का लगातार आक्रमण था, जिसके कारण शायद उत्तरी भारत के राजपूतों की शक्ति तथा स्रोत क्षीण हो गये थे। मदनपाल इस वंश का अंतिम शासक था। इस वंश के बाद बंगाल में सेन वंश की स्थापना हुई।

सेन वंश की स्थापना सामंत सेन ने की थी। इस वंश का आदि पुरुष वीरसेन को माना जाता है। ये अपनी उत्पत्ति ब्रह्मक्षत्र परंपरा से मानते हैं। पाल वंश के पतन के बाद बंगाल में सेन वंश की स्थापना हुई। सेन वंश एक प्राचीन भारतीय राजवंश का नाम था, जिसने 12वीं शताब्दी के मध्य से बंगाल पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया। सेन राजवंश ने बंगाल पर 160 वर्ष राज किया। इस वंश का मूलस्थान कर्णाटक था तथा ये सैन (नाई) जाति के थे। इन्हें सैन नंद मौर्य वंश भी कहा जाता था। इस काल में अनेक मन्दिर बने। धारणा है कि बल्लाल सेन ने ढाकेश्वरी मन्दिर बनवाया। कवि जयदेव (गीत–गोविन्द का रचयिता) लक्ष्मण सेन के पंचरत्न थे। यह चक्रवर्ती सम्राट महापदम नंद की संतान थी। यह एक क्षत्रिय राजवंश है। इस राजवंश में अनेक वीर हुए। चक्रवर्ती सम्राट महापदम नंद के डर से विश्वविजेता सिकंदर भारत छोड़कर भाग गया। यह चंद्रवंशी शाखा है। नंदों का साम्राज्य सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक संपन्नता एवं सैन्य संगठन का चरम बिंदु था।

गहड़वालों की उत्पत्ति के विषय में अधिक कुछ ज्ञात नहीं है। विद्वानों का मत है कि गहड़वाल राष्ट्रकूटों से संबंधित थे। किंतु इस मत के खंडन में हमें सारनाथ से लेख प्राप्त होता है जिसमें राष्ट्रकूट तथा गहड़वालों का पृथक वर्णन मिलता है। विद्वानों के अनुसार गहड़वाल शब्द की उत्पत्ति ग्रहवार शब्द से हुई है, जिसका अर्थ है 'ग्रह का विजेता'। ययाति के पुत्र देवदास ने शानि ग्रह पर विजय प्राप्त की थी अतः इन्हें ग्रहवार कहा गया। विद्वान इस मत से सहमत नहीं हैं क्योंकि इसकी प्रामाणिकता सिद्ध नहीं हो सकी है किंतु साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि गहड़वाल शासक हिंदू धर्म व संस्कृति के उद्धारक थे।

टिप्पणी

चंद्रदेव यशोविग्रह का पुत्र था जो यशोविग्रह के पश्चात शासक बना। वही गहड़वाल वंश का पहला स्वतंत्र शासक था। उसके शासक बनने की जानकारी हमें बसही अभिलेख से मिलती है जिसमें कहा गया है कि भोज की मृत्यु हो जाने पर तथा मात्र कर्ण के शेष रह जाने पर विपत्तिग्रस्त पृथ्वी ने चंद्रदेव राजा को अपना रक्षक चुना। इससे यह स्पष्ट होता है कि कर्ण के पश्चात चंद्रदेव ने कन्नौज पर अधिकार किया होगा। यहां पर विपत्ति से तात्पर्य तुर्क आक्रमण से है क्योंकि दोआब में अब कोई भी शक्ति शेष नहीं थी जो तुर्कों का सामना कर सके। अतः इस स्थिति का चंद्रदेव ने लाभ उठाया और कन्नौज, कौशल, काशी तथा इंद्रप्रस्थ पर अपना अधिकार कर लिया। दिल्ली पर इस समय तोमर वंश का शासक था। संभवतः तोमर वंश के राजाओं ने चंद्रदेव की अधीनता स्वीकार कर ली होगी।

चंदावर के युद्ध के पश्चात गहड़वाल वंश का अंत हो गया था किंतु जयचंद के पश्चात उसके पुत्र हरिश्चंद्र द्वारा शासन करने का उल्लेख मिलता है। मछलीशहर जौनपुर से प्राप्त लेख में उसे परमभट्टारक महाराजाधिराज, परमेश्वराश्वपति, गजपति राजत्रयाधिपति, विधिविद्याविचारवाचस्पति श्री हरिश्चंद्र देव कहा गया है। विद्वानों के अनुसार इस उपाधि से यह स्पष्ट है कि हरिश्चंद्र ने स्वतंत्र रूप से शासन किया था। हरिश्चंद्र इस वंश का अंतिम शासक था अतः इसके बाद गहड़वाल वंश का पतन हो गया तथा कन्नौज पर चंदेलों का अधिकार हो गया।

चहमानों की अनेक शाखाएं थीं। इनमें शाकम्भरी सबसे प्रमुख शाखा थी। शाकम्भरी के चौहान पूर्व में प्रतिहारों के सामंत थे। इन्होंने ही सर्वप्रथम सामंत प्रथा से ऊपर उठकर अपना अलग अस्तित्व बनाया था। इस शृंखला में जो पहला नाम मिलता है वह है वासुदेव का। उसके बाद 'सामंतराज' शासक बना। सामंतराज का वंशज चंदराज का पुत्र वाक्यपति अपने पिता के बाद सामंतराज शासक बना। इसी समय राष्ट्रकूटों के शक्तिशाली आक्रमणों से प्रतिहार निर्बल पड़ चुके थे तभी वाक्यपति ने तंत्रपाल को पराजित किया। पृथ्वीराजविजय द्वारा उसे 188 विजयों का श्रेय प्राप्त है। अब वाक्यपति सामंत शासक से मुक्त होकर स्वतंत्र शासक बनने का प्रयास करने लगा। इसी उद्देश्य से उसने चंदेल नरेश हर्ष से वैवाहिक संबंध स्थापित किए। उसने बिजौलिया पर विजय प्राप्त की थी, जो मेवाड़ के समीप स्थित था, इसे विंध्यावती भी कहा जाता है। सर्वप्रथम उसी ने 'महाराज' की उपाधि धारण की थी। चहमान वंश अब पहले से अधिक शक्तिशाली हो गया था।

पृथ्वीराज तृतीय के शासन की सबसे महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना है, मुहम्मद गौरी का आक्रमण और तराइन का द्वितीय युद्ध। मुहम्मद गौरी ने पृथ्वीराज को यह संदेश दिया कि वह इस्लाम स्वीकार करे अन्यथा युद्ध के लिए तैयार रहे। पृथ्वीराज ने युद्ध स्वीकार किया। अब गौरी ने सबसे पहले तबरहिंद पर अधिकार किया और षड्यन्त्र करते हुए कहा कि वह अपने भाई के अधीन है और उसकी मंशा जानने आया है। तब राजपूत सेना निश्चिन्त हो गई। गौरी ने अपने खेमों में रात भर आग जलने दी जिससे ऐसा प्रतीत हो कि सेना खेमों में है, किंतु दिन होते ही गौरी की सेना ने

पृथ्वीराज की असावधान सेना पर आक्रमण कर दिया। अतः फिर भी पृथ्वीराज और सेना ने परम साहस का परिचय देते हुए गौरी की सेना को खदेड़ दिया।

## 4.8 मुख्य शब्दावली

टिप्पणी

- **आविर्भाव** : जन्म, उत्पत्ति
- **उपासक** : पुजारी
- **नृप** : राजा, सम्राट
- **पराजित** : हराना
- **ख्याति** : प्रसिद्धि
- **विद्रोह** : बगावत, गदर
- **प्रभुत्व** : सत्ता, अधिकार
- **स्रोत** : साधन
- **क्षीण** : कमजोर
- **भित्ति** : दीवार
- **सैन्य** : सेना से संबंधित
- **गणना** : गिनती
- **जटिल** : मुश्किल
- **साक्ष्य** : गवाह
- **अल्प** : थोड़ा, कम
- **अधीनता** : गुलामी
- **गजसेना** : हाथियों की सेना
- **प्रकांड** : प्रख्यात, सुप्रसिद्ध
- **पतन** : विनाश, समाप्ति
- **उपाधि** : पदवी
- **व्यतीत** : गुजारना, बिताना

## 4.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

### लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. पाल वंश का शासन कहां था? उसके प्रमुख शासकों के नाम बताइए।
2. सेन वंश के शासकों की उत्पत्ति कहां से हुई? स्पष्ट कीजिए।
3. गहड़वाल वंश के साहित्यिक स्रोतों का वर्णन कीजिए।

4. मुहम्मद गौरी और जयचंद के संघर्ष का वर्णन कीजिए।
5. विग्रह राज द्वितीय की उपलब्धियों का वर्णन कीजिए।

टिप्पणी

### दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. पाल वंश की उत्पत्ति एवं पतन के कारणों की समीक्षा कीजिए।
2. सेन वंश के इतिहास एवं प्रमुख शासकों के विषय में उल्लेख कीजिए।
3. गहड़वाल वंश के इतिहास एवं प्रमुख शासकों की उपलब्धियों पर प्रकाश डालिए।
4. चहमान वंश के उत्कर्ष काल के प्रमुख शासकों का वर्णन कीजिए।
5. पाल एवं सेन वंश का तुलनात्मक विवेचन कीजिए।

## 4.10 सहायक पाठ्य सामग्री


1. बी. चटोपाध्यायः एज ऑफ कुषान।
2. चौधरी, राधाकृष्णनः प्राचीन भारत का राजनैतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, भारती भवन, पटना, 2003।
3. झा एंड श्रीमालीः प्राचीन भारत का इतिहास, हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 2002।
4. झा, डी. एन.ः प्राचीन भारत; एक रूपरेखा, पीपल्स पब्लिशर्स हाउस, नई दिल्ली, 2005।
5. मजूमदार, ए. के.ः द हिस्ट्री एंड कल्चर ऑफ द इंडियन पीपल, ''द क्लासिकल एज'' वाल्यूम–III, भारतीय विद्या भवन, मुंबई।
6. पुरी, बी. एन.ः इंडिया अंडर द कुषान।
7. मजूमदार, आर. सी.ः (''द हिस्ट्री एंड कल्चर ऑफ इंडियन पीपल, वाल्यूम III,ः द क्लासिक एज भारतीय विद्या भवन, मुंबई, 1954'')।
8. श्रीवास्तव, के. सी.ः प्राचीन भारत का इतिहास द संस्कृति, इलाहाबाद, 2005।
9. शर्मा, रीताः ''प्राचीन भारत का इतिहास'', मोतीलाल बनारसी दास, 1998।
10. पाण्डेय, विमल चंदः ''प्राचीन भारत का राजनैतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास'', (वाल्यूम–II) सैंट्रल बुक डिपो, इलाहाबाद, 1980।